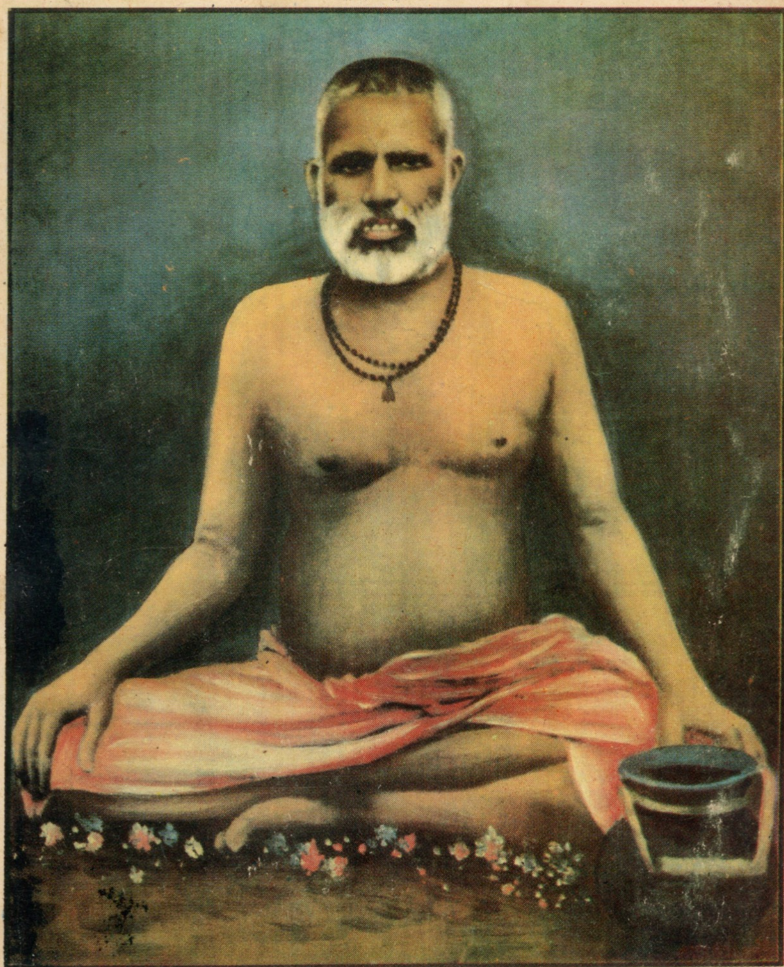
श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण

प्रथम खण्ड





श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण

प्रथम खण्ड



सम्पादक—

स्वामी सनातनदेव

गोविन्ददास वैष्णव

प्रकाशक

श्री स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ (श्रीउड़िया बाबा) ट्रस्ट समिति,
श्रीकृष्णाश्रम, दावानल कुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)

तृतीय संस्करण—१००० प्रतियाँ

संवत् २०५०

मूल्य—पच्चीस रुपये मात्र

मुद्रक :
कैक्को प्रिन्टर्स
गोटावाला कोठी, हाथरस (अलीगढ़)

प्राक्कथन

श्री हरिः

पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी महाराज तप, त्याग, योग और वेदान्त की निधि थे। वे ज्ञान निष्ठा की अभिव्यक्ति के लिये अभ्यास पर अधिक बल देते थे। एकत्व विज्ञान की निष्ठा के लिये ब्रह्माभ्यास के महत्त्व को समझने और समझाने वाले विरले सन्तों में वे एक थे।

योगवासिष्ठ में शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना और तुर्यगा नाम की ज्ञान की सप्तभूमिकाओं का वर्णन है। इनमें शुभेच्छा, विचारणा और तनुमानसा ये तत्त्व ज्ञान की पूर्व की भूमिकाएँ हैं। शुभेच्छा के बिना श्रवण संभव नहीं। श्रवण के बिना विचारणा संभव नहीं। विचारणा के विना चित्त की सूक्ष्मता और स्थिरता रूपा 'तनुमानसा' सम्भव नहीं। तनुमानसा के विना चित्त की तत्त्वरूपता और सदा सत्त्वसम्पन्नता रूपा 'सत्त्वापत्ति संभव नहीं। असंसक्ति, पदार्थाभावना और तुर्यगा ये ज्ञानोत्तर योग-बल लभ्य भूमिकाएँ हैं। सत्त्वापत्ति नाम की चतुर्थ भूमिकामें प्रपञ्च की प्रतीति पूर्ववत् बनी रहती है परन्तु उसके प्रति महत्त्वबुद्धि शान्त हो जाती है। यह जाग्रत-तुल्य अवस्था है। प्रपञ्च के प्रति अनास्था की दृढता से प्रपञ्च की स्वप्न तुल्य अदृढ़ प्रतीति 'असंसक्ति' है। अनासक्ति और प्रपञ्च विस्मृति की विपुलता तथा घनता से सुषुप्तितुल्य तत्त्वज्ञ की स्थिति 'पदार्थाभावना' है। प्रपञ्च विस्मृति की प्रगाढ़ता से प्रारब्ध क्षय के फलस्वरूप देहपात पर्यन्त प्रपञ्च का अभान मृततुल्य 'तुर्यगा' नाम की भूमिका है। जिनके जीवन में प्रपञ्च के प्रति अनास्था और योगाभ्यास की प्रबलता होती है, उन्हीं के जीवन में ज्ञानोत्तर असंसक्ति, पदार्थाभावना और तुर्यगा नामकी भूमिकाएँ प्रस्फुटित हो पाती है।

जगत् के प्रति अनास्था और योगाभ्यास की प्रबलता से जहाँ ज्ञानोत्तर उक्त भूमिकाओं की अभिव्यक्ति होती है, वहाँ दूरदर्शन दूरश्रवणादि सिद्धियाँ भी। श्रीबाबा महाराज को जहाँ प्रपञ्च विस्मृत प्राय रहता था, वहाँ उनके जीवन में विविध सिद्धियां भी परिलक्षित होती थीं। प्रपञ्च के प्रति अनास्था से प्राप्त सिद्धियाँ अन्नपूर्णा की सिद्धि मान्य है। जब साधक का मन, शरीर और संसार से अनासक्त हो जाता है, तब उसके समाश्रित सहित उसका योगक्षेम सदा शिव की प्रेरणा से स्वयं भगवती अन्नपूर्णा करती हैं। यही कारण है कि पूज्य श्री बाबा महाराज को अन्नापूर्णा सिद्ध थीं, ऐसी प्रसिद्धि है।

प्रपञ्च के प्रति अनासक्ति की परिपक्वता के पूर्व योगाभ्यासी के शरीर में देवसुन्दरियों तक को अपने प्रति आकृष्ट करने की शक्ति उद्बुद्ध होती है। योगी का उक्त दशा में दायित्व होता है कि अनासक्ति की परिपक्वता पर ही ध्यान आकृष्ट रखे न कि उन सुन्दरियों पर।

श्री बाबा महाराज में शास्त्रोक्त वर्णाश्रम के प्रति तथा भगवदवतारों के प्रति अपार आस्था थी। वे वेदान्त के नाम पर वर्णाश्रम और देवाराधना के प्रति अनास्था उत्पन्न करना, सर्वथा अनुचित समझते थे। साथ ही कथा- वाचकों को उत्प्रेक्षापूर्ण व्याख्या करके श्रोताओं के मन में ऐतिह्य तथ्यों के प्रति अनास्था उत्पन्न करने से मना करते थे। वे सरस्वती, तीर्थ, आश्रम आदि दशनामी संन्यास में ब्राह्मणों को अधिकृत मानते थे।

ऐसे पुण्यश्लोक श्री बाबा महाराज और उनके पुण्य उपदेशों में पाठकों की आस्था दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहे, ऐसी भावना है -

निश्चलानन्द सरस्वती
२७-५-६३
वृन्दावन

नम्र-निवेदन



पूज्यपाद श्रीमहाराजजीसे बिछुड़े हुए हमें प्रायः दस वर्ष हो गये हैं। अब उनके सदुपदेश और उनकी सुमधुर स्मृति ही इस जीवन-यात्रा में हमारे संबल हैं; उनके सदुपदेशों का संग्रह तो पहले ही प्रकाशित हो चुका है। एक संक्षिप्त जीवन परिचय भी छपा है। तथापि भक्तों की बड़ी लालसा थी कि उनकी एक विस्तृत जीवनी भी लिखी जाय। परन्तु लिखे कौन? महापुरुषों का जीवन तो ईश्वरों का जीवन होता है। हम सामान्य जीव तो उसे न तो पूरा-पूरा समझ ही सकते हैं और न उसे अभिव्यक्त करने के लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द-सम्पत्ति ही है। जैसे एक ही भगवान् भाव भेदसे भक्तों को विभिन्न रूपों में भासते हैं, वैसे ही महापुरुषों के विषय में भी उनके सभी भक्तों को एक-सी धारणा नहीं होती। अतः ऐसा कोई एक जीवन तो लिखा भी नहीं जा सकता जिससे सभी भक्तों को उनके अपने-अपने भाव की पोषक सामग्री मिल सके। इन्हीं कारणों से यह कार्य अत्यन्त आवश्यक होने पर भी आरम्भ न हो सका।

प्राय: पाँच वर्ष हुए श्रीमहाराजजी के कुछ भक्तों के आग्रह से श्रीगोविन्ददासजी वैष्णवने उनके जीवन चरित के लिये सामग्री संग्रह करने का कार्य आरम्भ किया और इसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। सच पूछा जाय तो प्रस्तुत पुस्तक उनके उस अथक परिश्रम का ही परिणाम है। इस प्रकार प्राय: दो वर्षों में पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गयी। अब उसके सम्पादन की समस्या सामने आयी। सामग्री बहुत उपयोगी थी और उसमें सभी प्रकार की मनोवृत्तियों के साधकों के भाव सन्निविष्ट थे। उन विभिन्न भाव और विभिन्न दृष्टिकोणों से समन्वित सामग्री के आधार पर कोई क्रमबद्ध जीवन लिखना आसान कार्य नहीं था। अत: यह निश्चय किया गया कि उन संस्मरणों को ही क्रमबद्ध करके ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। इससे सभी प्रकार की सामग्री लेखकों के अपने अपने भावों के अनुसार मिल जायगी और उन घटनाओं के विषय में किसी एक व्यक्ति का उत्तरदायित्व भी नहीं रहेगा।

यह निर्णय हो जाने पर उनमें से अधिकांश लेखों को, उनकी भाषा आदि का संशोधन करके, श्रीगोविन्ददासजी ने लिखा। परन्तु वे चाहते थे कि सम्पादन का अन्तिम दायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर ही रहे। अत: इसे अन्तिम रूप देने का कार्य मुझे ही सौंपा गया। मैंने अपनी योग्यता के अनुसार इसका सम्पादन करने का प्रयत्न किया है। उसमें मैं कितना सफल हुआ, सो तो भगवान् ही जानें।

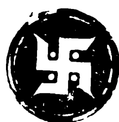
इस पुस्तक को दो खण्डों में विभक्त किया गया है। लेख और लेखकों की दृष्टि से दोनों ही खण्डों का समान महत्व रहे—ऐसा प्रयत्न रहा है। लेखों की भाषा तो आवश्यकतानुसार सुधारी

गयी है, परन्तु घटनाओं की यथार्थता का दायित्व लेखकों पर ही है। हमें किसी के विषय में अविश्वास करने का क्या अधिकार है? महापुरुषों के जीवन में ऐसा कौन आश्चर्य है जो दुर्घट हो। तथापि स्थान का संकोच होने के कारण बहुत-से लेख छोड़ने भी पड़े हैं और अनावश्यक समझ कर प्रस्तुत लेखों की भी कुछ घटनायें छोड़ दी गयी हैं। आशा है, हमारी विवशता का विचार करके कृपालु लेखक हमें क्षमा करेंगे।

अस्तु, जैसा भी बना यह गुरुदेव के निजजनों द्वारा गूँथा हुआ श्रद्धामय पुष्पहार उन्हीं के परमपुनीत पादपद्मों में समर्पित करता हूँ। वे करुणामय प्रभु इस नगण्य भेंट से प्रसन्न होकर हमें अपने चरणकमलों की अहैतुकी प्रीति प्रदान करें।

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन
दीपावली, सं० २०१५ वि०

विनीत :
सनातनदेव



वक्तव्य

समादरणीय भक्तजनों से क्षमायाचना सहित निवेदन है कि हमारा विचार था कि स्वामी सनातन देवजी द्वारा संपादित पुस्तक में सशोधन के उपरान्त ही नवीन संस्करण प्रकाशित कराया जाय जिससे शुद्धिपत्र की आवश्यकता ही न रहे, इसी उद्देश्य को लेकर हम आगे बढ़ रहे थे। मेरा पुत्र चि० नन्दलाल चतुर्वेदी जो कि संस्कृत-हिन्दी का प्रतिष्ठित विद्वान है, उसे सम्पादन का कार्य सौंपा गया किन्तु प्रेस वालों की भूल के कारण प्रारम्भिक प्रूफ उसे प्राप्त नहीं हुए, जब पुस्तक लगभग छप गयी तब ज्ञात हुआ। प्रेस वालों ने आश्वासन दिया कि हाथ से संशोधन करा दिया जायेगा। अस्तु… महाराज श्री के संस्मरण आपके हाथ में हैं, उनका कृपा प्रसाद ही मानकर इसे स्वीकार करेंगे इसी आशा के साथ।

शुभेच्छु
पं० जनार्दन चतुर्वेदी
अध्यक्ष: पू० स्वा० श्री पूर्णानन्द तीर्थ
(उड़िया बाबा) ट्रस्ट समिति,
श्रीकृष्णाश्रम दावानल कुण्ड
वृन्दावन (जि० मथुरा)

अक्षय तृतिया
सं २०५० वि०



श्रीउड़िया बाबाजी के संस्मरण

[प्रथम खण्ड]

श्रीपूर्णानन्दाष्टकम्

पावनं परमं पुण्यं पद्मपत्रमिव स्थितम् ।
पूर्णप्रेमप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ १ ॥
सुखदं शान्तिदं सौम्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सारासारप्रवक्तारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ २ ॥
भजनं भाजन भव्यं भक्तिभावप्रदायकम् ।
भक्तानन्दकरं भाव्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥
मानदं मोहकं मुख्यं मानातीतं मनोहरम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥
तार्किकं तर्कहन्तारं तर्कातीतं तु तुष्टिदम् ।
त्यक्तदण्डं तुरीयं तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥
परापरं परातीतं पालकं परमेश्वरम् ।
पुरीनिवासिनं पुण्यं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥
लौकिकं वैदिकं शास्त्रं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
भक्तान् शिक्षयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ७ ॥
लेह्यं चोष्यं च पेयं च सुचर्व्यं भोज्यमेव च ।
भुंक्ते भोजयते यस्तं (श्री) पूर्णानन्दं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

पुण्यं पापहरं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिभावतः ।
न त्वसौ भयमाप्नोति न दुःखं न पराभवम् ॥



लेखक-सूची





अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर

स्वामी श्रीशान्तानन्दजी सरस्वती

प्रथम दर्शन

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पद शिवविरञ्चिनुतं शरण्यं ।
भृत्यार्त्तिह्र प्रणतपालभवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्रीमहाराजजी का परिचय मुझे उस समय मिला था, जब मैं सन् १९४२ ई० में चित्रकूट में भ्रमण कर रहा था। उन दिनों मैं एक अनुभवी गुरुकी खोज में था, जो मुझे संसारसागरसे निकालकर परमानन्दकी प्राप्ति करा दें। एक महात्माने मुझे श्री महाराजजी का नाम सुनाया और बतलाया कि वे बड़े अनुभवी उदार, सर्वगुण सम्पन्न उच्चकोटि के महात्मा हैं। गंगाजीके किनारे रामघाट, कर्णवास आदि स्थानोंमें विचरते रहते हैं। नाम सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मन में ऐसी उत्कण्ठा हुई कि शीघ्र चलकर दर्शन करूँ। सौभाग्यसे प्रयागके कुम्भमें मुझे श्रीआनन्द ब्रह्मचारी मिल गये। उनके द्वारा मुझे श्रीमहाराजजीका विशेष परिचय प्राप्त हुआ। मैं उनके साथ श्रीहरि बाबाजीके बाँध पर पहुँचा, जहाँ उन दिनों श्रीमहाराजजी विराजमान थे। उस समय होली के अवसरपर वहाँ श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। श्रीमहाराजजीके दर्शन करके चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। परन्तु महापुरुषों की माया बड़ी विचित्र होती है—'संतकी महिमा

वेद न जाने ।' बड़ी कठिन परीक्षा हुई । परन्तु भगवत्कृपा से अन्त में शरण मिल गयी ।

श्रीमहाराजजीके यहाँ सत्सङ्गका सुन्दर सुयोग था । वेदान्त-विषयमें जिज्ञासुओंके गम्भीर प्रश्नोत्तर होते थे । परन्तु अपने-राम तो 'सगुण ब्रह्म-रति उर अधिकाई' वाले थे । इसलिये एकान्तमें ही अधिक रमते थे । उन्ही दिनों स्वामी श्रीअखण्डा-नन्दजी सरस्वती संन्यास लेकर तुरन्त वहाँ आये हुए थे । मैं अधिकतर उन्ही के पास रहता था और वे ही साधनविषयमें मुझ पर विशेष कृपा रखते थे ।

सेवा और साधन को प्राप्ति

इसके कई वर्ष पश्चात् एक दिन प्रातःकाल वृन्दावन में स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी से श्रीमहाराजजीके सम्बन्धमें बातचीत हो रही थी । उन्होंने कहा, "यदि तुम भगवान् राम को प्रसन्न करना चाहते होतो श्रीशङ्करजीकीसेवा करो । हमारेश्रीमहाराज जी शङ्करस्वरूप ही हैं । उन्हीकी सेवासे तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे ।" प्रारब्ध अनुकूल था । अतः श्रीमहाराजजीकी ओर से स्वीकृति मिल गयी । बैशाख शु० ९ सन् १९४५ ई० से मैं श्रीमहाराजजी की चरणसेवा में रहने लगा । नित्य नये अनुभव होते थे । वे मेरे मन की एक-एक वृत्तिको क्रियारूपमें परिणत होने से पहले ही जान लेते थे और कछवी जैसे अपने अण्डोंकी रक्षा करती है वैसे ही, मैं दूर रहूं अथवा समीप, हर समय व्यवहार और परमार्थ दोनों ही में मेरी रक्षा करते थे ।

वृन्दावनकी ही एक घटना है । एक दिन मैंने सोचा, लोग कहते हैं कि श्रीमहाराजजीको अन्नपूर्णा सिद्ध है, इनके पास कोई भूखा नही रह सकता । आज मैं भोजन नही करूँगा । इस

बातकी चर्चा मैंने किसीसे नहीं की। सारा दिन बीत गया। रात के नौ बजे कीर्त्तन समाप्त होने पर श्रीमहाराजजी कुटिया में आये। एक घण्टेतक सत्संग होता रहा। अन्तमें सब लोग प्रणाम करके चले गये। मैं सोच ही रहा था कि आज तो मेरा व्रत पूर्ण हो गया कि इतने ही में आप बोले, "रामजी* ! बेटा ! नीचे से दो रोटी और साग ले आओ।" मैं नीचे गया तो देखा एक कटोरे में दो रोटी और साग रखे हैं। लाकर श्रीमहाराजजी को दिया। उसमें से थोड़ा सा पाकर मुझे देते हुए बोले, "बेटा ! यहीं पर पा लो।" मैं आश्चर्य में पड़ा। मुखसे निकल गया, महाराजजी ! मेरी तो इच्छा नहीं है।" आप बोले, "नहीं कोई नुकसान नहीं करेगा।" उन दिनों मेरे लिये कठोर आज्ञा थी कि केवल एक बार मध्याह्नमें ही भोजन करना, और आज रात्रि के दस बजे स्वयं ही उस नियमको तुड़वा रहे हैं ? आखिर दिनभरके उपवास के पश्चात् रात्रि के दस बजे मुझे पारण करा कर उन्होंने अपनी बात रखी। उस दिनके पश्चात् फिर कभी रात्रि के समय मुझसे भोजन के लिये नहीं पूछा। ऐसी अनेक घटनायें प्रायः हुआ करती थीं।

श्रीमहाराज जी आसन, प्राणायाम और योग-सम्बन्धी क्रियायें बड़ी सुगमता से समझा दिया करते थे। अब भी स्वप्न तथा जाग्रत में उनसे सम्बन्धित अनेक घटनायें होती रहती हैं।

लीला संवरण के पश्चात्

श्रीमहाराजजी ने जब अपनी लौकिक लीला संवरण कर ली तो अपना कोई सहारा न देखकर उनके वियोगमें बड़ी व्याकुलता हुई। मनमें आया कि चलो उत्तराखण्ड में चलकर अपना जीवन

*आचार्यचरण का पूर्वाश्रम का नाम।

समाप्त कर दें। इसी संकल्प से स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी के साथ उत्तराखण्ड की यात्रा की। परन्तु देहरादून पहुँचकर श्रीस्वामीजी तो मनोरंजन में लग गये, किन्तु मुझे वहाँ भी श्री-महाराजजी के वियोगमें श्मशान-सा लगता था। अतः मैं बिना किसीसे कुछ कहे चल दिया और यमुनोत्तरी होता हुआ गंगोत्तरी पहुंचा। वहाँ रात्रिमें, स्वप्न में मकरवाहिनी भगवती भागीरथी श्रीगंगाजीने दर्शन दिया और कहा, "बेटा ! घबराओ मत। तुम्हें महाराजजी के दर्शन अवश्य होंगे।" यह कहकर वे अन्तर्धान हो गयी और मेरी निद्रा खुल गयी।

प्रातःकाल होने पर मैं गंगातट की एक शिला पर बैठकर ध्यान करने लगा। थोड़ी देर में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वहाँ का स्थान नहीं है, श्रीवृन्दावन का आश्रम है। श्रीमहाराजजी अर्धपद्मासन से बैठे हैं और मैं उनके चरणों पर सिर रख कर कह रहा हूँ, "महाराजजी ! मुझे मत छोड़िये।" वे कह रहे हैं, "तुमने मेरे पास रह कर क्या नहीं सीखा है? देखो, मैं तो स्वस्थ हूं, प्रसन्न हूँ, सदा तुम्हारे पास ही हूँ और रहूँगा भी। तुम्हारे सामने जो घटनायें हुई हैं, वह सब तो माया का खेल था। तुम दुःख मत मानो। जब मैं तुम्हारा रक्षक सर्वदा तुम्हारे पास हूँ तो फिर चिन्ता क्यों करते हो ?" इसके पश्चात् आँखोंके सामने का दृश्य बदल गया। देखता हूँ कि वही गंगातट है, मैं शिलापर बैठा हुआ हूँ और नीचे श्रीगंगाजी कलरव करती तीव्र वेग से बह रही हैं। इस घटना से मन में हर्ष और विषाद दोनों हुए। श्रीमहाराजजीके वाक्योंको स्मरण करके उठा और निवासस्थान पर आया। यह स्पष्ट अनुभूति यात्रा में महीनों मानस नेत्रों के सामने नाचती रही। आज भी उस घटना का स्मरण करके हृदय भर आता है।

संन्यास ग्रहण की प्रेरणा

एक बार अनूपशहर के पास अवन्तिका देवीके स्थान पर मैं इस संकल्प से कि भगवतीके दर्शन होते हैं या नहीं, रात्रि भर मन्दिर में बैठा रहा। प्रातःकाल मन्दिरमें ही शवासन से लेट गया। निद्रा आ गयी। ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री कह रही है, "तुम भी तो श्रीमहाराज जी की आज्ञा का पालन नहीं करते।" मैंने पूछा, "मैं किस आज्ञा का पालन नहीं करता ?" उत्तर मिला, "तुमको महाराजजी ने दुर्गापाठकी आज्ञा दी थी, सो तुमने छोड़ दिया है।" इसके पश्चात् मैं जग गया और वहाँ से अनूपशहर आकर इकतालीस दिनों में शतचण्डीका अनुष्ठान किया। अनुष्ठान समाप्तिके तीसरे दिन मैं गणेश-मन्दिर में सोया हुआ था। प्रातःकाल ५ बजे स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने आज्ञा दी कि जाओ, तुमको पूर्व में ऐसे महात्मा मिलेंगे जिनसे मिलकर तुम्हें चित्त में विशेष संतोष प्राप्त होगा। वे मेरे स्वरूप ही हैं। जब मेरी नींद खुली, तो सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ ? किस से पूछूँ ? उसके थोड़े दिन बाद ही मेरे मन में ब्रह्मचर्याश्रमसे सन्यास ग्रहण करने की इच्छा हुई और मैंने प्रयाग आकर ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरू शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वती से विधिवत् संन्यास ग्रहण किया। इस प्रकार श्रीमहाराजजी के उन वचनोंकी संगति ठीक-ठीक लगगयी, जो उन्होंने अनुष्ठान के अनन्तर मुझसे कहे थे।

पीठस्थ होने के पश्चात्

अभी मार्गशीर्ष कृ० २ सं० २०१० की बात है। एक दिन रात्रि के समय मैं पीठ के विषय में विचार कर रहा था। अन्तःकरण में कोई ठीक-ठीक समाधान नहीं होता था।

संकल्प-विकल्पमें ही अधिकांश रात्रि व्यतीत होगयी। प्रातःकाल चार बजे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। मैंने प्रार्थना की कि मैं अपनी इच्छा से नहीं, भगवत्प्रेरणा या प्रारब्धवश ही इस पीठ पर आया हूँ। यदि भगवत्प्रेरणा है, तो इसके विरुद्ध संघर्ष नहीं उठना चाहिये था। और यदि संघर्ष है, तो इसे भगवदिच्छा नहीं कह सकते। इस सम्बन्ध में आप की क्या राय है? इस पर श्रीमहाराजजी ने कहा, 'देखो, इसी लिये मैंने तुम्हें तुम्हारे गुरु के पास कर दिया है। वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम अपने गुरुकी आज्ञा का पालन करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।' फिर दुर्गापाठ के विषय में पूछने पर आप ने आज्ञा दी कि अब तुम दुर्गापाठ मत करो। अब यह तुम्हारे लिये उपयोगी नहीं है। इसके पश्चात् नींद खुल गयी और बड़ा कौतूहल मालूम हुआ।

श्रीमहाराजजी का जीवन चलते-फिरते ब्रह्मका जीवन है। उनमें हमें आत्मारामता, पूर्णकामता, ज्ञान, वैराग्य, तितिक्षा, उपरति, समता, सरलता, क्षमता, त्याग, निःस्पृहता, असंगता, निर्भयता और उदारता आदि अनेक सद्‌गुणों का साक्षात् दर्शन होता है।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः॥
भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह॥



पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी महाराज

बाबाका प्रत्येक भक्त जैसे यह अनुभव करता है कि वे सबसे अधिक मुझसे ही प्रेम करते थे, उसी प्रकार मेरा भी यही अनुभव है कि इस शरीर पर बाबा का अपार प्रेम था। उनकाप्रेम माता-पिता से भी बढ़कर था। बाबा साक्षात् प्रेम की मूर्ति थे। मुझे तो यह स्पष्ट दीख रहा है कि बाबा ने मुझ पर जितना प्रेम किया उतना विश्व में किसी औरने नहीं किया। बाबा और मुझ में संकोचवश कभी खुलकर बात नहीं होती थी। कदाचित् एक दो बार ही ऐसा अवसर आया है जब हम दोनों में थोड़ी बात हुई हो। ऐसा भी देखनेमें आया कि यदि बाबा कथा कहते होते और मैं पहुँच जाता तो वे रुक जाते थे। कीर्तन की घण्टी बजते ही बाबा कहने लगते, "अरे! चलो, चलो, हरिबाबा कीर्तन में पहुंच गये, और स्वयं भी शीघ्रता से चल देते।"

एक बार मैं बाबा का दर्शन करने रामघाट गया और रात्रि में पञ्चवटी में सोया। आश्विन का महीना था। रात्रिमें मुझे ठण्ड लग रही थी। परन्तु मैं सो गया। रात में बाबा आये और चुपके से मुझे कम्बल ओढ़ाकर चले गये। प्रातःकाल जब मैं पता लगाने लगा कि रात में मुझे कम्बल किसने ओढ़ाया तो किसी ने भी नहीं बताया। अन्त में पता चला कि बाबा ही ओढ़ा गये थे। इतना स्नेह वे करते थे।

एक बार मैं बाँध पर बीमार पड़ा। शारीरिक कष्ट विशेष नहीं था। किन्तु बुखार हर समय बना रहता था। शरीर सूख

कर लकड़ी सा हो गया था। डाक्टर-वैद्य निराश हो चुके थे। सब लोग अत्यन्त दुखी हो रहे थे। वृन्दावन में तो यहाँ तकबात फैली कि हरि बाबा मर गये। एक दिन रात्रि में बाबा आये और सब को बाहर करके स्वयं किबाड़ बन्द कर लिये। मैं मरणासन्न अवस्था में पड़ा हुआ था। बाबा ने मेरे आसनपर लेट कर मुझे हृदय से लगा कर गाढ़ आलिंगन किया। उनके प्रेम भरे आलिंगन में ऐसी शक्ति थी कि मैं उसी समय से अच्छा हो गया। इस प्रकार मेरा यह जीवन और साधन बाबा का ही दिया हुआ है।

प्रारम्भ में जब मैं बाँध के समीपवर्ती गाँवों में संकीर्तन करने-कराने लगा तो गंगा तटपर रहने वाले जितने ज्ञाननिष्ठ संत थे प्रायः उन सभीने संकीर्तनका विरोध किया। कहने लगे, "संन्यासी होकर कीर्तनमें नाचते हैं!" एक बाबा ही ऐसे थे जिन्होंने सच्चे हृदय से हरिनाम संकीर्तन का समर्थन किया, और केवल मौखिक समर्थन ही नहीं प्रत्युत् जीवन भर स्वयं भी उसका प्रचार करते रहे। यदि बाबा न होते तो यह संकीर्तन-प्रचार कभी का बन्द हो गया होता, मेरे मन में कई बार संकीर्तनोत्सवोंको बन्द कर देनेकी आयी, परन्तु बाबा सदैव प्रोत्साहन देते रहे। वे कहा करते थे कि हमें तो महोत्सव करना है, दूसरे क्या कहते हैं—यह देखना नहीं है।

संकीर्तन के प्रारम्भ में ॐकार-ध्वनिके प्रश्न को लेकर बड़ा आन्दोलन चला। श्रीकरपात्रीजी आदि महात्माओं ने इसका विरोध किया और मेरे पास समाचार भेजे। परन्तु बाबा ने स्पष्ट कह दिया—"हरिबाबा महात्मा हैं, वे जो करते हैं ठीक ही करते हैं। उसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।"

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि कथा कहते समय मैं ऐसा अर्थ कर देता जो टीकाकारोंके अर्थसे भिन्न होता। परन्तु बाबा कहते, "नहीं, हरिबाबा जो अर्थ करते हैं वही ठीक है।" बाबा ने ही ललिताप्रसादको प्रोत्साहन देकर मेरा जीवन-चरित लिखवाया। जब वह लिखनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करता तो वे कहते— "नहीं रे! तू जो लिखेगा वही ठीक होगा।★मैंने कभी अपने-को बाबाके बराबर आसनपर बैठनें योग्य नहीं समझा। मुझे सदैव इस बातसे संकोच होता था। परन्तु यदि मैं उनके बराबर आसनपर नहीं बैठता था तो वे उदास हो जाते थे। इससे उनकी प्रसन्नताके लिए मुझे भी आसनपर बैठना पड़ता था।

सं० १९९५ की श्रीकृष्णजन्माष्टमीकी रात को मैंने श्रीवृन्दावन में एक स्वप्न देखा कि यूनिवर्सिटीकी ऊँची परीक्षा में मैं सबसे अधिक नम्बरोंसे पास हुआ हूँ। उसी समय एक व्यक्ति कहने लगा, "अबसे पहले की परीक्षाओंमें दूसरे लोग इससे भी अधिक नम्बरोंसे पास हो चुके हैं।" तब बाबा बोल उठे—नहीं, इतनी कठिन परीक्षा इससे पहिले कभी हुई ही नहीं थी।"

भक्तियोग में श्रद्धा ही प्रधान है। जिनके हृदय में श्रद्धाकी कमी है वे भक्तिमार्गके अधिकारी ही नहीं हैं। शिष्यके लिये यह श्रद्धा कि मेरे गुरुदेव साक्षात् भगवान् हैं परम आवश्यक है।

★ जिस समय सत्संगमें श्रीहरिबाबाजी उपर्युक्त शब्दोंमें श्रीमहाराजजीके सम्बन्धमें अपने हार्दिक उद्गार प्रकट कर रहे थे उस समय पण्डित सुन्दरलालजी उनके पास ही बैठे थे। इन वाक्योंको सुनकर वे गद्गद् होगये और बोल उठे, "महाराज! बाबाने तुम्हारे कुत्तेका भी बड़ा आदर किया है। वे अपने आदमियोंका उतना ध्यान नहीं रखते जितना तुम्हारे लोगोंका रखते थे।" यह कहते-कहते पण्डितजी का गला भर आया। संग्रहकर्ता

चाहे गुरु पूर्णतया योग्य न हों तो भी जिस शिष्यकी ऐसी दृढ़ धारणा है कि मेरे गुरु परमेश्वर हैं उसका कल्याण अवश्य हो जायगा। वह जो चाहेगा उसी गुरुके द्वारा प्राप्त कर लेगा। परन्तु जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं है उसके सामने साक्षात् भगवान् आ जायें तो भी वह उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकेगा। एक बार बाँधपर बाबाने ऐसी श्रद्धाके विषयमें एक कथा सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

प्राचीनकालकी बात है, एक धनाढ्य पुरुष था। उसके घर में एक छोटा बालक, स्त्री तथा अन्य कई प्राणी थे। वह श्रद्धालु और विश्वास भक्त था तथा संत-महात्माओंका बड़ा प्रेमी था। उसके गुरु बहुत योग्य नहीं थे, तथापि वह उनमें परमेश्वर-बुद्धि रखता था। एक दिन गुरुने किसी के यहाँ चोरी का अन्नभोजन कर लिया और उस दूषित अन्नके प्रभाव से उनकी बुद्धि मलिन हो गयी। कहावत है-जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।' संयोग की बात उसी दिन धनी का सुन्दर बालक, जिसके शरीर पर सहस्रों रुपयोंके बहुमूल्य आभूषण थे, खेलता हुआ गुरुजीके पास आया, एकान्तमें बालक के शरीर पर सहस्रों रुपयेके बहुमूल्य आभूषण देखकर गुरुके मनमें लोभ उत्पन्न हो गया। उसने बालक को गला घोंट कर मार डाला और उसके सारे आभूषण उतारकर लाशको सन्दूकमें बन्दकर एक ओर छिपा दिया।

उधर जब बालकके आनेमें विलम्ब हुआ तो सारे घरमें खलबली मच गयी। ढूँढ़-खोज होने लगी, पर कहीं पता न चला यह सोचकर कि कदाचित् बालक गुरुजी के पास चला गया हो धनी स्वयं उनके पास आया और उनसे बालकके विषयमें पूछा। महात्मा सीधे थे, बोले-'भाई! तुम्हारा बालक आया तो था, परन्तु मैंने उसे मार दिया है।" यह सुनकर धनी बोला—'नहीं,

महाराज ! आप तो परम कृपालु हैं, आप भला बच्चे को कैसे मार सकते हैं ? आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं ।" महात्मा बोले— "अरे भाई ! मैं परीक्षा नहीं ले रहा हूँ । मैंने सचमुच ही बालक को मार दिया है । तुम्हें विश्वास न हो तो सन्दूक को खोलकर देख लो ।' धनी ने सन्दूक खोली तो सचमुच बालक को मरा पाया । उसने लाश बाहर निकाली और गुरुजीसे कहा —"महा–राज ! मुझे तो विश्वास नहीं होता कि आप बालक को मार सकते हैं । परन्तु आपके कथनानुसार यदि आपने ही मारा है तो आप की चरणधूलि इसे जिला भी सकती है । आपकी चरण रजके प्रताप से क्या नहीं हो सकता ।" इतना कहकर उसने गुरुजीकी चरणधूलि ली, थोड़ी बालकके सिरसे स्पर्श कराई और थोड़ी उसके मुखमें डाली, और बोला—"हे मेरे गुरुदेवकी चरणधूलि ! तेरे प्रतापसे मेरा मरा हुआ बालक जी उठे ।" इतना कहते ही बालक जी उठा और पिता ने उसे हृदय से लगा लिया । सच है

'प्रतिमामन्त्रतीर्थेषु भेषजे वैष्णवे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।

यह घटना देखकर महात्माको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ-ही अभिमान भी ।

भगवान किसी का अभिमान नहीं रखते । कुछ दिन बीत जाने पर फिर वैसा ही कुयोग जुट गया । इस बार पड़ोसी का एक बालक मिल गया । महात्मा को गर्व तो था ही, उस बालक को मार कर उसके आभूषण उतार लिये और उसे संदूक में बन्द करके एक ओर छिपा दिया । पड़ोसी बालक को ढूँढ़ता महात्मा के पास आया और उनसे उसके विषय में पूछा महात्मा ने पहले ही की भांति सारी

सच्ची बात सुना दी। पड़ोसीने सन्दूक खोलकर बालककी लाश निकाली और शोक तथा क्रोधके आवेशमें आकर कहने लगा— "अरे मूर्ख ! तू साधु है या कसाई। तूने मेरे बालककी हत्या की है, इसका फलतुझे अभी चखाता हूँ।" महात्मा बोला–अरे मूर्ख! क्या बकता है ? मैं महात्मा हूँ। मेरी चरणधूलिके प्रभावसे मृतक भी जीवित हो सकता है।" पड़ोसी बोला, "तू महात्मा है ही नहीं। तू तो हत्यारा है। मैं अभी राजा को सूचना देता हूँ और तुझे जेलकी हवा खिलाता हूँ।" महात्मा ने पुनः जोर देकर कहा "अरे भाई ! तू मेरी चरणरज लेकर देख तो सही, बालकजीवित होता है या नहीं।" पड़ोसी के हृदयमें श्रद्धा–विश्वास तो था नहीं।' फिर भी उसने जैसे–तैसे महात्मा की चरणधूलि ली, बालक के मुख में डाली और उसके मस्तकपर लगायी। परन्तु बालक जीवित न हुआ। "अब वह बोला, अब तुझे अपनी कर–तूत का फल भोगना पड़ेगा।" महात्मा ने कहा, "अच्छा तू मेरे शिष्यको तो बुला। देख बालक जीवित होता है या नहीं ?" पड़ोसी ने शिष्य को बुलाया। उससे महात्मा ने पूछा, "क्योंभाई! मेरी चरणरज के प्रताप से क्या यह बालक जीवित नहीं हो सकता ?" शिष्य ने पूर्ण विश्वासपूर्वक कहा, क्यों नहीं जीसकता गुरुदेव ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपकी चरणधूलिके प्रभाव से यह बालक अवश्य जीवित हो जायगा इसमें कोई संदेह नहीं।" इतना कहकर उसने ज्योंही गुरुकी चरण.लि लेकर बालक के शिर से लगायी और उसके मुँह में डाली कि बालक जी उठा। यह देखकर पड़ोसी के हर्ष और आश्चर्य का ठिकाना न रहाऔर महात्मा का अभिमान भी गल गया। सभी ने श्रद्धा–विश्वासकी महिमा स्वीकार की। श्रद्धा–विश्वास में अपार शक्ति है— 'विश्वासं फलदायकम्।

बाबाकी वाणी ब्रह्मवेत्ताकी वाणीके समान मधुर थी ।शास्त्र में लिखा है कि ब्रह्मवेत्ताकी वाणी मधुर होती है। वे केवल वाणीसे ही लोगोंको आकर्षित कर लेते थे। अन्य महापुरुषों के समान वे अपने शारीरिक कष्ठोंको किसी पर प्रकट नहीं करते थे। जिस समय हम सरहिन्दमें उस स्थानका दर्शन कर रहे थे जहाँ गुरु गोविन्दसिंहके दो पुत्रोंको दीवारमें चुन दिया गया था और वह दिखानेके लिये उनकी माताको सामने खड़ा कर दिया था, मेरी दृष्टि बाबा की ओर गयी। मैंने देखा कि बाबा की आँखों से आसू झर रहे हैं। उनका शरीर तो अस्वस्थ था ही। वे बहुत शिथिल प्रतीतहुए। तथापि वे किसी से कहते कुछ नहीं थे। उन्हें अस्वस्थ देखकर मैंने आगे की यात्रा स्थगित कर दी। परन्तु वे तो फिर भी कहते थे, "नहीं, कोई बात नहीं है, उत्सव होना चाहिये।"

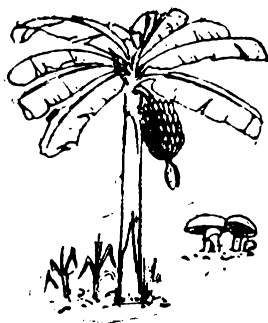
श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णने 'धृति' शब्दकी जो व्याख्याकी है वह बाबामें पूर्णतया घटित थी। 'धृतिका अर्थसामान्यतया धैर्य है, परन्तु भगवान के मनमें उसका एक विशिष्ट अर्थ है–जिह्वा और उपस्थपर पूर्ण विजय प्राप्त करना–'जिह्वोपस्थजयो धृतिः'। (भागवत) जिह्वाका अर्थ है रसनेन्द्रिय और उपस्थ का अर्थ है जननेन्द्रिय। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसने रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके विषयोंकी ओर बाबाके मन में तनिक भी आकर्षण देखा हो। वे ज्ञानी और योगी थे—यह तो जुदी बात है, मेरी दृष्टिमें तो उनमें सबसे बड़ा गुण यह था कि वे रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियपर पूर्ण विजयी थे। इसीसे बहुतेरे लोग उन्हें ईश्वर मानने लगे थे।

—•—

पूज्य स्वामी श्रीहीरानन्दजी महाराज, सरैयापुर

जल वहीं ठहरता है जहाँ गड्ढा होता है। बाबा उपदेश तो सभीको करते थे, परन्तु उनके उपदेशको धारण वे ही लोग कर सकते थे जिनका अन्तःकरण शुद्ध था।

बाबामें सबसे बड़ी सिद्धि मैंने यह देखी कि वे सदैव प्रसन्न रहा करते थे। मैं उनके साथ दस-दस दिन तक रहा हूँ, तथापि उन्हें सदैव प्रसन्न देखता था। स्वरूपका बोध हुए बिना ऐसी प्रसन्नता सदैव नहीं रहती। यह सिद्धि तो सभी सिद्धियोंकी सिरमौर है। हम भगवानकी शरणमें हैं, उन पर हमारा विश्वास है—इस बातकी कसौटी ही यह है कि सदैव प्रसन्न रहा जाय। नहीं तो दुःख घेर लेता है।



पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज

प्रथम मिलन

जलेसरके कोई सज्जन थे। उनके मनकी कोई कामना बाबा के द्वारा पूरी हुई थी—यह मैंने सुन रक्खा था। एक दिन जलेसरमें ही मैंने सुना कि बाबा आएहुए हैं। मुझे सन्तोंसे मिलने का शौक तो पहलेही से था। एक सन्तरा लेकर मैं उनके दर्शनों के लिये चल पड़ा। स्वामीजी एक पेड़के नीचे बैठे हुए थे। मैंने जाकर दर्शन किया और निवेदन किया कि आप बगीचेकी कुटी पर चलिये। बाबा बोले, "भैया! अब तो बैठ गया हूँ। आज यहीं रहूँगा।" उस दिन वे वहीं रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं फिर गया। उस दिन जाते ही वे उठकर मेरे साथ चल दिये। उस समय जलेसरमें आप पहली बार ही आये थे। वहाँ उनका कोई भक्त नहीं था। फिर भी मैंने देखा कि उनके पास भेंट में फल और मिठाइयाँ बहुत आती थीं तथा दिनभर दर्शनार्थियोंका मेला-सा लगा रहता था। हरेक मतके आदमी उनके दर्शनार्थ आते थे। हिन्दू, मुसलमान, सनातनधर्मी और आर्यसमाजी जो भी आता बाबा उसके साथ प्रेमसे मिलते थे। उनकी शंकाओंका समाधान करते और प्रत्येक साधकको उसकी योग्यतानुसार साधन में ही दृढ़ करने की बात करते थे। बाबा ने, जैसा कि उनका स्वभाव था, बड़े प्यारसे मेरे सिर पर हाथ रखा। मेरे हृदय पर उनकी ममता, स्नेह और सहज भावका अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने पूछा, "स्वामीजी! दृश्य का यथार्थ स्वरूप क्या है?" वे बोले, "तुम्हें क्या जान पड़ता है?" मैंने

कहा, 'कुछ नहीं।" तब वे भी बोले, "कुछ नहीं।" मैंने स्वामीजीको कभी किसीकी बुराई करते नहीं सुना। वे अपनी बुराई करने वालेकी भी बुराई नहीं करते थे। यह उनमें खास गुण था। यही उनके साथ मेरा प्रथम मिलन था। इससे मनमें उनके दर्शनोंकी इच्छा रहने लगी। इसके पश्चात् एक बार स्वप्न में मुझे उनके दर्शन हुए।

कुछ स्मरणीय घटनायें

(१)

इसके कुछ काल पश्चात् जलेसर निवासी मुनसरिमप्रसाद जी एकदिन मुझसे बोले कि बाबा रामघाटमें हैं, वहाँ चलिये। मैं गया और आठ दिन बाबाके पास ठहरा। एक दिन सब लोग भोजन कर रहे थे। मेरेसमीप एक ब्रह्मचारी बैठा हुआ था। बाबा सबको पूड़ियां परोस रहे थे। कुछ पूड़ियां मोटी थीं और कुछ पतली। मेरी पत्तलमें उन्होंने दोनों तरहकी पूड़ियां परोसी थीं। उनमें पतली नीचे थीं और मोटी ऊपर। इसी प्रकार ब्रह्मचारी की पत्तलमें भी थीं। मैं तो स्वाभाविक रूपसे जो ऊपर थीं, उन्हें पहले पाने लगा। परन्तु ब्रह्मचारी ने पतली पूड़ियां ऊपर निकालकर पहले उन्हें खाना आरम्भ किया। बाबाकी दृष्टि उस पर पड़ी। तब उन्होंने उसे समझाते हुए कहा, "तुम साधु होकर ऐसा करते हो?" इससेमेरे मनपर यह प्रभाव पड़ा कि बाबा छोटी-छोटी बातोंमें भी साधन निर्माण करनेमें दूसरोंके हितपर कितना ध्यान रखते हैं। बाबा औरोंकी तरह मुझे बार-बार थोड़ा-थोड़ा प्रसाद नहीं देते थे। एकबार पूरा भोजन परोस देते

थे, वह भी सात्त्विक दाल–रोटी आदि। वे साधुओं से वैराग्य और ध्याननिष्ठा की बातें बहुत करते थे।

(२)

पहले जब मैं राजनैतिक कार्य करता था तब मुझे जेल जाना पड़ा था। जेल के नियमानुसार जब मुझे गेरुआ वस्त्र उतारने के लिये कहा गया तो मैंने स्वीकार नहीं किया। तब बलपूर्वक वस्त्र उतरवा लिये गये और मुझे तनहाई (एकान्तवास) में रखा गया। इसपर मैंने अनशन किया तो मेरे वस्त्र मिल गये। तब मेरे मन में आया कि गेरुआ वस्त्रका आग्रह न रखकर अलिंग संन्यासी–की तरह रहूँगा। किन्तु बाबाने मुझे गेरुआ न छोड़ने की ही सम्मति दी और कहा कि आज–कल धार्मिक चिन्होंको धारण करना आवश्यक हैं।

(३)

एक बार मैं मोहनपुर में बाबाके पास गया। कुछ दिन वहाँ ठहरकर जब जाने लगा तो बाबा से पूछा, "मैं जाऊँ ?" बाबा बोले, क्या मैंने तुम्हें बुलाया था ?" इस उत्तर से मुझे खेद नहीं हुआ बल्कि मैंने अनुभव किया कि साधुको ममता नहीं रखनी चाहिये, यह तो गृहस्थोचित स्वभाव है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जिस प्रकार बिना पूछे मेरी निष्ठा के अनुसार मेरी स्थितिकी बात कहते और आगे की बात बता देते थे उसी प्रकार बाबा भी बिना पूछे मेरी स्थिति के अनुसार बाते बतला देते थे। मेरा पक्का विश्वास है कि बाबा सबको पहचा–नते थे और सदाचार प्रेम एवं त्याग का आदर करते थे।

(४)

प्रयाग की अर्ध कुम्भी के अवसर पर बाबा पधारे थे। मेरे

निकटवर्ती बहुत लोग चाहते थे कि बाबा को बुलाया जाय। परन्तु मैं सोचता था कि उनके आने पर स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध कैसे होगा। आखिर, एक दिन बाबा पधारे। तब जिनके स्थान पर मैं ठहरा हुआ था, उन्होंने भक्तपरिकर सहित उन्हें भिक्षा के लिये आमंत्रित किया। उस समय ऐसा संयोग हुआ कि एक सज्जन ने पहले ही पर्याप्त सामग्री पहुँचा दी थी। इसी प्रकार वे जहाँ-कहीं भी जाते थे, अपने आप उनका सब प्रबन्ध हो जाता था। वे कहीं भी चले जायें, भोजन उनके पीछे-पीछे दौड़ता था। इससे मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि जो चाह से रहित महापुरुष होते हैं, उनके लिए प्रकृति स्वयं कार्य करती रहती है।

(५)

एक बार बाबा फर्रुखाबाद में थे। उस समय एक दिन स्वामी सच्चिदानन्दजी और स्वामी रामदेवजी के साथ उनका सत्संग हो रहा था। स्वामी सच्चिदानन्दजी ने कहा, "ईश्वर भी जड़ है" उस दिन बाबा को बुखार आ गया। मुझसे बोले आज मुझे बहुत वर्षों बाद ज्वर आया है। देखो, इन्होंने व्यतिरेक तो किया, पर अन्वय नहीं किया। सबको जड़ रूप तो कहा, परन्तु सब कुछ चैतन्य भी तो है।"

(६)

एक बार बाबा जलेसर में थे। उनके पास एक भक्त आये और 'लखी जिन लालकी मुस्कान' यह प्रसिद्ध पद गाने लगे। तब बाबा बोले, "इस रस का आस्वादन किसके प्रकाश से होता है, उसे भी तो जानना चाहिये।" इस पर वे सज्जन कुछ कहने लगे। तब बाबा मुझसे बोले, "देखो, लोग सत्य को जानते हुए भी मानना नहीं चाहते।"

बाबा कभी-कभी कहते थे, "पढ़-लिखकर विद्वान् तो बना जा सकता है, परन्तु बिना संत-मिलन के कोई संत नहीं बन सकता।

(७)

एक बार कार्तिक मास में बाबा फर्रुखाबाद में थे। शरीर अस्वस्थ था। वहाँ विट्टोजी नाम की एक लड़की ने चान्द्रायण व्रत किया था। उसे बाबा के दर्शनों की इच्छा हुई और उसने अपनी एक धर्म-बहिन के द्वारा बाबा से भिक्षा के लिये प्रार्थना करायी। वह तांगा लेकर बाबाको लेने के लिये गयी। किन्तु बाबा ने 'मैं सवारी पर नहीं बैठता' ऐसा कहकर तांगा तो वापिस कर दिया और स्वयं उस अस्वस्थ अवस्था में ही प्रायः दो मील पैदल चलकर गये तथा दो-तीन ग्रास खाकर लौट आये। मेरा विश्वास है कि बाबा हृदय के प्रेम को खूब पहचानते थे और उसका खूब आदर करते थे।

(८)

बाबा को देश प्रेमी बड़े अच्छे लगते थे। मोहनपुर के देशप्रेमियों से मिलने के लिये तो वे जेल में गये थे। दूसरों की भांति वे देश सेवा को प्रपंच या झंझट नहीं समझते थे। वे एक उदारचित्त महापुरुष थे।

एक बार बाबा बोले, "देखो, "भैया! कुछ लोग तो संकल्प-पुर में रहते हैं। कोई उससे पार होने पर खुदनगर में टिक जाते हैं। किन्तु जो उससे भी पार चले जाते हैं, वे शान्तिपुर में निवास करते हैं।"



पूज्यस्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी महा० भगवानपुर

बहुत दिनों की बात है, मैं भृगुक्षेत्र (भेरिया) में था। वहाँ एक भंडारा हुआ। स्मरण नहीं कि वह भण्डारा किस निमित्त से हुआ था। मैं भिक्षा करके कुटिया के सामने नीमके नीचेटहल रहा था। ठीक इसी समय श्रीगंगातटपे ऊपरकी ओर आते हुए श्रीस्वामीजीमहाराजके दर्शन हुए। उस समय सबसे पहलेसात-आठ दिन आपके साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। फिर तो समय-समय पर कई बार मिलते रहे।

श्रीवृन्दावनमें आपके आश्रमकी प्रतिष्ठाका महोत्सव होने वाला था। तब आपने सागर और भगवतीको लवङ्ग-इलायची का प्रसाद देकर मुझे उत्सव में लाने के लिए भेजा। परन्तु उस समय वहाँ जानेकी मेरी रुचि नहीं हो रही थी। अतः मैं नहीं गया। फिर उन्होंने गिरिधारीको भेजा और उसे उड़िया लिपि में यह श्लोक लिख कर दे दिया—

आस्तां तावद्वचनरचनाभाजनत्वं विदूरे
दूरे चास्तां मम तव परीरम्भसम्भावनापि।
भूयो भूयो प्रणतिभिरिदं किन्तु याचेऽहमेकं
स्मारं स्मारं स्वजनगणने क्वापि रेखा ममापि॥*

---

*आपके वाणी-विलासकी पात्रता भलेही प्राप्त न हो और मेरे और आपके पारस्परिक आलिंगनकी भी कोई सम्भावना न हो, तथापि बारम्बार अत्यन्त प्रार्थनापूर्वक मैं आपसे एक भिक्षा माँगता हूँ। वह यह कि कभी-कभी स्मरण होने पर स्वजनों की गणना करने के समय मेरी भी कुछ सुधि कर लिया करें।

इस श्लोक के भाव को समझ कर मैं अपने को न रोक सका और महोत्सव में सम्मिलित हुआ। वह महोत्सव कथा, कीर्त्तन, सत्संग प्रवचन और रासलीला आदि सभी कार्यक्रमों से बहुत सुन्दर हुआ था। उसकी समाप्ति पर मैं फिर गंगातट पर आ गया।



ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी महाराज, झूसी

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः॥*
(श्रीमद्भागवत ९।६।५१)

छप्पय

पर हित धारहिं देह संत सुख देत सबन कूं।
स्वयं कष्ट सहि सत्य सिखावें नर-नारिन कूं॥

*[भगवान् सौभरि यमुनाजल में डुबकी लगाकर तपस्या कर रहे थे। भीतर उन्होंने एक मत्स्यको मिथुन-धर्ममें स्थित देखा। तभी उनकी भी गृहस्थ बननेकी इच्छा हो गयी। उन्होंने पचास विवाह किये अन्तमें वैराग्य होने पर उन्होने कहा] "मुमुक्ष पुरुषको दाम्पत्य-धर्म में स्थित संसारी लोगों का सहवास सर्वथा त्याग देना चाहिये। अपनी इन्द्रियों को बहिर्मुख न होने देना चाहिये। वह सर्वदा एकान्तमें अकेला ही निवास करे। चित्तको एक मात्र अनन्त ईश्वर में लगा दे, यदि संग करना ही हो तो भगवत्परायण साधु-पुरुषों का ही संग करे।

संत चरित साकार ज्ञान प्रत्यक्ष दिखावें।
है जीवन ही वेद ग्रन्थ तिनके बन जावें॥
केवल पढ़ि समुझत नहीं, पठन कथन इक व्यसन है।
संत करहि प्रत्यक्ष जब होवे संशय शमन है॥

अवतार पुरुष, सन्तपुरुष और महापुरुष जो कुछ कह गये हैं एवं जैसा जीवन बिता गये हैं, उसी का उल्लेख इतिहास तथा पुराणों में होता है। भगवान् का जिनके साथ सम्बन्ध है, उनकी प्रत्येक घटना से उपदेश मिलता है। प्राचीन घटनाओं को पढ़ने से भी हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और लोग उससे उपदेश भी ग्रहण करते हैं, परन्तु पुरानी घटनाओं की अपेक्षा भी नयी प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओं का हृदय पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। संतों की समस्त चेष्टायें लोक-कल्याणार्थ होती हैं। उनके जीवन की प्रत्येक घटना से उपदेश मिलता है। इसी से आज मैं ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी के कुछ सुखद संस्मरणों को पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ।

उत्कल प्रदेश में जगन्नाथपुरी के एक विप्र वंश में आपका जन्म हुआ था। सुनते हैं, ज्योतिषियों ने बत्तीस वर्ष की आयु में आपका मृत्युयोग बताया था। इसी आयु में आपने संयास लिया। मानो आपका दूसरा जन्म हो गया। घूमते-घामते आप जिला बुलन्दशहर में गंगातट पर राजघाट-नरौरा के समीप, रामघाट में आ गये और अधिक समय वहीं रहने लगे। रामघाट मेरी जन्म-भूमि के समीप ही है। हमारे यहाँ के लोग गंगा-स्नान करने-रामघाट जाया करते थे। उसी सम्बन्ध से मैं बाल्यकाल से ही आपके नाम से परिचित था। उड़ीसा प्रान्त के होने से ही सब लोग 'उड़िया-बाबा' कहने लगे थे। वास्तव में आपका संन्यास का नाम

तो स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ था।

उन दिनों आपके ज्ञान, वैराग्य, त्याग, तितिक्षा एवं सुन्दर स्वभाव की इस प्रान्त में सर्वत्र ख्याति थी। सहस्रों स्त्री-पुरुष दूर-दूर से आपके दर्शनों के लिए आते रहते थे। महाराज जहाँ भी जाते, वहीं एक मेला-सा लग जाता था। आप बड़े दयालु, मृदुभाषी, और सरल प्रकृति के थे। जो एक बार आपका दर्शन कर लेता वह सदा के लिये आपका ही बन जाता था। आप जैसा अधिकारी देखते उससे वैसी ही बातें करते थे। युवक आपसे बहुत अधिक प्रभावित होते थे। राजनैतिक विषयों में भी आप बड़ा अनुराग प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय विचारों के युवकों को आप राजनैतिक कार्यों के लिये प्रोत्साहित करते थे। इसी प्रकार जो धार्मिक विचारों के पुरुष आते उन्हें धर्मानुष्ठान सिखाते और जो मुमुक्षः होते उन्हें मुक्ति का मार्ग वताते थे। अन्नपूर्णा आपको सिद्ध थी। कहीं भी बैठ जायँ वहीं भाँति-भांति के पदार्थों के ढेर लग जाते और सैकड़ों पुरुष प्रसाद पाते। आप एक दृष्टि में ही दर्शनार्थी को अपना बना लेते थे। मुझे तो प्रथम दर्शन में ही ऐसा अनुभव होने लगा मानो ये मेरे परम आत्मीय हैं। इस अधम पर उन्होंने इतना अनुराग प्रदर्शित किया कि इसमें उसे व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। सत्पिता जैसे पुत्र की प्रत्येक बात का ध्यान रखता है उसी प्रकार वे मेरी बातों का ध्यान रखते थे। मैं जब-जब भी उनके चरणों में गया तब-तब ही मुझे नूतन स्फूर्ति प्राप्त हुई। उन दिनों उनकी युवावस्था थी तथा त्याग और वैराग्य की पराकाष्ठा थी। एक काष्ठ के कमण्डलु के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं रखते थे तथा स्वयं घर-घर माधूकरी भिक्षा करने के लिये जाते थे। एक दिन आपने अपनी भिक्षा की एक घटना मुझे सुनायी। आपने बताया कि मैं एक गाँव में भिक्षा करता डोल

रहा था। भिक्षा करते-करते मैं एक स्त्री के यहाँ पहुंचा। उसका लड़का काम पर नहीं जा रहा था। उसने उस लड़के से मेरी ओर संकेत करके कहा—"देख, काम पर नहीं जायेगा तो इसी प्रकार भीख मांगता डोलेगा।" मैं हँसकर वहाँ से चल दिया। बेचारी बुढ़िया को यह क्या मालूम था कि ऐसा पुरुष बनना कोई हँसी-खेल नहीं है।

एक प्रसङ्ग आपने और भी सुनाया था। ब्रज में एक जगह सदाव्रत बंटता था। वहां तीन प्रकार से दिया जाता था। दण्डिस्वामियोंको तो आदर पूर्वक चौकेमें बिठाकर भोजनकराते थे। साधु-संन्यासियोंको पंक्तिमें और कंगालोंको वैसे ही रोटियां बांट दी जाती थीं। हम कंगालों में बैठ गये। चार बड़ीं-बड़ी मोटी-मोटी रोटियां मिली। उन्हें लेकर हम बाग मैं चले आये। सब तो हम से खायी नहीं गयीं। खाने से जो बची उन्हें हमने दूसरे दिनके लिये जमीनमें गाड़ दिया। दूसरे दिन जब एक सेठ को मालूम हुआ तो वह अपने दल-बल सहित आया और साथ में भांति-भांतिकी चीजें लाया। हमने कहा—"पहले अपनी कल की भिक्षा समाप्त कर लेंगे तब खायेंगे।

इन बातोंसे आपकी वृत्तिका थोड़ा-बहुत पता लग सकता है। एक ओर तो यह हाल था और दूसरी ओर आप के बहुत-से भावुक भक्त आरती उतारते थे। इन पंक्तियोंके इस अधमलेखक की समालोचक दृष्टि सदा श्रीमहाराज के मुखकी ओर लगी रहती थी कि इससे इनके मनोभाव में कोई अन्तर तो नहीं आया। परन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ समझ सकता था उसका सारांश यही है कि वे मान-अपमान दोनों ही में उदासीन भावसे रहते थे। उधरके नगरों और गांवों में आपका बड़ा

भारी मान था। मुझे जानकीप्रसादजी ने बताया था कि एक बार जब महाराजजी हाथरस पधारे थे तो उनकेपास मिठाई कितनी आयी इसका तो मुझे अनुमान नहीं किन्तु हाँ उस दिन महाराजके ऊपर कई मन फूल अवश्य चढ़ गए होंगे। सम्पूर्ण शहर फल और मिठाई लेकर टूट पड़ा था। एक ओर आपके इस भारी सम्मानकी ओर देखते हैं और दूसरी ओर उन्हें घर-घर भिक्षा माँगते देखते हैं तो हमारी बुद्धि चक्करमें पड़ जाती है। तभी तो स्थितप्रज्ञके विषय में कहा है–"मानापमानयोस्तुल्यः तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।"

रामघाट में इमली के नीचे एक फूस की कुटी थी। उसमें सिरकी लगी थी। बाहर एक लँगोटी और भीतर जल भरा कमण्डलु। भगवती भागीरथी के तट पर उस महान् योगी की पर्ण-कुटी त्याग-वैराग्य की प्रतीक थी। प्रातःकाल आप किसी से मिलते नहीं थे। प्रायः पाँच-छः घण्टे निरन्तर एक आसन से बैठे ध्यान मग्न रहते थे। उस समय कोई उनके समीप जा नहीं सकता था। मध्याह्न में गांव में भिक्षा करने जाते और तीसरे पहर सत्संगियों की शङ्काओं का समाधान करते थे। यही उनकी चर्या थी।

महाराज के उपदेश करने की शैली ऐसी अद्भुत थी कि सुनते ही बनता था। आप बिना कुछ पूछे यों ही उपदेश नहीं करने लगते थे। जो जैसा अधिकारी होता उसे प्रश्न करने पर वैसा ही उपदेश करते थे। जो भक्तिनिष्ठ होता उसकी शङ्का का वे सर्वतोभावेन भक्ति का निरूपण करके और जो ज्ञाननिष्ठ होता उसके प्रश्न का ऊँचे से ऊँचे वेदान्त-सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा निराकरण करते थे तथा योगनिष्ठा को उसके अधिकारानुसार योग का उपदेश कर देते थे। उनके यहाँ से ज्ञानी, भक्त, आर्यसमाजी, मुसलमान या ईसाई कोई भी असंतुष्ट रह कर नहीं लौटता था। कोई कितना ही बड़ा

भावुक हो अथवा कितना ही तीव्र तत्त्वजिज्ञासु हो दोनों ही आपके पास से सन्तुष्ट होकर लौटते थे। आपके पास आने वालों में पण्डित, भक्त, वकील, मास्टर, विद्यार्थी ओर साधारण लोग सभी प्रकार के व्यक्ति होते थे। वे लोग जो प्रसाद लाते थे वह उन्हीं को वितरित कर दिया जाता था। फिर जो जैसा प्रश्न पूछता उसका समुचित उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो जाता। रात के प्रायः बारह बजे तक सत्संग होता रहता। फिर भक्तगण अपने घरों को चले जाते और महाराज कुटिया बन्द कर ध्यानस्थ हो जाते। रात्रि में केवल दो-तीन घण्टे ही निद्रा लेते थे। यह बात कई प्रत्यक्षदर्शी विश्वसनीय महानुभावों-से सुनी गयी थी।

उन दिनों मेरे जीवन में भी त्याग की एक क्षीण-सी रेखा उदित हुई थी। उन्होंने मुझे प्रेम से नहला दिया। मुझ अधम से भी कोई इतना स्नेह कर सकता है—यह मैंने कल्पना भी नहीं की थी। यद्यपि महाराज प्रातःकाल किसी से भी मिलते नहीं थे, मौन रहते थे, संकेत भी नही करते थे, किन्तु मुझे कुटी में आने की आज्ञा थी। एक दिन मैं गया तो उन्होंने एक पुस्तक निकाली। पुस्तक सम्भवतः उड़िया लिपि में श्रीमद्भगवद्गीता की थी। उसमें उन्होंने मुझे बुद्ध भगवान् का एक चित्र दिखलाया। जिस समय भगवान् बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्ति के संकल्प से बिना खाये-पिये बैठे थे उसका शरीर सूख गया था, केवल अस्थिमात्र अवशिष्ट था। चित्र बड़ा ही भावपूर्ण था। ऐसा चित्र फिर कभी देखने में नहीं आया। उन दिनों मैं काशी में साहित्यिक जीवन व्यतीत करता था। उसे छोड़कर इसी संकल्प से हिमालय की यात्रा कर रहा था कि जब तक भगवत्प्राप्ति न होगी तब तक हिमालय से लौटकर देश में नहीं आऊँगा। सम्भवतः मेरे इस भाव की पुष्टि के निमित्त ही उन्होने

मुझे वह दिव्य चित्र दिखाया था। उनके मुखमण्डल पर एक विचित्र ओज और तेज था। उनकी वाणी में भी बड़ा आकर्षण था। श्लोक इस लय से बोलते थे कि सुनते-सुनते रोंगटे खड़े हो जाते थे। उनके मुख से यह श्लोक मैंने जब-जब सुना, तब-तब जीवन में एक विचित्र स्फूर्त्ति मिली और हृदय में एक विचित्र भाव उत्पन्न हुआ। वे तन्मय होकर गाते थे—

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं विलयं तु यान्तु।
अप्राप्य बोधं बहुकालदुर्लभं इहासनान्नैव समुच्चलिष्ये ॥*

वे प्रायः गङ्गा के किनारे ही विचरते थे। सो भी १०–२० कोस के आस-पास। एक बार आप हरिद्वार पधारे थे। तब बीस पच्चीस दिन का महाविद्यालय ज्वालापुरमें ठहरे। पं० पद्मसिंह शर्मा और नरदेव शास्त्री प्रभुति विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से आपकी प्रशंसा की थी। पं० पद्मसिंहजी शर्माने तो मुझसे कहा था कि महाराज-की वाणीमें जितना माधुर्य है उतना तो मैंने किसी साधु की वाणी में नहीं देखा। तिस पर भी असीम पाण्डित्य सोने में सुहागा है। ऋषिकेश से आगे वे कभी नहीं गये। कहा करते थे कि बदरीनारा-यण जाकर फिर लौटा थोड़े ही जाता है। उधर गये, सो गये। काशी भी मेरी स्मृति में एक ही बार गये थे। पीछे तो गङ्गाजी छोड़कर वे आस-पास के गांवों में भी चले जाते थे। वे कभी किसी सवारी पर नहीं चलते थे। पैदल चलने का उन्हें ऐसा अभ्यास था कि दस-बीस कोस चलना उनके लिये सामान्य बात थी। वे सदा एक चादर और एक कमण्डल रखते थे। इसके अतिरिक्त और कोई

---

* यहां आसनपर मेरा शरीर सूख जाय तथा मेरी त्वचा हड्डी और मांस नष्ट हो जायें तथापि जिसकी प्राप्ति बहुत काल में भी कठिन है उस बोधको प्राप्त किये बिना मैं इस आसनसे कभी हिलूंगा नहीं।

वस्तु साथ नहीं रखते थे। जिसके यहां से चलना होता, रात्रि में चुपके में उठकर चले जाते थे, किसी से कहते नहीं थे। सांप जैसे केंचुली को छोड़कर उसकी ओर फिर देखता भी नहीं, उसी प्रकार वे सब कुछ छोड़कर चल देते थे। लोग जहां भी आपका आगमन सुनते, वहीं सहस्रों की संख्या में दौड़ आते थे। आप सबसे समान भाव से मिलते थे। सबकी सुख-दुःख की बातें पूछते थे। जिससे भी बातें करते, वही यह समझता कि ये मुझसे अधिक प्यार करते हैं। आप ऐसे घुल-मिल जाते थे कि सभी आपको अपना आत्मीय स्वजन समझते थे। सब अपना सुख-दुःख बताते और छोटी-से-छोटी घर-गृहस्थी की बातों में भी आपसे सलाह लेते थे। किसी की लड़की का वर नहीं मिलता तो उसे वर बता देते और किसी को अनुष्ठान बता देते थे। सारांश यह है कि आप लोक-परलोक दोनों प्रकार की बातों में ही अपने आश्रितों की सहायता करते थे।

मुझे अपने सम्बन्ध में निजी अनुभव है कि वे मुझ पर कितना प्रेम रखते थे। यद्यपि उस समय मेरी गणना महाराज के भक्तों में किसी भी प्रकार होने योग्य नहीं थी। मुझ जैसे तो महाराज के लाखों परिचित होंगे। तब तक मैंने उनके दो बार एक-एक दिन को ही दर्शन किये थे। मैं श्रीहरि बाबाजी के यहां बांध पर आरोग्य-लाभ के लिये ठहरा था। होली के उत्सव पर महाराजजी भी पधारे। उस समय आपके साथ कई रईस, सेठ-साहूकार तथा बड़े-बड़े आदमी थे। मुझे जब पता लगा कि महाराज पधारे हैं, तो मैंने सोचा—"इतने बड़े आदमियों के बीच में मैं क्या जाऊँगा। जब महाराज कहीं एकान्त में बैठे होंगे तब दर्शन कर आऊँगा।" थोड़ी देर में मुझसे एक आदमी ने कहा, "महाराज तुम्हें बुला रहे हैं।" मैं अवाक् रह गया। इतना अधिक अनुराग! मैंने जाकर महाराज की

चरणधूलि मस्तक पर चढ़ाकर अपने को कृतार्थ किया। दूसरे दिन-से आप स्वयं उस कुटिया में आ जाते जिसमें मैं ठहरा हुआ था और फिर तीन-तीन चार-चार घण्टे तक वहीं उपदेश होते रहते। ऐसी उनकी भक्तवत्सलता।

अस्तु: हिमालय से मैं पुनः रुग्ण होकर उनके चरणों में लौट आया और अपनी असफलता बतलायी। तब आपने मुझे प्रोत्साहित करते हुए कहा "भैया ! कोई बात नहीं, असफलता में ही सफलता छिपी रहती है। तुम्हारी लिखने-लिखाने की ओर प्रवृत्ति है, तुम पुस्तकें लिखो।" तभी मैंने 'चैतन्यचरितावली' लिखी। जिस दिन आरम्भ की उस दिन मैंने आदमी भेजा कि महाराज मुझे आशीर्वाद लिख भेजें। उसी समय तुरन्त आपने एक श्लोक लिखवाकर भेजा जो श्रीचैतन्यचरितावली के प्रथम खण्ड के आरम्भ में छपा है। फिर मेरी प्रार्थना पर आप श्रीहरिबाबाजी के बांध पर पधारे, जहाँ मैं चैतन्यचरितावली लिख रहा था और कुछ दिनों वहाँ विराजे भी। इसके अनन्तर अनेक बार मैंने दर्शन किये। जब भी मुझे कोई कठिनाई होती उनके चरणों में जाता और वे उचित परामर्श देते। वे सबके मन की जानते थे। जैसा जिसका रुख देखते वैसी ही उससे बात करते थे, कभी किसी में बुद्धि भेद नहीं करते थे। उनकी-सी सहनशीलता मैंने आज तक किसी में नहीं देखी। वे सबकी सहते थे और जिसे एक बार अङ्गीकार कर लेते थे अन्त तक उसका प्रतिपालन करते थे। अपनाकर ठुकराने की कल्पना वे मन से भी नहीं कर सकते थे। दयालु इतने थे कि घोर से घोर विरोधियों पर भी क्रोध कभी नहीं करते थे। उनके बड़े-से-बड़े अपराधों को क्षमा कर देते थे। एक भूले भाई ने उन पर प्रहार किया, उनकी नासिका में घाव भी हो गया, फिर भी आपने उससे कुछ नहीं कहा, प्रत्युत् उसे

दूध पिलाया और पुलिस तक में नहीं देने दिया। भोजन करानेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। अपने हाथोंसे भक्तों को परोसते और आग्रहपूर्वक खिलाते थे। वे दीनोंके प्रतिपालक थे। उनका तप सौम्य था, स्वभाव शिशुकी तरह था और वे सेवा लेना उतना नहीं जानते थे जितना सेवा करना। मैं जब भी जाता, मेरी सब बातों का स्वयं प्रबन्ध करते थे और लोगों को भी नियुक्त कर देते थे। मेरे ही साथ नहीं सभीके साथ उनका इसी प्रकार स्नेहमय व्यवहार था।

महाराजजी और श्रीहरिबाबाजी

बाबा हृदय को पकड़ना जानते थे और उसे निभाना भी। पीछे आपका संग पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी के साथ हो गया। यों कुछ परिचय तो पहले भी हो चुका था, परन्तु प्रधानतया इन दोनों महापुरुषोंका समागम बाँध बँधने के पीछे ही हुआ और फिर ऐसा हुआ कि दोनों मिलकर एक हो गये। जैसे निमाई और निताई दोनों घुल-मिल गये थे उसी प्रकार ये दोनों भी अन्योन्याश्रित भाव-से एक बन गये। भक्तगण हरि-हरात्मक भावसे इनकी पूजा करते थे। बाबा श्रीहरिबाबाजी की अपेक्षा ६-१० वर्ष बड़े थे। अतः यह उनमें पूज्यबुद्धि रखते थे। वे भी इनका अत्यन्त संकोच करते थे। स्वयं श्रीहरिबाबाजी कहते थे कि जबसे हम मिले दोनों में कुछ ऐसा संकोच का सम्बन्ध हो गया कि कभी घुल-मिल ही न सके। उन्होंने कभी मेरे सामने उपदेश नहीं दिया, कथा नहीं कही। मैं पहुंच जाता और वे कुछ कर रहे हों तो मुझे देखकर चुप हो जाते। मुझे कभी कोई आदेश या उपदेश नहीं दिया, सर्वथा मेरा रुख देखकर ही बातें कीं।

मैंने तो अपनी आंखों से सब प्रत्यक्ष देखा है। श्रीहरि बाबाजी और उनके स्वभाव में, रहन-सहन में एवं व्यवहार मैं पृथ्वी-आकाश का सा अन्तर था। वे प्रवृत्ति के कार्यों से घबराते थे; इनका सब कार्य लोकहित के निमित्त जनसमूह में ही होता था। वे समय का कोई विशेष विचार नहीं रखते थे; जब तक चाहें उपदेश देते रहें, जब तक चाहें बात करते रहें; परन्तु इनके सभी कामों का पल-पल बँधा रहता था। ये सब काम घड़ी देखकर करते थे। व भक्तों के साथ हँसते-खेलते थे, उनके सुख-दुःख की बातें पूछते और घर-गृहस्थी-के विषय में भी सम्मति देते थे; इनके चाहे कोई मरो चाहे जीओ नीची दृष्टि करके कथा में बैठे रहना, कुच पढ़कर सुना देना, कीर्तन कर लेना और फिर किबाड़ बन्द करके बैठ जाना। कोई आओ, कोई जाओ, किसी से व्यवहार की बातें ही नहीं। न मिलना, न जुलना। उनकी पूर्णतया अद्वैत वेदान्त में निष्ठा थी, ये भक्तिपथ के पथिक हैं। इस प्रकार की विषमतायें होने पर भी दोनों एक हो गये। श्री उड़िया बाबाजी जब तक न पहुंचते तब तक बांध का उत्सव होता ही नहीं था। महाराज ने अपनी सब इच्छायें श्रीहरि बाबाजी-की इच्छा में मिला दी थीं। जितना उन्होंने निभाया उतना कोई निभा नहीं सकता। वे सदा श्रीहरि बाबाजी की भाव-भंगी देखा करते थे। इन्हें किसी बात से कष्ट न हो यही चिन्ता उन्हें सदा बनी रहती थी। इन तक वे किसी बात को सूचना नहीं पहुँचने देते थे। कीर्तन ठीक न होता और श्रीहरि बाबाजी के चित्त में दुःख हो जाता तो वे सभी को बुलाते, समझाते और इन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करते आने-जाने वालों की सारी देख-रेख उन्हीं पर थी। श्रीहरि-बाबाजी तो यह भी नहीं जानते थे कि कौन आया और कौन गया। कहां से रुपया आया, किसने दिया और क्या व्यय हुआ; इन सबकी सार सँभार वे स्वयं ही करते थे। श्रीहरि बाबाजी तो केवल कह भर

देते थे कि यह होना चाहिये। उनके समस्त कार्य दूसरों के उपकार-के निमित्त होते थे, या अङ्गीकार किये हुए के प्रतिपालन के निमित्त। जिसे उन्होंने 'अपना कहकर स्वीकार कर लिया, फिर उसकी चाहे कोई कितनी भी बुराई करे, वे उसे त्यागते नहीं थे। दोष देखते हुए भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। इतनी अदोष दृष्टि दूसरे स्थान पर मिलनी कठिन है। पहले इस प्रकार के संकीर्तन या सत्संग-महोत्सव नहीं होते थे, बांध के उत्सवों के पश्चात् ही सर्वत्र इनका प्रचार हुआ।

उत्सवों में

मेरे ऊपर तो आपकी अत्यन्त अनुकम्पा थी। जैसे पिता पुत्र की बातों को मान लेता है उसी प्रकार वे मेरी सब बातों को मान लेते थे। अलीगढ़ में सर्वप्रथम वृहद् संकीर्तनोत्सव हुआ। उस उत्सव को सफल करने में रामस्वरूपजा केला का बड़ा हाथ रहा। उनकी इच्छा थी कि आज-कल जितने भी बड़े-बड़े महात्मा हैं सभी इस उत्सव में बुलाये जायँ। प्रायः सभी पधारे भी थे। वृन्दावन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी श्री बालकृष्णजी, श्री उड़िया बाबाजी, श्रीस्वामी एकरसानन्दजी, श्री स्वामी कृष्णानन्दजी (मण्डली वाले) श्री जयरामवास जी 'दीन' तथा और भी उस समय जितने संत थे आज उनमें से एक भी साकार रूप में इस पृथ्वी पर नहीं हैं। श्री हरि बाबाजी भी पधारे थे। वहाँ की सेवा का भार मुझ पर भी था। मैं स्वामी एकरसानन्द को लेकर महाराज उड़िया बाबा के पास गया। स्वामीजी वयोवृद्ध थे और उनके साथ उनके बहुत-से प्रसिद्ध शिष्य भी थे। महाराज का स्वभाव था वह किसी को देखकर न तो उठते थे और न प्रणाम करते थे। वे चौकी पर बैठते थे। सो बैठे रहे। स्वामी एकरसानन्दजी भी जाकर बैठ गये। दोनों महापुरुषों में बड़ी देर

तक बातें होती रहीं। कोई बात नहीं, तथापि मैंने अनुभव किया कि कुछ लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगी कि महाराज ने स्वामी जी को अभ्युत्थान नहीं दिया। यह एक अपूर्व सम्मेलन था, मेरी इच्छा थी कि यहाँ किसी बात पर कटुता न होने पावे। मैं महाराज के समीप गया और बोला, "महाराजजी आपको स्वामी एकरसानन्द के पास चलना चाहिये।" आप तुरन्त उठ पड़े और बोले, "चलो।" हम गये और महाराज वहाँ स्वामीजी के तख्त के नीचे जाकर बैठ गये। स्वामीजी ने ऊपर बैठने को बहुत कहा, किन्तु ऊपर नहीं बैठे। इसका सभी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सारांश यह कि उनके मन में कभी किसी प्रकार के मान-अपमान का भाव नहीं था। सदा अपने आनन्द में मग्न रहते थे। हम जहां के लिये प्रार्थना करते तुरन्त 'हाँ' कर लेते थे।

कुछ लोगों के कहने से मैंने एक बार फर्रुखाबाद में एक महोत्सव का आयोजन किया। मैं वहां की भीतरी बातों से परिचित नहीं था। श्रीहरि बाबाजी और श्री उड़िया बाबाजी दोनों से प्रार्थना की और दोनों ने स्वीकार कर ली। महाराज पैदल चलकर पहुँचे। किन्तु वहां आपस में ही विरोध हो गया। जैसा चाहिये था वैसा उत्सव नहीं हुआ। मुझे बड़ी लज्जा लगी और ज्वर भी आ गया। आपने कहा, "कोई बात नहीं, ऐसा तो होता ही है। साधुओं के लिये मान-अपमान क्या? प्रसंग बहुत बड़ा है। मेरे कहने का तात्पर्य तो इतना ही है कि आप कभी किसी के दोष की ओर ध्यान नहीं देते थे तथा मान-अपमान और सुख-दुःख में सदा समभाव से रहते थे।

जब झूसी में चौदह महीने का अखण्ड संकीर्तन एवं साधनानुष्ठान हुआ तब मैंने आपसे पधारने की प्रार्थना की। ढाई-तीन सौ कोस

पैदल चलकर आना कोई सामान्य वात नहीं थी। आपने मेरी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली और रामघाट से पैदल चलकर आप झूसी पधारे। जहाँ तक मुझे स्मरण है जब से आप रामघाट आये तब से यही एक काशी-प्रयाग की उनकी यात्रा सबसे प्रथम और अन्तिम थी। यहां आपने प्रायः दो-ढाई महीने निवास किया। यहाँ हमने आपके लिये जो फूस की कुटिया बनवायी थी उसका चित्र अभी तक ज्यों का त्यों मेरी आँखों के सामने नृत्य कर रहा है। उस स्थान को देखकर अब भी मेरा हृदय भर आता है। आप यहां बड़े प्रसन्न रहे। आपने अत्यन्त अनुराग प्रदर्शित किया। आप दर्शकों में बिना आसन के सर्वसाधारण लोगों के साथ बैठ जाते और दूसरे लोग गद्दी-तकिया लगाकर आसनों पर बैठते। आप नीचे बैठे-बैठे सुनते रहते। आपने कभी अपना अपमान अनुभव नहीं किया। कुछ मण्डलेश्वर आये। वे गद्दा-तकिया लगाये बैठे थे। आप साधारण व्यक्ति की भांति आगे भूमि पर जाकर बैठ गये। किसी ने कहा, "आसन दो।" आपने कहा, "आसन की क्या आवश्यकता है, पृथ्वी ही आसन है।"

यहां से आप काशी गये। विश्वनाथ जी के दर्शन करके आपने कहा, "अभी आधे विश्वनाथ जी के दर्शन हुए हैं। आधे तब होंगे जब मालवीयजी के दर्शन हों। आप विश्वविद्यालय गये। मालवीय जी के बंगले में जाकर खिड़की से झांका। वे आराम कर रहे थे। आपने कहा, "आराम करने दो।" किसी ने मालवीय जी को सूचना दे दी। वे मिलने को उत्सुक थे। सुनते ही दौड़ आये। दोनों महापुरुष एक दूसरे से परस्पर लिपट गये और प्रेम के आँसू बहाने लगे। काशी से लौट कर आप फिर झूसी आये तथा अनुष्ठान समाप्त कर सबको साथ ले रामनवमी के अवसर पर श्री अयोध्या जी गये।

उन दिनों लखनऊ में राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) का अधिवेशन होने वाला था। हम सबके कहने पर आप लखनऊ भी पधारे। वहाँ महात्मा गांधी से भी भेंट की। महात्मा जी आपके त्याग-वैराग्य को देखकर बहुत प्रभावित हुए। लखनऊ में आपको जो भी अपने घर भिक्षा के लिये बुलाता वहीं उसकी प्रसन्नता के लिये चले जाते थे। कई बार तो एक-एक दिन में साठ-साठ, सत्तर-सत्तर घरों में भिक्षा करते थे। कभी-कभी मैं भी साथ जाता था। परन्तु मैं तो ऊबकर लौट आता, तथापि आप सबका मन रखते। आप दूसरों का कष्ट नहीं देख सकते थे। भूख न होने पर भी यदि कोई आग्रह करता तो उसे प्रसन्न करने के लिये खा लेते थे। स्वयं कष्ट उठा लेते, किन्तु दूसरे का कष्ट नहीं देख सकते थे। इन्हीं कारणों से पीछे आपका पेट भी बिगड़ गया।

आश्रम

जिन दिनों श्रीवृन्दावन में मैं श्रीकृष्णलीला दर्शन लिख रहा था, उस समय मैंने आपसे वृन्दावन पधारने की प्रार्थना की। आप वहाँ पधारे और वहीं कुछ भक्तों ने एक छोटी-सी कुटिया बनाने का प्रस्ताव रखा। मैंने इसका विरोध किया। किन्तु मेरा तो एक ही मत था। बहुमत के सामने वह अमान्य हो गया। संयोग की बात कुटिया बन गयी और फिर शनैः शनैः उसका विस्तार हो गया। रामघाट, कर्णवास आदि स्थानों में भी श्रीमहाराज के भक्तों ने उनके नाम से आश्रम बनवाये। महाराज की इन सबमें आसक्ति तो क्या होनी थी, किन्तु इस प्रवृत्ति के विस्तार से भिन्न प्रकृति के लोग एकत्रित हो गये। महाराज अङ्गीकार करना तो जानते थे, किन्तु अङ्गीकार करके त्यागना उनकी प्रवृत्ति के विरुद्ध था। प्रवृत्ति में ऐसा होता ही है, इसमें किसी का दोष नहीं।

महासमाधि

महापुरुषों की समस्त चेष्टायें लोक-कल्याण के निमित्त होती है। यह संसार तो असुख है, अनित्य है। सदा से यह ऐसा रहा है और रहेगा भी। महापुरुष आते हैं, अपने स्वभाव से इसे सुखमय बनाने के लिये। परन्तु फिर भी यह ज्यों-का-त्यों हो जाता है। कुत्ते की पूँछ को चाहे जितने दिन कसकर सीधी बाँधो, खोलोगे तो फिर टेढ़ी-की-टेढ़ी। न जाने कितनी बार भगवान् ने इस अवनि पर अवतार लिया, फिर भी संसार से दुःख का अत्यन्ताभाव नहीं हुआ। यह संसार दुखःमय ही बना रहा यह नहीं, इसमें आकर बड़े-बड़े अवतारों को भी दुःख सहन करने पड़े। जिसका संसार के साथ सम्बन्ध हुआ, ऐसा कौन है जिसे संसार ने अपयश का पुरस्कार न दिया हो। जितने महापुरुष हुए हैं सभीने अस्त्रों के द्वारा, विषके द्वारा या अन्य व्यवहारों के द्वारा ही अपने प्राणों का नरित्याग किया है। संसारी लोग उनके यथार्थ स्वरूप को भूलकर उन्हें शत्रु समझने लगते हैं और उन पर आक्रमण कर बैठते हैं। वे भी ऐसी ही लीला रचकर शरीर का अन्त करना चाहते हैं। मरते-मरते अपनी मृत्यु से भी वे लोगों को शिक्षा दे जाते हैं। भगवान् बुद्ध, श्री शंकराचार्य तथा अन्य आचार्यों पर भी संसारी लोगोंने आक्रमण किये तथा विष के प्रयोग किये। महात्मा पल्टू को जीवित ही जलाया गया था। इन बातों में कोई न कोई रहस्य होता है। हम अल्पज्ञ प्राणी उसे समझ नहीं सकते। महात्मा गान्धी यदि साधारण मृत्यु से मरते तो उनका सुयश इस प्रकार दिग्-दिगन्तमें व्याप्त न होता। उन्होंने गोली से मरकर बहुत बड़ा कार्य किया। श्री उड़िया बाबाजी कहते थे, "जब मैंने महात्माजी की मृत्यु की बात सुनी तब मैं मुक्तकण्ठसे ढाह मारकर रोने लगा।"

कौन जानता था, आप भी ऐसी ही मृत्यु से अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर का अन्त करेंगे।

इधर कुछ दिनोंसे आप बहुमूत्र रोग से पीड़ित थे पैर की नस में भी कुछ सूजन आ गयी थी। इससे चलने में भी कुछ कष्ट होता था। फिर भी आप चलते ही थे। गत वर्ष के माघ मास में अर्द्ध कुम्भी थी। उस समय श्रीहरिबाबाजी प्रायग पधारे थे । यहाँ से माँ श्री आनन्दमयी को वे बाँध के उत्सव पर ले गये थे। पूज्य बाबा इस उत्सव में पधारने वाले थे। किन्तु अस्वस्थता के कारण न आ सके। उनके बिना श्री हरिबावाजी उत्सव करते ही नहीं थे। जब नियत तिथि पर नहीं पधारे तब श्री माँ को लेकर श्री हरिबाबाजी महाराजजी के पास वृन्दावन पहुंचे। बावा के लिये महाराजजी सब कुछ करने को तैयार रहते थे। उन्हीं के लिये वे घड़ी रखने लगे और यथासाध्य समय से ही कथा कीर्तनादि के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने लगे। फिर भी पैदल चलने के नियम को वे अब भी निभाते थे। इसके लिये श्री हरिबाबाजी ने कभी आग्रह भी नहीं किया। अवकी बार उन्होंने बल देकर कहा, "आपके लिये नियम-फियम क्या ? आप मोटर पर चलें। आपके बिना उत्सव नहीं होगा। श्रीमाँ ने भी उनके कथन का समर्थन किया। बस, आप मोटर द्वारा बांध गये। यही सवारी द्वारा आपकी प्रथम यात्रा थी। बाँध के उत्सव के पश्चात् श्री हरि बाबाजी तो माँ के साथ नैनीताल, अल्मोड़ा चले गये और महाराज वृन्दावन आकर निवास करने लगे।

गर्मियों के पश्चात् आषाढ़ मास में श्री हरिबावाजी काशी होते हुए झूसी पधारे और एक वर्ष तक यहाँ संकीर्तन भवन में निवास करनेका विचार किया। कातिक तक प्रायः पाँच महीने आप रहे भी। आपके बिना श्रीउड़िया बाबाजी का मन बहुत उदास रहता था। अतः

आपको बुलाने के लिए उन्होंने चार-पाँच बार आदमी भेजे। किन्तु आप यहाँ से नहीं गये। कहला दिया, 'मेरा एक वर्ष तक वहीं रहने का संकल्प है'।

जब कार्तिक में आपने महाराज की विशेष अस्वस्थता का समाचार सुना तो आपसे झूसी में नहीं रहा गया। आप माताजी को साथ लेकर मार्गशीर्ष में वृन्दावन चले गये। वहां जाकर यह निश्चय हुआ कि श्री उड़िया बाबाजी, श्रीहरि बाबाजी और माँ श्री आनन्दमयी सब मिलकर दिल्ली, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, खन्ना और होशियारपुर होते हुए कांगड़ा-ज्वालामुखी की मोटरों द्वारा यात्रा करें और फिर होलीपर लौटकर वृन्दावन में उत्सव हो। इस निश्चय के अनुसार प्रायः सौ भक्तों के सहित तीनों ही दिल्ली आदि होते खन्ना पहुँचे। वहां महाराज श्री उड़ियाबाबाजी को ज्वर आ गया। स्वास्थ्य तो पहले भी अच्छा नहीं था। अतः आगे की यात्रा स्थगित करके सब वृन्दावन आ गये और सबने मिलकर वहीं होली का उत्सव किया।

मैंने श्रीहरि बाबाजी से प्रार्थना की थी कि आप हमें बीच ही में छोड़कर चले गये थे। अतः इस चैत्र के नवसंवत्सरोत्सव में अवश्य पधारें। आपने उत्तर दिया, "भाई! हम तुम्हारे ही काम से वृन्दावन गये हैं। श्री बाबा को लेकर हम चैत्र के उत्सव में अवश्य आयंगे और अधिक से अधिक रहेंगे। इस बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और हम बड़े उत्साह से उत्सव का विशेष आयोजन करने लगे। पीछे समाचार मिला कि श्री उड़िया बाबाजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अतः वे न पधार सकेंगे। अकेले श्रीहरि बाबाजी पधारेंगे। हम लोग बड़ी तैयारियां कर रहे थे। हमारी हार्दिक इच्छा थी कि महाराज पधारें। किन्तु जब स्वास्थ्य की बात सुनी तो हमने आग्रह करना उचित न समझा।

चैत्र कृष्णा त्रयोदशी रविवार को सायंकाल में पूज्यपाद श्रीहरि बाबाजी अकेले ही जाने की सहर्ष अनुमति दे दी। उन्हें पहुंचाने के लिये वे मोटर तक आये, प्रसाद भी दिया और जब तक मोटर चली नहीं तब तक खड़े रहे। इस प्रकार बड़े स्नेह भरित हृदय से विदा दी।

श्रीहरि बाबाजी चतुर्दशी सोमवार को प्रातःकाल यहाँ पधारे। मङ्गलवार को तार आया कि उड़िया बाबाजी का शरीरान्त हो गया। पढ़कर सभी को आश्चर्य हुआ। श्रीहरि बाबाजी कहने लगे; "मैं तो सकुशल छोड़ आया था।" श्रीमां कहने लगी...कहीं गिर तो नहीं पड़े।' फिर सोचा—शरीर का क्या पता ? कब इसका अन्त हो जाय ? यह तो क्षणभंगुर है ही। यही सब सोच रहे थे कि दूसरे दिन बुधवार को 'अमृत बाजारपत्रिका' में पढ़ा, "उनकी उनके किसीशिष्य ने हत्या कर दी।" यह और भी आश्चर्यजनक बात थी। एक-से-एक आश्चर्य की बात सुनकर सभी चिन्तित, उद्विग्न और खिन्न थे। उसी समय यथार्थ घटना का पता लगाने के लिये एक आदमी वृन्दावनभेजा गया। गुरुवार की रात्रि में उसने सूचना दी, 'एक पागल से व्यक्ति ने गड़ासा लेकर तीनबार उनके सिर पर प्रहार किया। वहां के सभी लोग अत्यन्त दुःखी हैं, आपकी प्रतीक्षा में हैं। उसी समय श्रीहरि बाबाजी ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया और वे चैत्रशुक्ला तृतीया शुक्रवार को यहां से वृन्दावन के लिये चल पड़े।

इस घटना से मेरे हृदय की क्या दशा हुई यह कुछ कहा नहीं जा सकता। बड़े उत्साह से इस उत्सव की तैयारियां कर रहा था। मुझे अब भी आशा थी कि सम्भव है, श्रीमहाराजजी पीछे से आ जायँ। दूर-दूर से लोगों को आमन्त्रित किया था। किन्तु सभी उत्साह धूलिमें मिल गया। आश्रम में खिन्नता का वातावरण व्याप्त हो गया। सर्वत्र इसी घटना की चर्चा थी यद्यपि मैं एक विशेष अनुष्ठान में हूँ। कहीं

जाने का नियम नहीं है, प्रयाग भी नहीं जाता। कुटी के संगम तक वस इतना ही इस अनुष्ठान में मेरा संसार है। तथापि महाराज के परलोक प्रयाण की बात सुनते ही मेरी जाने की इच्छा हुई। किन्तु इतने लोग उत्सव में आये हुए हैं, स्वयं श्रीहरि बाबाजी भी विराजमान हैं, ऐसे समय कैसे जायँ ? जब दूसरे दिन दुर्घटना का विवरण सुना तो मैंने श्रीहरि बाबाजी से प्रार्थना की कि मुझे आज्ञा हो तो मैं ही हो आऊँ। उन्होंने कहा, "भैया ! तुम जाकर क्या कर लोगे। जो होना था वह तो हो गया। ये तो सांसारिक शिष्टाचार है। अब उनका शरीर तो वहां होगा नहीं।" बड़े लोगों की आज्ञा में ननु न च नहीं करना चाहिये। मैं चुप हो गया। किन्तु मेरे मन में एक विचित्र उथल-पुथल मच रही थी।

सभी नियमों के अपवाद होते हैं। अपवाद ऐसे ही समयों के लिये हैं। जब पं० वागीशजी शास्त्री ने बताया कि अन्त समय महाराज ने तुम्हारी ही चर्चा करते हुए प्राणों का परित्याग किया है तो मुझसे नहीं रहा गया। शनिवार को प्रातः पुराणपाठ सुनकर तथा त्रिवेणी-स्नान करके शङ्करजी को साथ ले, मैं वायुयान द्वारा दिल्ली पहुँचा और वहाँ से श्री आदित्यनारायण के साथ उनकी मोटर द्वारा शाम के सात बजे वृन्दावन श्री महाराज के आश्रम में पहुँच गया। इस आश्रम पर मैं अनेकों बार आया हूँ। पर आज इसकी ओर जाने में भय लग रहा था। मोटर ज्यों-ज्यों आश्रम की ओर बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों हृदय बैठता जाता था। वहाँ पहुँचने पर देखा आश्रम की श्री नष्ट हो गयी है। सर्वत्र एक उदासीनता का वातावरण छाया हुआ है। आश्रम के कण-कण से मानो विषाद फूट-फूटकर बह रहा है। उस समय वहां कोई दिखाई नहीं दिया। सब वस्तुएँ अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थीं मेरा हृदय भर रहा था, मुझे रोना आ गया। रास-मण्डप में

पड़कर मैं रो पड़ा। मेरे रुदन को सुनकर भक्तगण इधर-उधर से एकत्रित हो गये। श्री हरिबाबाजी ने कहा, "यहाँ आकर श्रीमहाराजजी की जो दशा सुनी उससे तो बड़ा आश्चर्य हुआ, उस समय उन्हें देह का अनुसंधान ही नहीं था।

जो लोग उस दुर्घटना के समय वहाँ उपस्थित थे उनसे पता लगा कि उस दिन चैत्रकृष्ण चतुर्दशी सोमवार था। मध्याह्नोत्तर में वे नियमानुसार सत्संगभवन में पधारे। उस समय और भी बहुत-से लोग कथा सुनने आते थे। आनन्दजी 'भगवती कथा' की नित्य कथा कहते थे। आते ही उन्होंने पूछा, "झूसी के उत्सव का क्या हाल है ?" आनन्दजी ने कहा, 'महाराज ! अच्छा है। श्रीहरि बाबाजी पहुंच ही गये हैं, माँ श्री आनन्दतयी आ गयी हैं, यहाँ से श्री नित्यानन्दजी गये हैं। ओर चतुःसम्प्रदाय के रामदासशास्त्री आदि भी जानेवाले हैं। उत्सव बड़े आनन्द से हो रहा है। आप कोई चिन्ता न करें।" उनके मन में थी कि मेरे न जाने से वहां निराशा तो नहीं हुई। और भी उत्सव की एक-दो बाते पूछी। फिर 'भागवती कथा' आरम्भ हुई। वीसवे खण्ड की कथा हो रही थी, प्रह्लाद जी का प्रसङ्ग था। अध्याय की समाप्ति में एक पृष्ठ शेष था कि उसी समय एक पागल-सा व्यक्ति काला कम्बल औढ़े बगलमें कुट्टी काटने का गड़ासा दवाये वहां आया। महाराज तो नेत्र बन्द किये कथा में ध्यानमग्न थे। और भी बहुत से नर-नारि कथा श्रवण कर रहे थे। उसने आते ही महाराज के सिर पर गड़ासे का प्रहार किया। महाराज का हाथ ऊपर सिर पर गया कि उसने पुनः प्रहार किया। इससे उँगली कट गयी। उसने तीसरा प्रहार और किया। वे प्रहार इतना शीध्रता से हुए कि किसी को उसे पकड़ने का साहस ही नहीं हुआ। एक बूढ़ी माई ने उसे प्रहार करन से रोका तब औरों ने भी दौड़कर पकड़ा। कुछ लोगों ने

आवेश में आ उसे मारा और वह तत्क्षण वहीं मर गया। महाराज का शरीर कुछ स्थूल था। उनके सिर से रक्त के फब्बारे छूट रहे थे। चारों ओर की भूमि रक्त रञ्जित हो गयी। उनके समीप ही हत्यारा मरा पड़ा था। वहां का दृश्य अत्यन्त बीभत्स था। सभी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे। जितने मुँह उतनी बाते। वस्त्र रक्त-रञ्जित हो गये थे। हाय ! विधाता की कैसी कुटिल गति है। जिस सिर पर मनों पुष्प चढ़े थे उसी पर ऐसा निर्दयतापूर्ण प्रहार ! जिस भूमि में नित्य ही कथा, कीर्तन, रास और रामलीला आदि होती थीं, जो भूमि इत्र, गुलाब और चन्दनादिसे सींची जाती थी वही रक्तरंजित हो रही थी ! क्या कहा जाय, कुछ कहते नहीं बनता।

मेरे जाने पर उनके कृपापात्रों ने बताया—वे पहले से ही कहा करते थे कि मैं ऐसे-वैसे थोड़े ही मरूँगा। रक्त की नदियाँ बहाकर जाऊँगा। वे कहते थे—'हम जानबूझकर इस प्रवृत्ति में फँसे हैं। तुम लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि कोई कैसा भी सिद्ध हो जो इस प्रवृत्ति में फँसेगा उसे दुःख उठाना पढ़ेगा। जो कामिनी-काञ्चन संसर्ग रखेगा उसको यही सब सहन करना पड़ेगा।'

यथार्थ में बात यही है। महापुरुषों के जीवन की प्रत्येक घटना से बड़ी भारी शिक्षा मिलती है।वे प्राणियों के उपकार के निमित्त स्वयं अपने शरीर पर कष्टों को झेलते हैं। प्रभु ईसा मसीह अपने शिष्यों द्वारा ही पकड़ाये गये और उन्हें शूली पर लटकाया गया। उनके पवित्र वलिदान से ही आज ईसाई धर्मका इतना प्रचार हुआ। महात्मा गाँधी की हत्या भी तो उन्हीं के एक देशबन्धु ने की थी। देवी जौन को भी उन्हीं लोंगों ने जीवित जलाया जिसकी स्वतंत्रता के लिये वह प्राण पण से प्रयत्न कर रही थी। इस संसार की कुछ ऐसी ही उल्टी रीति है। महापुरुषों को संसार की ओर से यही पारितोषिक

मिलता है ।

महाराज का समस्त जीवन परोपकार में ही बीता था । वे निराश्रयों के आश्रय थे, दीनों के बन्धु थे और मुमुक्षुओं के सर्वस्व । उनके यहां कथा-कीर्तन का अखण्ड सत्र चलता रहता था। उनके सान्निध्यमें सभी श्रेणी के पुरुष आश्रय पाते थे । परस्पर विरोधी विचार के व्यक्ति भी उनके पास रहते थे। वे परम सहिष्णु, धैर्यवान् और निर्भय थे । उनका सम्पूर्ण जीदन परमार्थ के कार्यों में ही व्यतीत हुआ था । इस समय उनकी आयु ७३ वर्ष के लगभग थी । फिर भी ज्ञानार्जन की उनकी इच्छा कम नहीं हुई थी । नित्य ही कुछ न कुछ नयी बात याद कर लेते थे । उन्हें कितने श्लोक कण्ठस्थ थे इसकी कोई गणना नहीं । मैं जाता तो अपनी दैनन्दिनी दे देते और कहते कि तुम्हें जो सुन्दर श्लोक याद हो इसमें लिख दो । उनका श्लोक उच्चारण का ढङ्ग ऐसा सजीव था कि उसके विषय को उच्चारण करते-करते मूर्तिमान् करके खड़ाकर देते थे । उनके गुण महान् थे । भक्तवृन्द उनका जीवन लिखना चाहते हैं । यहां मैं जीवन लिखने नहीं बैठा हूँ । मैं तो केवल उनका स्मरण कर रहा हूँ । 'भागवती कथा' लिखने में मुझे उनके द्वारा बड़ी स्फूर्ति मिलती थी । वे आनन्दके द्वारा उसे नित्य सुनते और सभी को सुनवाते थे । कवि की कृति की कोई कलाकार आदर करे—उसके लिये इससे बड़ा पुरस्कार और कुछ नहीं हो सकता । नया खण्ड निकालते ही सबसे पहले मैं श्री **उड़िया बाबाजी** और श्रीहरिबाबाजी के पास भेजता था । मेरे लिये यही बड़े सौभाग्य की बात थी कि ये महापुरुष उसे सुनते थे । इससे मुझे लिखने में प्रोत्साहन मिलता था ।



बाल ब्रह्मचारी पं० श्रीजीवनदत्तजी महाराज, नरवर

"महान्तस्ते समचिताः प्रशान्ता विमन्यः सुहृदः साधवो ये।"

श्रीमद्भागवत

नाना प्रकार के पाप-पुण्यमय मिश्रकर्मकलापजनित शुभाशुभ कर्मफलों को भोगने के लिये उत्पन्न हुए जीवों को कल्याण पथपर अग्रसर करने के लिये भगवदिच्छा से समय-२ पर सन्तजन इस कर्म-भूमि भारत में अवतीर्ण हुआ करते हैं। उनकी एक क्षणभर की सत्संगति भी इस भयङ्कर भवसागर की उत्तुङ्ग तरङ्गमाला में पड़कर डूबते उतराते मानव समाज को पार करने के लिये सुदृढ़ नौका के समान होती है—"क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।" ऐसे महापुरुषों के सङ्ग से होने वाले परमश्रेय का मूल्य आंका नहीं जा सकता। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी भी ऐसे ही जगदुद्धारक महापुरुषों की श्रेणी में थे।

आज हमें उस अतीत काल का स्मरण हो उठा है जब हमें जिला बुलन्दशहर की पूर्वीय सीमा पर स्थित भागीरथी तटवर्ती रामघाट नामक तीर्थस्थान में स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्रीहीरानन्द जी की निवास-कुटी पर प्रथमवार श्रीउड़िया बाबाजी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय वे त्यक्त-दण्ड अवस्था में थे। तब तक लोग उनके अगाध गम्भीर्ययुक्त व्यक्तित्व से समुचित परिचित नहीं हुए थे। रामघाट के कुछ सत्संगप्रेमी और साधुसेवी व्यक्तियों को भी इसके कुछ काल पश्चात् ही उनके उपदेशामृत को पान करके कृतार्थ होने का अवसर मिला। प्रसङ्गवश वार्तालाप चलने पर उन्होंने बताया कि उनका पुण्य शरीर उत्कल देशवासी

गौड़ ब्राह्मण वंश में प्रकट हुआ था। वे बाल्यकाल से ही स्वभावतः विरक्त मनोवृत्ति के थे, तथापि अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने देशसेवा के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन में भी पर्याप्त भाग लिया। उन दिनों वे जगन्नाथपुरी के गोवर्धनमठ में नैष्टिक ब्रह्मचारी के रूपमें रहते थे। फिर वहीं अधिक रुग्ण होने पर उन्होंने आतुर संन्यास लिया। रोग शान्त होने पर 'एक एव चरेद्भिक्षुः' इस वाक्य का निर्वाह करते हुए वे असंग और अपरिग्रही होकर विचरने लगे।

उन दिनों आप श्रीमद्भागवत के इन भगवद्वचनों के अनुसार अधिकारि भेद से कर्म उपासना और ज्ञान तीनों ही साधनों का उपदेश करते थे—

'योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित ॥
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥'*

आप यदृच्छा से विचरते हुए ही इस प्रान्त में सबसे पहले रामघाट में पधारे थे। धीरे-धीरे अपने अद्भुत और अभूतपूर्व गुणगण के कारण आप सर्वत्र विख्यात हो गये और फिर श्रद्धालु भक्तों के

* मनुष्योंके श्रेय-साधन की इच्छा से मैंने तीन प्रकार के योगों का वर्णन किया है—ज्ञान, कर्म और भक्ति। इनके सिवा और कहीं कोई मार्ग नहीं है। इनमें से ज्ञान विरक्त पुरुषों के लिये है जो कर्मों का त्यागकर देनेवाले होते हैं। किन्तु जिनका चित्त कर्मों से उपराम नहीं है और जो भोगों की कामनावाले हैं उनके लिये कर्मयोग है। तथा जो न तो भोगों से उपराम है और न उनमें अत्यन्त आसक्त है उसे भक्तियोग सफलता प्रदान कर सकता है।

अत्यन्त प्रार्थना करने पर अनेकों स्थानों में विचर कर उन्हें अपने सदुपदेशों से पवित्र करने लगे। आपके परिमित सरल और सरस शब्दों में ज्ञान की बड़ी ठोस सामग्री भरी रहती था। एक बार कुछ अँग्रेजी पढ़े-लिखे पदाधिकारियों ने पूछा—"आप बड़े सिद्ध संत सुने जाते हैं, कोई चमत्कार दिखाइये।" तब आप बोले—"इससे अधिक और क्या चमत्कार दिखाऊँ कि मेरा शरीर जड़ होने पर भी बोलता है, सुनता है, देखता है, चलता है और नाना प्रकार के कार्य करता है।" इस प्रकार स्वभाव-सरल परिमित शब्दों द्वारा शास्त्रीय दुरूह अर्थ के विवेचन की आपकी बड़ी ही सुन्दर शैली थी। ऐसे अनेकों उदाहरणों की छाप उनके अनुयायियों के हृदय पटल पर सदाके लिये अङ्कित है।

श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज ने हमें बतलाया था कि एक बार कोई बात पूछने के उद्देश्य से उन्होंने (श्री करपात्री जी ने) प्रसिद्ध अध्यात्मवेत्ता (*Spritualist*) श्री बी० डी० ऋषि द्वारा पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी केअजर अमर आत्मा का आह्वान कराया था। किन्तु उत्तर में उन्हें यही ज्ञात हुआ कि वे अपने पाञ्चभौतिक कलेवर को विभिन्न तत्त्वों में विलीन कर सदा के लिए अजर-अमर भावापन्न हो विश्वव्यापक बन चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे परम क्षमाशील राग-द्वेषादि विवर्जित उच्चकोटि के महापुरुष थे।

जिस समय षड्दर्शनाचार्य पण्डित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रमजी महाराज का नरवर में ब्रह्मनिर्वाण हुआ उस समय ब्राह्ममुहूर्त में ही श्री उड़िया बाबाजी उनके पास पहुंच गये थे। उन दिनों आप नरवर से चार कोस की दूरी पर थे। पता नहीं, किस सूचना के आधार पर रात्रि में किस समय चलकर आप इतनी जल्दी नरवर

आ गये थे। श्री पण्डित स्वामी जी का देहावसान होने पर हमने देखा कि आपके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। आप गद्गद् कण्ठ से कह रहे थे कि आज हमारे संन्यासीमण्डल का विद्या-भास्कर अस्त हो गया। फिर आप ही के तत्त्वावधान में आप ही के संकल्प बल से ब्रह्मीभूत पण्डित स्वामीजी का निर्वाणोत्सवबड़ीधूमधाम से मनाया गया।

उनके जीवन की अनेकों झाँकियों का हम कहाँ तक वर्णन करें। उन्हें इस जीवन में हम भूल नहीं सकते। उनके कृपा परवश भक्तजन उनका पवित्र जीवन-चरित्र लिखने का विचार कर रहे हैं,—यह जानकर हमें अकथनीय हर्ष हुआ। बाबा 'तीर्थ' नामा संन्यासी थे। अपने जीवन में इन्होंने इस पद का पूर्णतया निर्वाह किया। अब लीलासंवरण करने पर उनके नश्वर शरीरस्थ कार्य तत्त्व अपने कारणतत्त्वों में लीन हो गये हैं। तथापि हमें पूर्ण आशा है कि उनका जीवन-चरित्र तैयार हो जाने पर उनकी अजर-अमर कीर्त्ति चिर-काल तक हमारे देश में स्थिर रहेगी।



स्वामी श्रीभजनानन्दजी एकरसानन्दाश्रम, मैनपुरी

मेरे जीवन के दो ही पथ-प्रदर्शक मिले हैं—एक श्री उड़िया बाबाजी और दूसरे स्वामी एकरसानन्द जी सरस्वती। समय समय पर दोनों ही महापुरुषों ने मुझको मार्ग दिखाया था। वैसे तो अनेक बार उड़िया बाबाजी महाराज के चरणों में रहने का सौभाग्य मिला। परन्तु एकबार कर्णबास में, जिस समय श्रीजयदयाल गोयन्दका भी गर्मियों में वहाँ सत्सङ्ग करा रहे थे, मुझको प्रायः एक मास श्रीमहाराज के पास रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कभी-कभी वे मुझे प्यार से बुलाते थे। यद्यपि उस समय सभी लोग मुझको 'भजनानन्दजी' कहते थे, परन्तु बाबा मुझे 'भजनलाल' या 'भजना' कहकर बुलाते तब मुझे भगवान् राम के स्वभाव की यह चौपाई स्मरण हो आती थी --

राम विलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि-सुमिरि सोचन हँसि मिलनी॥

मुझे तो बाबा साक्षात् भगवान् ही प्रतीत होते थे। उपनिषद् का 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' यह मन्त्र उनके जीवन में सार्थक प्रतीत होता था। वे छोटे से छोटा काम तो यहां तक करते थे कि अपने हाथ से परोस कर सबको भोजन कराते थे, और जब आसन पर बैठते थे और हम लोग जब उनका पूजन करने के लिए जाते थे तो साक्षात् विराट भगवान् ही जान पड़ते थे।

मैं बराबर एक माह कर्णवास में ठहरा। उस समय बाबा की सन्निधि में मुझे जैसा सुख-प्राप्त हुआ वैसा माता-पिता के पास रह कर भी नहीं मिला। बाबा के प्रति मेरे ही नहीं, सभी के यही भाव थे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा विराट् भगवान् का पूजन कर रहे हैं ।

स्वामी श्रीकृष्णानन्द जी अवधूत

निरभिमानता के प्रतीक श्री बाबा

श्री वृन्दावन धाम में एक बार मैंने एकादशी-व्रत रखा था। दैव-वश उस दिन फलाहार का कोई प्रबन्ध न हो सका। श्री महाराज के कृपापात्र श्रीपल्टूबाबा को किसी प्रकार इसका पता लग गया कि आज अवधूतजी के फलाहार का प्रबन्ध नहीं हुआ है। उन्होंने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना कर दी। कृपासिंधु बाबा ने सुनते ही मुझे बुलाने के लिये बाबू रामसहाय को ब्रह्मनिवास आश्रम भेजा। महाराजजी की आज्ञा शिरोधार्य कर मैं श्रीचरणों में उपस्थित हुआ। उस समय आप गुफा के ऊपर बरामदे में विराजमान थे। मुझ-जैसे अधमाति-अधम, पतिताति-पतित, तुच्छातितुच्छ व्यक्ति के पहुंचते ही आप अपने आसन से उठकर खड़े हो गये और मेरा हाथ पकड़कर मधुर तथा मृदुल शब्दों में कहने लगे, "इसी आसन पर (जिन पर वे स्वयं विराजमान थे) बैठकर भोजन कीजिये।" इन शब्दों को सुनकर मैं तो आश्चर्य समुद्र में डूब गया। ऐसे जगत्प्रतिष्ठत महापुरुष होने पर भी उनके अन्तःकरण में अभिमान की गन्ध भी नहीं थी। मेरा हृदय प्रेम से सराबोर हो गया। क्षुधा निवृत्त-सी हो गयी तथा एकाग्रता के कारण मन प्रफुल्लित हो गया। आज्ञानुसार जैसे-तैसे फलाहार किया, परन्तु अनर्थ निवृत्ति का भोजन निरभिमानता भी प्राप्त हुआ; क्योंकि वास्तव में निरभिमानता ही मुक्ति का स्वरूप है—'यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा।' जन्ममृत्यु रूप बन्धन का हेतु अभिमान ही है। निरभिमानता या दीनता ही मुक्ति का हेतु है। विचार दृष्टि से ही निर्णय होता है कि जो कर्त्ता होता है वही गुणी होता है, क्योंकि संसार में कर्त्तव्य के

अधीन ही गुण का आरोप होता है। अर्थात् जितना और जैसा कर्त्तव्य होता है उतने और वैसे ही गुण का व्यक्ति आरोप किया जाता है। इसलिये गुणरूप बन्धन का कारण कर्त्तव्य ही है। जितना गुण होता है उतना ही अभिमान होता है, बिना गुण के अभिमान की सत्ता ही नहीं। अतः स्पष्ट हुआ कि कर्त्ता ही गुणी होता है और गुणी ही अभिमानी कहा जाता है। इसके विपरीत जो अकर्त्ता है वह निर्गुण होगा वह निरभिमानी भी होगा। अतः ब्रह्म अकर्त्ता और निर्गुण है। सुतरां ब्रह्म और निरभिमानी में कभी किसी प्रकार का भेद सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये निरभिमानता ही ब्रह्मसाक्षात्कार का यथार्थ लिङ्ग है।

श्रीमहाराज में निरभिमानता सदा सर्वथा मूर्त्त रूप से विद्यमान थी। तभी तो मेरे-जैसे व्यक्ति को भी आपने अपने राजसिंहासन पर बैठाकर भोजन करने की आज्ञा दी। यह व्यवहार उनकी ब्रह्मनिष्ठा का ही परिचायक था।



दण्डिस्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती

मुझसे प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी महाराज के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखने के लिये कहा गया है। वैसे तो मुझे उनके सत्संग-सुख का जो यत्किञ्चित अनुभव हुआ है वह मेरे लिये इतने महत्व की वस्तु है कि उसे लिखना मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो अपने जीवन के उन पवित्र क्षणों की घटनाओं का उल्लेख करके मैं उन्हें सामान्य कोटि में निविष्ट कर रहा हूँ—मानो ऐसा करके मैं उनका मूल्य घटा रहा हूँ; फिर भी उस समय की विलक्षण अनुभूतियों का मेरे अन्तःकरण पर जो प्रभाव पड़ा है उससे मेरे जीवन को दिशानिर्देश प्राप्त हुआ है; अतः उस विषय में कहने-सुनने और लिखने की चाह मेरे हृदय में आरम्भ से ही है।

जब मैं नर्मदा तट पर विचर रहा था उस समय मैंने पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के न तो दर्शन किये थे और न विशेष कुछ सुना ही था। सर्वप्रथम 'कल्याण' में प्रकाशित उनके वेदान्तविषयक उपदेशों ने मुझे आकृष्ट किया। उनसे मेरी विचारधारा के प्रवाह को पर्याप्त गति मिली और तभी से मेरे हृदय में उनके प्रति सर्वाधिक आदर का स्थान बन गया। कुछ दिनों पश्चात् जबलपुर में स्वामी श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती से भेंट हुई। आपने एक दिन स्वाभाविक ही बतलाया कि मैं प्रायः श्री उड़िया बाबाजी के पास श्रीवृन्दावन में रहता हूँ, कभीआप भी वृन्दावन आइये। संयोगवश उसके कुछ ही दिनों पश्चात् मुझे पञ्जाब जाना पड़ा। वहां से लौटते समय मैं वृन्दावन जाने के लिये मथुरा स्टेशन पर उतर पड़ा और पैदल ही वृन्दावन पहुंचा। आश्रममें प्रवेश करते ही स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी को श्रीमद्भागवत की कथा

करते देखा। वहाँ रुककर दो-चार दिन सत्संग किया और फिर नर्वदातट को चला गया। उस समय श्रीमहाराजजी वहां नहीं थे, कहीं अन्यत्र पैदल भ्रमण कर रहे थे ।

इसके पश्चात् जब मैं दूसरी बार वृन्दावन आया तो अक्षय-तृतीया के दिन मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। आप मध्याह्न में बाहर से आये थे और भक्तों को सत्तू का प्रसाद बांट रहे थे। मैं उनकी सौम्य और सरल मूर्ति के प्रथम दर्शन में ही मुग्ध हो गया। प्रातःकाल आपका श्रीशंकरानन्दी गीता पर प्रवचन होता था। मैं उनमें उपस्थित रहने लगा। उस समय उनके मुखकमल से अत्यन्त ओजस्विनी भाषा में ज्ञान, वैराग्य, योग और भक्तिविषयक सूक्ष्मतम तत्त्व विनिःसृद होते थे। प्रवचन के अनन्तर लोग श्रीमहाराजजी से प्रश्न करते थे और वे संक्षिप्त भाषा में प्रायः एक ही वाक्य में उत्तर दे देते थे स्वामी श्री अखण्डानन्दजी की प्रेरणा से मैं भी कुछ प्रश्न करने लगा। पर उस समय तक मेरे प्रश्न शायद रुक्ष होते थे। कभी तो प्रश्न का उत्तर मिलता और कभी वे चुप हो जाते। मैं गम्भीरतापूर्वक प्रश्न और उत्तर पर विचार करता तथा सत्संग से लौटने पर स्वामी श्री-अखण्डानन्दजी से भी पर्याप्त विचार-विमर्श होता। उन्होंने महाराज-जी का सुन्दर अध्ययन किया था ।

धीरे-धीरे मैं निकट आता गया। प्रातःकाल ब्रह्ममुहुर्त में जो ध्यान और सत्संग होता था, उसमें मैं भी नियम से उपस्थित रहने लगा। श्रीमहाराजजी के एक अनन्य भक्त थे बाबू रामसहाय। इनके प्रश्न बड़े विलक्षण हुआ करते थे। पहले तो अन्य नवीन आगन्तुकों के समान मेरी भी उनके प्रति कुछ विपरीत धारणा बन गयी। मुझे लगता, इनके प्रश्न निरर्थक और व्यक्तिगत आक्षेपयुक्त ही होते है। किन्तु जब कुछ दिन मैंने ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुनी तो मुझे उनके

विचारों में पर्याप्त गम्भीरता दिखायी दी। सत्संग को विचारजन्य अनुभूति के साधनरूप में ही होने देना इन्हें रुचिकर था। इन्हें मिथ्या तुष्टि और गुरुडम से चिढ़ थी। इनसे हृदय मिलने पर महाराजजी के विषय में विशेष बातों का ज्ञान हुआ।

सत्संग में आते-आते मुझे श्रीमहाराजजी की कृपा दृष्टि और सहज स्नेहका अनुभव होने लगा। अब हमारी चर्चा का विषय केवल वेदान्त विषय ही नहीं रहा वरन् अनुभूति का स्वरूप, समाधि, योग की कतिपय क्रियायें और व्यवहार भी हो गया। महाराजजी कभी-कभी बिना पूछे भी मुझे अनेकों आवश्यक विषयों का मार्मिक उपदेश दिया करते थे। मुझ साधनहीन पर उनकी जो अहैतुकी स्नेहवर्षा हुई उसने मुझे पागल सा बना दिया। जब भी अवकाश मिलता मैं उनके पास चला जाता था। उस समय मेरा एकमात्र साधन उनका सत्संग ही रह गया था। वे भी अन्यान्य कार्यों से अवकाश पाते ही मुझे बुला लेते थे।

उनकी विशेषताओं के विषय में मैं कुछ भी कहने का अधिकारी नहीं हूँ, क्योंकि मैंने उनके व्यक्तित्व का समालोचनात्मक निरीक्षण कभी नहीं किया। मैं जब तक उनके संपर्क में रहा उन्होंने मुझे बराबर अपने स्नेह-सरोवर में निमग्न रखा। फिर भी अपने अनुभव के आधार पर इतना तो निःसन्देह कह ही सकता हूँ कि वे अपने समय की उच्चतम विभूतियों में से थे। मुझे जो शान्ति और आध्यात्मिक स्फूर्ति उनके चरणकमलों की छाया में प्राप्त हुई, वह अत्यन्त दुर्लभ थी। विचार के प्रसङ्ग में मेरे मन में कुछ ऐसे प्रश्न आ जाते थे जो प्रकरण ग्रन्थों की विचार प्रणाली से भिन्न भूमिका में उद्भूत होने के कारण अत्यन्त जटिल प्रतीत होते थे। उनको यथावत् समझकर उनका समुचित समाधान करना अशक्य-सा ही था। अनेकों

महात्माओं के सामने तो उनको उपस्थित करने में भी भय और संकोच अनुभव होता था। श्री महाराजजी के निकट तो भय या संकोच का कोई प्रसङ्ग ही नहीं था। उनके यहां ऐसे प्रश्नोत्तर के अवसर पर मर्यादारक्षण के लिये कृत्रिम नियमों का आश्रय नहीं लिया जाता था। उनमें स्वाभाविक ही ऐसा प्रभाव था कि उनके समीप किसी भी सहृदय को अशिष्ट होने की प्रवृत्ति नहीं होती थी। साथ ही उनके उत्तर इतने गम्भीर और मर्मस्पर्शी होते थे कि जिज्ञासु का हृदय शीघ्र ही समाधि-स्थिति का सा अनुभव करने लगता था। अतः उनके सत्संग से मेरे उन सभी प्रश्नों का अन्त हो गया जो मेरी आध्यात्मिक रसानुभूति में बाधक थे। इसके अतिरिक्त बहुत नवीन प्रकाश भी मिला।

विचार से जो लाभ होना चाहिये था वह तो हुआ ही, उसके सिवा बहुत बड़ा लाभ तो उनकी सन्निधि में रहकर उनकी स्वाभिविकी असंगता के दर्शन से हुआ। उसके द्वारा अपने जीवन के व्यावहारिक पक्ष को लक्ष्यानुरूप निर्माण करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। वे अपने कृपापात्र भक्तों को विचार के उच्चतम शिखरतक पहुंचाकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, वरन् ज्ञाननिष्ठा की दृढ़ता के लिए प्रयत्नशील रहने का भी उनका आग्रहपूर्ण आदेश था। उनके विचार में संन्यास का उद्देश्य निःस्पन्दता था। उनका कथन था कि इसके लिये तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये जब तक देह ऐच्छिक न हो जाय। जब तक प्राणस्पन्दनिरोध ऐच्छिक नहीं हो जाता तब तक साधक काम पर आत्यन्तिक विजय प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था, "बेटा! मेरा यह अभ्यास पचास वर्षों से चल रहा है। फिर बाद मैं मुझे पता चला कि उनको यह स्थिति स्वायत्त हो गयी थी।

मुझे श्रीमहाराजजी के सत्सङ्ग का सुयोग तब मिला जब वे वृद्ध और रुग्ण थे। उस समय भी मैंने उनमें अभ्यास की जितनी तत्परता देखी, उतनी आजकल के तरुण साधकों में भी मिलना कठिन है। एक दिन की बात है, श्रीमहाराजजी गङ्गातट पर विचर रहे थे। उस समय उनके साथ कोई पचास भक्त होंगे। रात्रि को सबके साथ आपने गाँव के बाहर एक खाली मकान में निवास किया। मैंने अर्ध-रात्रि के समय नींद खुलने पर देखा कि सब लोग निद्रादेवी की गोद में हैं और श्रीमहाराजजी आसन लगाये योग निद्रा में। उस समय स्वच्छ आकाश में पूर्णचन्द्र अपनी अमृतमयी शीतल रश्मियों से विश्व को शीतलता प्रदान कर रहा था। वह दृश्य आज भी मेरे हृदय में प्रत्यक्ष जैसा है। उन्होंने डटकर निद्रा शायद ही कभी ली हो।

मेरा यह सौभाग्य यद्यपि थोड़े ही काल में समाप्त हो गया। तथापि स्वल्प समय की ही स्मृतियाँ और अनुभूतियाँ मेरे लिये पर्याप्त हैं। उनकी असीम कृपा के लिये क्या कृतज्ञता प्रकट करूँ—यह मेरी क्षुद्रबुद्धि में नहीं आता। इतना ही आता है कि जो उनसे पाया है उस पर यदि यत्किञ्चित् भी आचरण करूँ तो वही सम्भवतः उनकी सबसे प्रिय सेवा होगी।



बाबा श्रीरामदासजी महाराज, करह (ग्वालियर)

प्रातः स्मरणीय बाबा का दर्शन सर्वप्रथम मैंने अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन यज्ञ झूसी में किया था। वहीं उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार से मैं उनकी ओर आकर्षित भी हो गया। उन दिनों बाबा का ऐसा स्वभाव था कि कोई कुछ भी बात करता हो आप चुप बैठे रहते थे। कोई प्रश्न करता तो प्रेम से समझा देते थे। जब मैं श्रीरामायणजी की कथा कहता तो आप बड़े प्रेम से सुनते थे। एक अन्य कथावाचक महोदय अनेक प्रकार के बाह्य दृष्टान्तों द्वारा जनता का मनोरञ्जन किया करते थे। इस पर [कहना नहीं चाहिये, विज्ञजन क्षमा करें] बाबा ने श्रीमुख से कहा था, "प्रेमभाव की कथा तो रामदासजी की ही होती है।"

अखण्ड संकीर्तन के समाप्त हो जाने पर मुझे प्रयाग-परिक्रमा, श्री अयोध्या यात्रा और लखनऊ पर्यन्त श्री स्वामीजी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् तो जहाँ-कहीं उत्सव होता, वे मुझे अवश्य बुलाते थे। श्रीरामायण की कथा में उनका अपार अनुराग देखा। मुझ पर उनकी अपार कृपा थी। मेरी तथा मेरे साथ रहने-वाले सन्तों की छोटी-छोटी आवश्यकताओं का भी वे बड़ा ध्यान रखते थे। यद्यपि इससे मुझे बड़ा संकोच होता था, परन्तु प्रेमवश वे मानते नहीं थे। खन्ना में उनकी आंखें प्रेमाश्रुओं से भर आयी थीं, जब उन्होंने कहा था—"बाबा! मेरा तो स्वास्थ्य ठीक नहीं है, आप गाड़ी पर बैठते ही हैं। वर्ष में कम से कम तीन बार अवश्य आया करें।" श्रीस्वामीजी के ये वचन मुझे जीवन भर नहीं भूलेंगे।

ऐसा कई बार हुआ कि जब सत्संग में स्वामीजी अद्वैत वेदान्त का वर्णन करते होते और मैं पहुंच जाता तो वे प्रसङ्ग बदलकर शुद्ध भक्तियोग को वर्णन करने लगते। कारण यही था कि नाम-रूप मिथ्या-प्रतिपादक अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादन द्वारा वे भक्तों के हृदय में ठेस पहुंचाना नहीं चाहते थे। ऐसा करना उनके स्वभाव के विपरीत था।

(१)

एक बार स्वामीजी के पास एक वकील साहब आये। वे ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते थे। उनसे उनकी इस प्रकार बातें हुई —

वकील साहब—प्रकृति ही सब कार्य करती है। जैसे एक बीज से अन्य बीज उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही पशु-से-पशु और स्त्री-पुरुष-संयोग से मनुष्यों की सृष्टि होती रहती है। मनुष्य पृथ्वी आदि तत्त्वों से असंख्य वस्तुयें तैयार कर लेता है।

स्वामीजी—परन्तु पृथ्वी आदि तत्त्वों को किसने बनाया ?

इस पर वकील साहब चुप हो गये। कुछ भी न बोले। तब स्वामी जी ने पूछा—क्या काम करते हो ?

वकील साहब—वकालत करता हूं।

स्वामीजी—तभी तो बुद्धि तर्कजाल में पड़ गयी है।

वकील साहब—क्या आप ईश्वर की सत्ता को समझा सकते हैं ?

स्वामीजी—एक वर्ष तक पच्चीस हजार नाम प्रतिदिन जपो, तब समझाऊंगा।

(२)

जब स्वामीजी स्थान करह के यज्ञ में पधारे थे तो बड़ी तत्परता से प्रत्येक कार्य की स्वयं देख-भाल करते थे। अपने निज जनों को सम्पूर्ण सेवा कार्य के लिये आज्ञा दे रखी थी। यहां तक कह रखा था कि

माला और भजन छोड़कर भी भगवत्सेवा भाव से सम्पूर्ण कार्य करो। कथा, कीर्तन, सत्संग एवं रासलीला आदि सभी कार्यक्रमों में बड़े प्रेम से सम्मिलित होते थे। उस समय उनका बड़ा ही अनुराग देखने में आया। उत्सव की समाप्ति के बाद जब विदाई का समय आया तो आपने कुछ भी भेंट स्वीकार नहीं की। बोले, "यहां से लेना नहीं है।" अपने एक सेवक रामबाबू के द्वारा आपने रजाइयों कीसेवा भी करायी। चुपके से आपने एक रसोइया को एक रजाई दे दी गयी। जब आपको पता लगा तो उसे फटकारा कि रजाई ली क्यों।

एक वार मैं रामघाट में श्रीस्वामी जी के पास श्री रामायणजी की कथा कह रहा था। वहीं स्वामी विवेकानन्दजी योगवसिष्ठ की कथा भी कहते थे। एक दिन कथा में यह प्रसङ्ग आया—

'मोह मगन मति नहिं विदेह की। महिमा सिय रघुवर सनेह की।'

उस समय श्रोताओं की आँखों में आँसू आ गये। अनेक संन्यासी सन्त भी बैठे थे। उनमें तीन-चारको प्रेमाश्रु आ गये। इस पर स्वामी विवेकानन्द कहने लगे, इनका संन्यास बिगड़ गया। ज्ञानी पुरुष कभी रो नहीं सकता।" तब स्वामीजी ने कहा, "प्रेम में ज्ञानी को आँसू क्यों नहीं आ सकते। राजा जनक को देखो, पूर्ण ज्ञानी होते हुए भगवत्प्रेम में कैसे रो रहे हैं? आजकल तो जनक-जैसा कोई भी ज्ञानी नहीं है। भगवत्प्रेम की महिमा ही यह है कि उससे ज्ञानी भी रो पड़ते हैं।"

(३)

एक बार श्रीस्वामीजी ने मुझसे कहा था कि हम और आप एक साथ तीर्थयात्रा को चलेंगे। उसके कुछ समय पश्चात् आप परम-धाम पधार गये। तीर्थयात्रा का प्रोग्राम पूरा न हो सका। स्वामीजी के परमधाम पधारने के दो वर्ष बाद मैं पण्ढरपुर गया। यह दक्षिण

का महान् तीर्थस्थान हैं, जहाँ श्रीविट्ठल भगवान् और रखुमाई (रुक्मिणीजी) विराजते हैं। एक दिन रात्रि में मुझे श्रीस्वामीजी ने स्वप्न में दर्शन दिया, मैंने पूछा "बाबा ! आप यहाँ कहाँ ?" स्वामीजी बोले, "मैंने आपसे कहा था न कि हम और आप एक साथ तीर्थयात्रा को चलेंगे इसीलिए आया हूँ।" ठीक उसी रात को मीरा और पुजारी को*भी आपने स्वप्न में दर्शन दिया और बतलाया कि हमने बाबा को वचन दिया था कि हम दोनों एक साथ तीर्थयात्रा को चलेंगे, इसीलिए आया हूँ।" प्रातःकाल नींद खुलने पर जब आपस में स्वप्नों की चर्चा चली तो हम सभी आश्चर्य करने लगे।

(४)

श्रीस्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि शिष्य के कल्याण के लिए उसमें गुरुनिष्ठा का होना नितान्त आवश्यक है। एक बार गुरुनिष्ठापर एक कथा भी सुनाई थी, जो इस प्रकार है—

उड़ीसा प्रान्त में एक कायस्थ सज्जन थे। उन्होने माँ काली की उपासना के लिए एक ब्राह्मणसे मन्त्र की दीक्षा ली थी। ब्राह्मणदेवता मदिरापान किया करते थे। दैववशात् मदिराके नशे में उन्होंने मन्त्र-का अशुद्ध उच्चारण किया। और शिष्य ने उसी को ग्रहण कर लिया वे एक वर्ष पर्यन्त अशुद्ध मन्त्र को ही जपते रहे। तब मां काली ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर कहा, "वत्स ! तुम्हारा मन्त्र अशुद्ध है, इसे शुद्ध करके जपा करो।"

शिष्य—माँ ! मेरा मन्त्र तो गुरुजी से मिला हुआ है, वह अशुद्ध कैसे हो सकता है ?

काली—तेरे गुरु ने मदिरा के नशे में मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण किया था।

---

*श्रीरामदास बाबा के सेवक।

शिष्य—माँ ! गुरु जी के दिये हुए जिस मन्त्र का केवल एक वर्ष जप करने से आपने साक्षात् दर्शन दिया वह अशुद्ध कैसे हो सकता है ? वह जैसा भी हो, मैं तो उसी का जप करूँगा।

काली—तेरी गुरुनिष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वर मांग।

शिष्य—माँ ! गुरुजी ने मुझे जो मन्त्र दिया है उसी का जाप करने से आप दर्शन दिया करें।

काली—एवमस्तु।

आज भी उड़िया प्रान्त में उस अशुद्ध मन्त्र से जितनी जल्दी सिद्धि मिलती है उतनी जल्दी शुद्धमन्त्र के जपने से नहीं मिलती।



स्वामी श्रीविज्ञानभिक्षुजी परिव्राजक (विशारदजी)

सन्त अकारण ही कृपा करते हैं।

यह बात सन् १९४२ के चैत्र मास की है। मैं पाठशाला के मैदान में घास पर बैठा था। सूर्यनारायण अस्त हो चुके थे। कुछ अध्यापक द्रुत गति से पग पथ पर जा रहे थे। उनमें से एक ने कहा "आप यहाँ बैठे क्या कर रहे हैं? चलिये, परमहंस श्रीउड़िया जी महाराज गंगातट से पधारे हैं, उनके दर्शन कर आवें।" पूज्य श्रीमहाराजजी का नाम तो पहले ही सुन चुका था, सुनते ही ज्यों-का-त्यों उठ कर चल दिया। एक वृद्ध अध्यापकजी के आदेशानुसार सत्संग चलाने के लिये कुछ प्रश्न भी सोच लिये।

इसी उधेड़-बुन में सहता निवासी भाई कन्हैयालालजी का बाग आ गया। पूज्य महाराजजी चौकी पर विराजमान थे। आस-पास की ग्राम्य जनता भी पर्याप्त मात्रा में थी। बड़ी ओजस्वी भाषा में आपका प्रवचन हो रहा था। सम्भवत: किसी प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा था। हम लोग भी पीछे बैठकर उपदेश सुनने लगे। भाषण का तारतम्य इस प्रकार से मिलता जा रहा था कि सभी प्रसंगगुम्फित होते हुए मेरे प्रश्नों के उत्तर थे। सारी शङ्काओं का समाधान सहज ही हो गया। जनता मन्त्रमुग्ध-सी होकर एकटक दर्शन करती हुई प्रवचन सुन रही थी। मैं भी चकित रह गया। वास्तव में मैंने जैसा सुना था उससे भी अधिक पाया; और पाया अपनी समझ से भी परे; नहीं, नहीं, बहुत परे।

प्रवचन समाप्त हुआ। लोग पुन: कानाफूसी करने लगे। यह

बात मुझे असह्य हुई। मैंने कुछ और सुनने की इच्छा से जान-बूझकर खड़े हो करबद्ध प्रणाम कर एक प्रश्न कर दिया—"यह प्रश्न-कर्त्ता कौन है ?"

पं० श्रीशिवदयाल जी ने करबद्ध प्रार्थना की, "महाराजजी ! यही चिरञ्जीलाल* हैं।"

"अच्छा ! यही है चिरञ्जी।" इन शब्दों को सुनकर मेरी क्या दशा हुई, लिखने की बात नहीं है।

"बताओ, तुम्हारे जीवन का क्या लक्ष्य है ?"

मैंने हड़बड़ाकर उत्तर दिया, "समाजसेवा।"

"अरे ! तू क्या समाजसेवा करेगा !"

मुझे पता नहीं कि आगे आप क्या-क्या कह गये।

कल रविवार है, प्रातःकाल आठ बजे आ जाना, मुझे आज्ञा दी गयी।

रात भर नींद नहीं आयी। श्रीसन्तों की महान् महत्ता और अपनी तुच्छता का विचार रह-रह कर आता रहा। अन्ततः यही निश्चय हुआ कि श्रीमहाराजजी ने मुझे अपना लिया है। सन्तों की कृपा अकारण ही होती है—यह ध्रुव सत्य है।

मैं प्रातःकाल सात बजे ही कुटिया के सामने पहुंच कर बैठ गया। उन दिनों आप प्रातःकाल प्रायः ६ बजे उठकर शौचादि से निवृत होते थे। परन्तु आज तो आठ के पूर्व ही बाहर निकल आये। मैं चरणों में लोट गया।

आप दतौन करते हुए चल दिये और मैंने कमण्डलु उठा लिया। आपके दर्शन करके सभी आकर्षित हो जाते थे। कुछ देर पश्चात् और लोग भी आ गये। बड़ी प्रसन्नता से सबने आपको स्नान कराया।

---

*लेखक का पूर्वाश्रम का नाम।

तत्पश्चात् आप मुझे अपने साथ बाग में ले गये और एक सन्तरे के पेड़ के नीचे एकान्त में ढेलों पर ही सिद्धासन से बैठ गये, जैसा कि आपका स्वभाव था।

मैंने निराकार ईश्वर के ध्यान के विषय में अपना प्रश्न और शङ्कायें आपके सम्मुख रखीं। यही विषय कई वर्षों से मुझे उलझन में डाले हुआ था। जिसका न तो तब तक समाधान हुआ था और न मुझे अभ्यास की विधि ही अवगत हुई थी। इसके लिये मैं कई सन्त-महात्माओं से प्रार्थना कर चुका था। आपकी मेरे ऊपर असीम कृपा तो पहले ही हो चुकी थी। प्रश्न का उत्तर बहुत ही थोड़े शब्दों में सयुक्तिक देकर, सभी शङ्काओं का श्रुतिप्रमाणपूर्वक समाधान कर बड़ी सरलता से अभ्यास की विधि समझा दी; तथा स्वयं करते हुए मुझे भी साथ-साथ कराने लगे। जब तक मुझे संतोष न हुआ बार-बार पूछते रहे। कई बार अभ्यास कराया और जब तक मैंने यह नहीं कह दिया कि अब कर लिया करूँगा, ठीक समझ गया हूँ, कोई रुकावट नहीं होगी—बीच में नहीं छोड़ा। लगभग डेढ़ घण्टा लग गया। मेरे हर्ष का क्या ठिकाना रहा-इसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

इधर लोगों की भीड़ जमा हो रही थी। मुझे देखकर कई लोग कहने लगे, "इतनी जल्दी ऐसा कसकर पकड़ा है।" उनका कहना यथार्थ था। अन्तर केवल इतना था कि वे मेरे प्रति कह रहे थे और मैं श्रीमहाराजजी के प्रति समझ रहा था।

श्रीभगवानदासजी, मास्टर प्रेम और नत्थीलालजी आदि हम लोग समय-समय पर रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर दर्शनार्थ जाया करते थे। उन दिनों आप अधिकतर गङ्गातट पर ही विचरते थे। मुझे प्रायः

यही सावधान करते थे, "बेटा ! विवाह के चक्कर में मत पड़ जाना।" जब मैं नौकरी छोड़ने के सम्बन्ध में प्रार्थना करता तो यही शब्द सुनने को मिलते, "अरे ! नौकरी स्वयं छोड़ देगी, तू क्या छोड़ेगा ?" अन्त में आज्ञा हुई, "जब मैं कहूँ छोड़ देना।"

एक दिन अचानक ही मुझे सम्बोधित करते हुए बोले, "अरे चिरञ्जी ! अब नौकरी छोड़ दे। तुझसे काम ठीक नहीं होता।" बात यथार्थ थी। मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। इस प्रकार श्रीमहाराजजी ने अध्यापकी छुड़ा गुरुपूर्णिमा सन् १९४१ ई० को कर्णवास में बाह्य चिह्न देकर सदैव के लिए निवृत्ति पथ का पथिक बना दिया।

यह हुई मुझ पर अकारण ही सन्तकृपा, जिसे यथार्थ कृपा कहना चाहिये। पूज्य गुरुदेव इस वाक्य को प्रातः कहा करते थे—'सन्त के भेद को वेद न जाने।' जिसे श्रुति भी जानने में असमर्थ है उसे मनुष्य और मनुष्यों में भी साधारण तथा उनमें भी मुझ जैसा बालबुद्धि क्या समझ सकता है ? फिर विशेषता यह कि श्रीमहाराजजी ने अपनी लीलाओं द्वारा अपने को ऐसा छिपा लिया था कि उन्हें समझना असम्भव था। सर्वथा असम्भव ही था। अतः यहां कुछ ऐसी घटनायें देता हूँ जिनमें यथावसर उन्हीं के कहे हुए सद्वाक्य घटित होते देखे हैं।

[१]

एक बार हम लोग श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर दर्शन करने गये। उन दिनों श्रीगुरुदेव गङ्गा किनारे रामघाट में ही रहते थे अवस्था भी पूर्ण त्याग और वैराग्यमयी थी। प्रायः हर समय ध्यानावस्थित

रहते थे कोई आओ, कोई जाओ, चाहे खड़े रहो चाहे बैठ जाओ, किसी ने प्रश्न किया तो बहुत थोड़े शब्दों में उत्तर दे दिया। नेत्र प्रायः बन्द या अर्धोन्मीलित अवस्थामें रहते थे।सदैव सिद्धासन से बैठते थे। स्त्री-समाज को दर्शन करने तक की आज्ञा नहीं थी। एक बाईने केवल दर्शन करने के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। एक खिड़की थी; कुटिया बन्द होने पर भिक्षा सामग्री उसमें होकर भीतर पहुंचा दी जाती थी। नौ-नौ घण्टे तक स्थिर समाधि में एक आसन से बैठे हुए तो लोगों ने स्वयं देखा था। मोहनपुर के भक्त-प्रवर श्रीरामदास जो प्रायः हर समय सेवा में रहते थे, कहा करते थे कि महाराजजी दूध का कटोरा मुँह से लगा देने पर भी ध्यानस्थ रहने के कारण पी नहीं पाते थे। प्रायः नौ बजे कुटी का द्वार खुलता था। दो-चार भक्त जो उस समय आ जाते थे, दर्शन-प्रणाम कर साथ-साथ श्रीगंगास्नान के लिये चल देते थे। श्री महाराजजी मार्ग में दातौन करते प्रायः मौन या कुछ परमार्थ चर्चा करते हुए धीमी चाल से ध्यानमुद्रा में ही आगे-आगे चलते थे। आपका स्वर कोमल और सरस था। उसमें तीक्ष्णता आदि को स्थान ही कहाँ था?

शौच-स्नान आदि से निश्चिन्त होने पर रेती में ही सत्संग होने लगता था। बारह बजे के लगभग कुटिया पर वापस पहुंचते थे और भिक्षा की झोली ले रामघाट या गोकुलपुर भिक्षा के लिये चले जाते थे तथा अन्य लोग अपने-अपने स्थानों को लौट जाते थे। रात्रि में दस बजे के पश्चात् कुटिया पर कोई रह नहीं सकता था तथा प्रातःकाल आठ बजे के पूर्व कोई नहीं जा सकता था। उन दिनों झाड़ी में हिंसक पशु भी देखे जाते थे, परन्तु आपका कथन 'फकीर बेख्वाहिश बेपरवाह होते हैं" पूर्णतया आप पर घटित होता था।

आपने मुझसे पूछा, "चिरञ्जी ! ब्रत रखता है ?" मैंने प्रार्थना की, "आज के दिन मेरी माताजी का देहान्त हुआ, अतः हमारे लिये जन्माष्टमी खोटी है ।" आप मौन रहे । थोड़ी देर बाद प्रसाद में पेड़े आ गये । तब मुझे प्रेम से देकर कहा, "खा ले ।"

सायंकाल हम लोग रामघाट गये और कुछ खा-पीकर जब लौटे तो प्रश्न हुआ, "कहां गये थे तुम लोग ?"

मैंने निवेदन किया, "बस्ती में चले गये थे ।"

"क्यों ? भूख लगी होगी ।" कुछ मुसकराते हुए बोले, "क्या खाया था ।

मैंने कहा, "पेड़े ।"

"और क्या ?"

मैंने उत्तर दिया, "और तो कुछ नहीं खाया ।"

श्रीगुरुदेव एक मास्टर की ओर देख कर मुस्करा गये । इन्हें तम्बाकू पीने की आदत थी । उसी समय मुझे भी याद आयी कि मास्टरजी ने बीड़ी पी थी । मैं भी उनकी ओर देखकर कुछ मुसकरा गया । मास्टरजी पर घड़ों पानी पड़ गया ।

तत्काल ही प्रसङ्ग चला कर आपने कहा, "बेटा ! आज के दिन अन्न नहीं खाना चाहिये । ब्रत रख कर धूम्रपान आदि नशा नहीं करना चाहिये । लोग व्रत रख कर भंग पीते हैं यह ठीक नहीं ।"

बस, मास्टर जोरावरसिंहजी ने श्रीगंगाजी में खड़े होकर सदैवके लिए धूम्रपान छोड़ने की प्रतिज्ञा की । इसी प्रकार आपके सकेत मात्र से कई लोगों ने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन का नियम भी लिया था ।

[२]

यों तो रामघाट के अधिकांश लोग साधु-सेवी थे। परन्तु श्रीमहाराजजी के कृपापात्रों में बिशेषत: श्रीवंशीधर जी और बाबू रामसहाय जी उल्लेखनीय हैं। पं० श्रीवंशीधरजी ने ही सबसे पहले पूज्य गुरुदेव का आरती-पूजन आदि किया। आपका यही प्रयत्न रहता था कि श्री गुरुदेव जी रामघाट में ही रहें। बाबू रामसहायजी ने तो अपना सर्बस्व ही दे डाला। ये अपनी सारी क्रियायें और भाव गुप्त रखने की चेष्टा करते रहे थे। अब भी इनकी विचित्र दशा है, कोई समझ नहीं पाता। लोगों की दृष्टि में तो ये सर्वदा श्रीगुरुदेव से झगड़ा-सा ही करते रहते थे। आप उनके गुप्त कृपापात्र थे।

एक बार रामघाट में जूतों की चोरी अधिक होने लगी। यह बात श्रीमहाराजजी तक पहुंची। आपने हँस कर कहा, "हमारे यहाँ सब कुछ है। सत्सङ्ग चाहने वाले को सत्सङ्ग, प्रसाद चाहने वालेको प्रसाद और जूते चाहने वाले को जूते।" सुनकर सब लोग हँस पड़े।

[३]

दो बङ्गाली नवयुवकों के पीछे खुफिया पुलिस लगी हुई थी। आपने उन दोनों को भोजन कराकर झाड़ी-ही-झाड़ी में होकर दूर पहुंचवा दिया। इस प्रकार उनकी रक्षा हो गयी। आप सत्सङ्ग में आकर बैठ गये, जहाँ पुलिस के लोग अपने अफसरों के साथ साधारण वेष में बैठे थे। वार्तालाप के बीच में आप कहने लगे, "देखो भैया! महात्मा किसी को बँधवाता नहीं, वह तो मुक्तिदाता है।" फिर अफसर की ओर देखकर मुसकराते हुए कहा' "क्यों रे! ठीक है न ?"

अफसर भी मुसकराता हुआ बोला, "महात्माजी ! आप ठीक ही कहते हैं ।"

जब वे लोग जाने लगे तो आपने उन्हें भी प्रसाद देकर विदा किया ।

[४]

एक बार हम लोग अनूपशहर दर्शन करने के लिए गये । शीतकाल था, श्रीगुरुदेव पं० श्री रामशंकरजी के बगीचे में विराजमान थे । रात को १२ बजे से पूर्व कभी सोते ही नहीं थे । प्रातःकाल सत्संग आरम्भ हो जाता था । रात को प्रायः १२ बजे मुझसे कहा, "हमारे लिये क्या लाया है ?" मैंने एक पुस्तक सामने रख दी ।

हम लोग सोने चले गये । नींद मुझे भी कम आयी । उठकर आपकी कुटिया में पहुंचा । आप ध्यानावस्थित थे । थोड़ी देर बाद बोले, "बत्ती जला दे ।" बत्ती जला दी गयी । अभी चार नहीं बजे थे । कहने लगे, "पुस्तक तो अच्छी है । मैंने साधन सम्बन्धी बढ़िया स्थलों पर चिन्ह भी लगा दिये हैं । यह असङ्गता के अभ्यास में बड़े काम की चीज है ।"

यों तो श्री गुरुदेव ने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और सुख-दुःख (अनुकूलता-प्रतिकूलता) के सम्बन्ध में असङ्गता के अभ्यास के प्रति उदाहरण सहित भली प्रकार क्रियात्मक रूप से समझा दिया था । मैंने पुस्तक उठाकर देखी । सारी पुस्तक में यत्र-तत्र लाल पेंसिल से रेखायें खिची हुई थीं ।

"श्री महाराज जी ! आज तो आप बिल्कुल ही नहीं सोये" मैंने कहा ।

आप बड़ी ही गम्भीरवाणी में कहने लगे, "जीव का सोना तो स्वभावसिद्ध है। वह हमेशा सोता ही रहता है। जागने पर जीव-जीव नहीं रहेगा।

[५]

एक बार एक बहुत बड़े आदमी श्रीमहाराजजी के दर्शन करने के लिये वृन्दावन आये। जब वे चलने लगे तो आप भी उनके पीछे-पीछे परमहंस आश्रम तक चले गये। उन भले आदमी ने आपको साथ चलने से नहीं रोका। शिष्टता के नाते ही सही, रोकना तो आवश्यक था। यह मुझे अखरा। अवसर मिलने पर मैंने प्रार्थना की, "भगवन्! आप तो लोगों के साथ-साथ उन्हें पहुंचाने के लिये इतनी दूर तक चले जाते हैं।" मुझे खिन्नमन देखकर आप हँसते हुए बोले, "अरे, तू बड़ा बावला है। देख, पहले के बड़े लोग महात्माओं के पास परामर्श, की इच्छा से आया करते थे। परन्तु अब वे हमसे भी मान-सम्मान चाहते हैं। हमारी इसमें क्या हानि है? लो, मान-सम्मान भी ले लो। हमारे यहाँ इसकी भी कमी नहीं है।"

[६]

रामनवमी का उत्सव कर आप करहसे ग्वालियर होकर होलीपुरा जा रहे थे। रात के नौ बज चुके थे। एक मन्दिर और कुँआ देखकर वहीं ठहरने का विचार कर लिया। मन्दिर के पुजारी ने न जाने, क्या समझा। कहने लगे, "महात्माजी! आगे आधे मील पर ही ठहरने का बड़ा अच्छा स्थान है।" श्रीमहाराजजी ने कहा, "अब तो आसन पड़ गया। हम लोग आपको कुछ कष्ट नहीं देंगे।" बस, मन्दिर और कुएँ से हट कर हम सबने आसन लगा लिये।

प्रातःकाल जब चलकर निर्दिष्ट स्थान पर दोपहर के लगभग पहुँचे

तो मार्ग में कोई स्थान नहीं मिला। आपने कहा, "यदि रात को उसकी बात मानकर चल देते तो कितना कष्ट पाते। संकल्प नहीं बदलना चाहिये। जो हो गया सो हो गया।'

[७]

एक गांव में प्रातःकाल श्रीगुरुदेव कुएँ पर खड़े दातौन कर रहे थे। गांव के बहुत से दर्शनार्थी तथा हम लोग आस-पास खड़े हुए थे। एक बहुत हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति हाथ में बन्दूक लिये हुए आया। पहले उसने बन्दूक अलग रख दी। फिर श्री गुरुदेव को बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चरण छूकर अलग खड़ा हो गया। जब वह चला गया तो लोगों ने कहा, "महात्माजी ! यह इस प्रान्त का बहुत बड़ा डांकू है। प्रायः चम्बल के खारों में रहता है। कभी बन्दूक अलग नहीं रखता। भोजन के समय भी पास ही रहता है। किसी को प्रणाम करना तो जानता ही नहीं। आज इसकी यह नयी बात देखने में आयी है।"

सन्तों के पास पहुँचकर ऐसे दुष्टों का स्वभाव भी बदल जाता है।

[८]

श्रीमहाराजजी प्रायः ग्रीष्मकाल में ही परिभ्रमण किया करते थे। ग्रीष्म की तपन और लू में सम्पूर्ण दुपहरी बाग में वृक्षों के नीचे और प्रायःसायं चलने में व्यतीत होते थे।

होलीपुरा से वृन्दावन जाते हुए आप आगरा पधारे। वहां के एक सुयोग्य भक्त ने आलू के कारखाने में उन्हीं कमरों में, जिनमें आलूऔर प्याज भरे पड़े थे, ले जाकर ठहरा दिया। सामने थोड़ी-ही दूर पर सड़े हुए पानी का कुण्ड था। दुर्गन्ध का क्या ठिकाना। सांस लेना भी कठिन था। शहर के अन्य प्रतिष्ठित लोगों ने दूसरे स्थानपर ठहरनेकी

बहुत प्रार्थना की। आप बोले, "साधु का आसन जहां पड़ गया, पड़ गया। दूसरे का चित्त दुःखी न हो, अब चाहे कितना ही कष्टसहन करना पड़े। विवश होकर हम लोगों को पन्द्रह-सोलह दिन वहीं काटने पड़े। आप कहा करते थे, "साधु को सब कुछ सहन करना चाहिये। सब कुछ सहन करना और परेच्छा पर निर्भर रहना ही साधुता है।'

[९]

पूज्यपाद अमरसा वाले स्वामी जी (श्रीरामानन्दजी सरस्वती) को फालिज मार गया था। वे गंगातट पर शहबाजपुर में अपने आश्रमपर थे। उनके शब्द-संकेत से ज्ञात हुआ कि वे आपसे मिलना चाहते थे। आप भी रामघाट में संग्रहणी रोग से पीड़ित थे। परन्तु अपने कष्टकी कुछ परवाह न करके चल दिये। बड़ी अनुनय-विनय करने पर हम लोगों के साथ लिया। कष्ट सहन करके शीघ्रता से चलकर उनसे मिले और तीन-चार दिन ठहर कर लौट पड़े। आप कहा करते थे—"शून्या दृष्टि वृथा चेष्टा।"

[१०]

आपको अन्य लोगों का ध्यान बहुत अधिक रहता था। एक बार पितृपक्ष की अमावस्या करके कर्णवास से भिरावटी को चले। वहां पूज्य श्रीहरिबाबा जी उत्सव कर रहे थे। कुटिया से चलने में दोपहर हो गया, प्रखर ताप बढ़ रहा था। नाव से गंगाजी पार करके बड़ी तेजी से चले। मार्ग में न पानी न वृक्ष। हम सब लोग व्याकुल अवस्था में भागते चले जा रहे थे। चार मील चलकर एक बाग और कुआं मिला। उसी के पास एक फूँस की कुटिया में आप जा विराजे। हम लोग यत्र-तत्र वृक्षों के नीचे जैसे-के-तैसे पड़ गये। प्याससे व्याकुल

होने पर भी बहुतों में इतना साहस न रहा कि कुँए पर जाकर जल पी लें। हम लोगों की व्याकुलता देखकर बाग वालों को सहृदयता दिखाने का अवसर मिला।

यह सब देखकर आप सायंकाल छः बजे वहाँ से चले। रास्ते में कहते जाते थे, "धूप में चलने से तो इस समय चलना ठीक है।" रात के दस बजे उत्सव-स्थल पर पहुंचे। लोगों ने बड़ा स्वागत किया। आप आसन पर इस प्रकार जा विराजे मानो कुछ हुआ ही नहीं।

इसी प्रकार एक बार अलीगढ़ से कर्णवास जाते हुए रात को नरवर पाठशाला ठहरे। आज हम लोगों को बहुत चलना पड़ा। हम तो थक ही गये थे, परन्तु आपकी चालसे हम लोगों ने यह जान लिया कि आज तो श्रीमहाराज भी थक गये हैं। आपकी वृद्धावस्था, लम्बी यात्रा, रोगग्रस्त शरीर और ग्रीष्मकाल। थकाने वाली सभी सामग्री तो थीं। थोड़ी देर बैठ कर बोले, "आज तो मनसे चला हूँ।"

[११]

आप कहा करते थे, "साधु का सबसे बड़ा शत्रु क्षोभ है। यह हुआ और साधुता नष्ट हुई।

एक बार आपको सम्पूर्ण समाज के सामने ही एक वयोवृद्ध विद्वान् ब्रह्मचारीजी ने बड़े ही कटुवाक्य कहे और तिरस्कार करते हुए धिक्कारा। ये कीर्त्तन के बहुत विरुद्ध थे। आप चुपचाप खड़े सुनते रहे, मानो कुछ हो ही नहीं रहा है।

[१२]

उत्सव हो रहा था। विद्वानों के प्रवचन, रास, कीर्त्तन और कथावार्ता की धूम थी। पण्डाल खचाखच भरा हुआ था। सनातन धर्म के एक बहुत प्रसिद्ध पण्डितजी, नहीं मालूम, क्यों खिन्न हो गये। वैसे

तो श्रीमहाराजजी का बड़ा आदर करते थे। किन्तु आज प्रवचन करने के लिये खड़े हुए तो सर्वप्रथम इन्हीं की कटु आलोचना करने लगे। अनाप-शनाप न मालूम क्या-क्या बके। उस दिन पंडितजी ने निवृत्ति-पथानुगामियों की कटु आलोचना ही प्रवचन का विषय बना लिया। विद्वान् ही ठहरे। विद्या के अभिमान में बहुत कुछ बोल गये। विषयान्तर के कारण पण्डित, विद्वान्, संन्यासी और वैष्णव महात्मा उठ गये। परन्तु आप जैसे-के-तैसे अचल स्थित रहे; यद्यपि सारी बौछार आप पर ही थी। जब उस समय का सारा प्रोग्राम समाप्त हुआ तब आप उठकर अपनी कुटिया में आये। मैंने कहा, "आज पण्डितजी तो बहुत बिगड़े हुए थे।" आप हँस कर बोले, "सेवा में कुछ कमी हो गयी होगी। पंडित और श्रीमान् मान-सम्मान के भूखे होते हैं। इन्हें तृप्त न करना अपनी ही भूल है।' प्रायः देखने में आता था कि असङ्ग रखते हुए भी औरों की भूल को अपनी बतलाकर समाज में शान्ति रखना आपका उद्देश्य था।

[१३]

आप सहता के बाग में थे। एक पण्डितजी आ गये और संस्कृत बोलने लगे। आपने मुसकराते हुए कहा, "पण्डितजी! मैं तो संस्कृत पढ़ा नहीं हूँ, हिन्दी भी अच्छी तरह नहीं जानता।" फिर क्या था? पण्डितजी धड़ाधड़ श्लोक बोलने लगे, परन्तु बोलते अशुद्ध थे। आप चुपचाप बैठे सुनते रहे। सब कुछ जानते हुए भी कुछ न बोले। पीछे उनकी पण्डिताई पर खूब हँसे।

[१४]

एक दिन एक ईसाई महोदय कहीं से आ गये। वे कदाचित् आगरे के थे। हिन्दू धर्म पर उन्होंने बहुत कटाक्ष किये। आप सब कुछ सुनते

रहे। हम लोगों में से भी किसी ने कुछ न कहा। उसकी मूर्खता पर हँसते-मुसकराते रहे। हम लोगों के मौन रहने से वह आगे बढ़ा और ब्रज-गोपियों पर कटाक्ष करने लगा। यह बात साधुओं को बुरी लगी। सम्भव था, कुछ झगड़ा हो जाता। आप बड़ी शान्ति से बोले, "अच्छा भाई! एक बात बताओ, तुम ईसाई होते हुए श्रीकृष्ण को प्रेम कर सकते हो?"

"नहीं" उसने कहा।

"ईसा को प्रेम करते हो या ईसाइयत को?" आपने प्रश्न किया।

वह घबड़ा गया कि क्या उत्तर दूँ? आपने समझ तो पहले ही सब कुछ लिया था। कहने लगे, "देखो, मैं हिन्दू साधु हूँ। परन्तु ईसा से प्रेम कर सकता हूँ। मैं ही क्या, प्रत्येक हिन्दू, हिन्दू रहते हुए, ईसा या बुद्ध आदि में से जिसे चाहे प्रेम कर सकता है। प्रेम अलग है और मजहब अलग। मजहब नियमों में बँधा होगा, प्रेम स्वतन्त्र है।" इसी प्रकार अनेक प्रकार से उसे समझाया। अन्त में बोले, "बेटा! तुम हिन्दू धर्म की व्यापकता और प्रेम की गूढ़ता को नहीं जानते।"

श्री गुरुदेव के साधुतापूर्ण व्यवहार से वह बहुत प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर क्षमायाचना करने लगा। आपने हँसते हुए कहा, "कोई बात नहीं, ऐसा तो होता ही रहता है।" पीछे वह हम लोगों में आपकी प्रसंशा करता क्षमायाचना करके चला गया।

[१५]

भोजन का समय था। भोजन गाँव से बनकर बाग में आ चुका था। इतने ही में आस पास के गाँवों से पच्चीस-तीस व्यक्ति और आ

गये हम लोग उनके लिये गाँव से प्रसाद माँग कर लाने की सोचने लगे। आप 'अरे ! नहीं रे ! कुछ न कुछ करो' कहकर उनसे बातचीत करने लगे। इतने में हाथरस से लड्डू-कचौड़ियों की झाल आ गयी। आपने हँसकर सबको प्रसाद बांटा। बीच में कहते जाते थे, "बेटा ! खूब खाओ, तुम्हारे ही लिये आया है। सबको तृप्त कर दिया और बोले, मैं किसी को भूखा नहीं देख सकता।" यह बात आप कभी-कभी कहा ही करते थे।

दूसरों को भोजन कराने में आपको बड़ा आनन्द आता था। आपके यहाँ भोजन-भण्डारों की बड़ी धूमधाम रहती थी। हर उत्सव और भण्डार के दिन भिक्षुक पंक्ति लगाकर भोजन करते हुए आपके ही यहां ही देखे गये थे और विशेष कन्ट्रोल और तेजी के समय में। यह दरबार सबके लिये खुला हुआ था। आप भिखारियों की हिमायत करते थे। जब उसके निकालने का प्रश्न आता तो आप कहते, अरे ! ईश्वर की सृष्टि में सब रहते हैं, किसे निकालोगे ?"

[१६]

इन्द्रियदमन, दया और दान की आप साक्षात् मूर्ति थे। इनके निर्वाह के लिये तो आप सदैव कटिबद्ध रहते थे। आप प्रायः कहा करते थे—"दया बिन संत कसाई। दया करी तो आफत आई। परन्तु कुछ परवाह नहीं—वे ख्वाहिश, वे परवाह।"

एक बार लक्ष्मणझूला (ऋषिकेश) से गुरुपूर्णिमा करने श्रीवृन्दावन धाम आ रहे थे। समय थोड़ा, यात्रा लम्बी और मार्ग में परिचित प्रान्त होने के कारण रोकने वाले भी बहुत थे। अतः प्रतिदिन अधिक ही चलना पड़ता था। त्रयोदशी की रात्रि को ज्वर आ जाने के कारण

मैं अलग पड़ रहा। आपकी दया दृष्टि तो प्रत्येक व्यक्ति पर रहती थी। पूछा, "चिरञ्जी कहाँ है?" मैंने सुन लिया। उठ कर समीप आया और चरणस्पर्श करके बैठ गया। बोले, "क्यों, ज्वर आ गया है? ओढ़ कर आसन से बैठ जा।" मैं बैठ गया। आपने झोले में से एक गोली निकालकर दी। गोली खाते ही मुझे कई बार इतना पसीना आया कि थोड़ी देर में ही न मालूम ज्वर कहाँ चला गया। बोले, "जा सो रह" प्रातःकाल होते ही पूछा "क्या हाल है?" मेंने कहा, आपकी कृपा से ठीक हूँ।" मुसकराते हुए बोले, "संकल्प न विगाड़ना। वृन्दावन तक पैदल ही चलना है। आज रात को १० बजे पहुँच जायेंगे। सवारी में नही बैठने दूँगा। बेटा! संकल्प करके उसे बिगाड़ना ठीक नहीं। जो हो गया सो हो गया। अरे! कोई इसका झोला ले लो।" बाबूजी ने मेरा झोला ले लिया।

चलना आरम्भ हुआ। लोग थके हुए तो थे ही। आप कृपा-दृष्टि से सबकी ओर देखकर बोले, "मेरे साथ लगे लिपटे चलो। रात के १० बजे तक वृन्दावन पहुंचा दूँगा।' दो एक को छोड़कर, जो पीछे रह गये, जिन्होंने आपका साथ छोड़ दिया, सभी चतुर्दशी की रात को कुटिया पर पहुँच गये। मुझ जैसे निर्बलों को सत्संग-चर्चा करते हुए साथ ही रखा।

[१७]

आपकी क्रियाओं में कभी-कभी वात्सल्य-स्नेह की झलक देखने में आ जाती थी। कासगंज से हाथरस आ रहे थे। गर्मी और धूप की तेजी से मैं ओर श्री प्रबोधानन्दजी बहुत व्याकुल हो गये। आपने बार-बार यह कहकर 'अरे बेटा! अब क्या है? आ गये। बस थोड़ी ही दूर रह गया है' उस धूपमें पाँच मील चलाया। निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचकर

मैंने कहा—"पाँच मील तो आपको वहुत ही थोड़ा होता है।"

[१८]

एक बार हाथरस में सत्सङ्ग हो रहा था। किसी ने कहा—"परमात्मा तो निराकार है।" आपने हँसकर कहा—"और यह सम्पूर्ण दृश्य तुम्हारा चाचा होगा।" सब लोग हँस पड़े। फिर आप गम्भीरता पूर्वक प्रवचन करने लगे।—"यह सबका सब ज्यों का त्यों आत्मस्वरूप ही है। यह तो जैसा का तैसा ही था, है और रहेगा। केवल दृष्टिमात्र का भेद है।"

आपकी दृष्टि सदैव पारमार्थिक रहती थी। जब कभी कोई व्यावहारिक क्रिया देखकर मैं प्रश्न कर बैठता तो आप उसका पारमार्मिक उत्तर देकर मेरा रास्ता रोक देते थे। मैं क्या लिखूँ वे क्या थे? ओहो! महार्णव की थाह कौन ले सकता है? मुझ जैसे को खड़े-खड़े क्षणभर में अनायास बिना अपने किसी संकल्प के अपनी ही प्रेरणा से सर्वत्याग कराकर व्यवहार से सदैव के लिए हटा दिया। क्या पायेगा कोई उनकी महत्ता का पता?

[१९]

एक बार साधु ने आपसे किसी की चोरी की चर्चा की। आपने उसे झिड़ककर रोका और कहा—"अरे! तेरी दृष्टि उधर क्यों गयी? हमें किसी की चोरी-चारी से क्या मतलव?"

श्री वृन्दावन में बड़े-बड़े लोग आपसे मिलने आते थे और आपके आसन पर कुछ रख जाते थे। दांव लगने पर यार लोग उड़ा ले जाते थे, क्योंकि आपके यहाँ सभी प्रकार के लोग आने लगे थे। एक दिन मैंने धीरे से डरते-डरते कहा—"ऐसा व्यवहार ठीक नहीं लगता। लोगों की आदत बिगड़ती है।" आपने कहा—"मुझसे क्यों कहते हो?

उन लोगों को रोको जो यहाँ रख जाते हैं। कोई रख जाओ, कोई उठा ले जाओ, मुझे क्या ?"

[२०]

एकबार सत्याग्रह के समय कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं पर किये गये जुल्म और अत्याचारों के सम्बन्ध में एक कविता सुनकर आप द्रवित हो गये थे। पूज्य बापू (महात्मा गाँधी) के निधन पर तो आप बहुत रोये। पाकिस्तान में बच्चों और स्त्रियों पर किये गये पाशविक अत्याचारों को सुनकर तो आप कहने लगे थे, "मैं नहीं जानता था कि मनुष्य इतना बदमाश होता है।"

पिछले दिनों मानव समाज की हीनावस्था को देखकर आप कहा करते थे, "मैंने नयी बात चलायी थी। विरक्तों को छोड़कर गृहस्थ-का सुधार करना चाहा था। सो नहीं कर सका। फेल हो गया। चलो भैया ! अब तो गंगाकिनारे चलो। अब तो वहीं वृक्षों के नीचे रहेंगे और रोटी मांग कर खायेंगे।" उनका कोमल हृदय मानव की दुर्दशा को देखकर द्रवित हो जाता था।

[२१]

एक साल वृन्दावन में मलेरिया का भयंकर प्रकोप था। कुनैन भी नहीं मिलती थी। कहीं से श्रीमहाराजजी के पास पर्याप्त मात्रामें कुनैन आ गयी। मुझे आज्ञा हुई कि मैं ज्वर पीड़ितों को अपने सामने कुनैन खिलाऊँ। मैंने अपना काम आरम्भ कर दिया। लोग अच्छे भी होने लगे। किन्तु कुनैन के साथ दूध का प्रबन्ध नहीं था। एक साधु ने कहा "स्वामीजी ! इसने तो फूंक डाला। ज्वर तो चला गया, परन्तु इसकी गर्मी से भुना जाता हूँ। नीबू तक नहीं मिलता।"

श्रीगुरुदेव नीचे गुफा में थे। मैंने इस ढङ्ग से कहा कि वे सुन लें,

'महात्माजी अब श्री उड़ियाजी महाराज पर कङ्गाली आ गयी है। दूध और नीबू का प्रबन्ध कैसे हो ?'

आपने सुना और चट ऊपर आ गये—"क्या है रे ! मैंने कहा, "ये महात्माजी कह रहे हैं कि कुनैन तो खिला देते हो। पर न थोड़ा दूध ही देते हो और न नीबू ही। इनकी गर्मी ने फूँक डाला है।" आप चुप रहे। मैंने पुनः कहा, "भगवन् ! दिन-रात आपके यहां कन्नी-वसूली चलती है। खुट-खुट, खुट-खुट के मारे नाक में दम है। सैकड़ों रुपये रोज का खर्चा है। इन गरीब साधुओं के लिए पाव-पाव भर दूध का प्रवन्ध नहीं हो सकता ? कुनैन के साथ थोड़ा दूध तो आवश्यक है।"

आप बोले, "तुम लोगों को पता नहीं। तुम मुझे बिलकुल नहीं जान सके। मुझे जो कोई जिस निमित्त से देता है मैं उनका पैसा उसके संकल्पानुसार उसी काम में लगा देता हूँ। मैं स्वयं कुछ नहीं करता और न किसी से कुछ कहता ही हूँ। आज-कल लोग ईंट पत्थरों में पैसा लगाना पसन्द करते हैं। नाम के लिए मरते हैं। साधु सेवा कौन करता है ? कोई दूध के लिए पैसा दे तो मैं दूध पिला दिया करूँ महात्मा जी ! सहन करो। भैया ? समय ऐसा ही आ गया है।

[२२]

एक बार सत्सङ्ग में इस विषय पर कि ज्ञान हो जाने पर ध्यानकी आवश्यकता नहीं रह जाती, अधिक देर तक तर्क-वितर्क होता रहा। अन्त में श्रीगुरुदेव बोले, "भैया ! मेरी समझ में तो ध्यान के बिनाज्ञान और ज्ञान के बिना ध्यान पंगु है।" इस सम्बन्धमें आपका यही आदेश रहता था कि जब आनन्दमय कोष को भी अपने से भिन्न देखोगे, तब

असंग भावना होगी। जब जीव शब्द, स्पर्श,रूप,रस एवं गन्धके अतिरिक्त सुख-दु:ख से भी असंग होगा तब वास्तविक असंगता होगी। उस परम शान्ति का क्या ठिकाना? ज्ञान मार्ग का वास्तविक अधिकारी तो वही है जो असङ्ग-बुद्धि, नि:स्पृह और मन को वश में करने वाला है।

[२३]

एक दिन श्री गुरुदेवजी ने हमसे प्रश्न कर दिया, "महात्मा की सबसे बड़ी हानि क्या है? हममें से एक-दो ने कुछ कहा। फिर कृपालु भगवान् स्वयं ही प्रवचन करने लगे, "बेटा! चित्त में क्षोभ आ जाना, चित्त का उत्तेजित हो जाना-चाहे वह पानी की लकीर की तरह ही क्यों न हो—महात्मा की सबसे बड़ी हानि है। इसका सब से सरल उपाय यह है कि उत्तेजना पैदा करने वाले शब्दों को चिड़ियों की चहचहाहट समझो। 'चिड़ियाँ बोल रही है' ऐसा सोचने लगो। तत्त्वपर दृष्टि रखो, अपमान की भूमि इस मल-मूत्र के थैले से अपने को हटा लो। यदि इस थैले को ही सर्वस्व समझे हुए हो तो वास्तव अपमान और निन्दा के पात्र ही हो। अन्यथा किसकी सामर्थ्य है जो तुम्हारी निन्दा कर सके। एक स्वप्न पुरुष किसी दूसरे स्वप्नपुरुष से कुछ कह रहा है तो कहने दो।

कुछ उपदेश

१. संसार में आना जाना है। हमारे यहां न आना है न जाना।
२. जो चीज यहां है, वह त्रिलोकी में नहीं है।
३. पदार्थ का भान हो, पर उसमें आसक्ति न हो।

४. प्रत्येक इन्द्रिय के विषय का ज्ञान हो, परन्तु उसमें राग न हो।
५. पदार्थ का ज्ञान होते हुए भी उसमें आसक्ति न होना—यह सत्त्वगुण का लक्षण है तथा पदार्थ में राग होना रजोगुण और आसक्ति होना तमोगुण है।
६. ज्ञानियों का चित्त अचिन्त्य होता है।
७. अनात्मा में आत्मबुद्धि ही अज्ञान है।
८. प्रपञ्च में सत्यत्वबुद्धि ही अज्ञान है।
९. विषयों में से सत्यबुद्धि, नित्यबुद्धि, सुखबुद्धि, दुःखबुद्धि और अनुराग हट जाना ही आनन्द है।
१०. हमारा तो सिद्धान्त है कि हर समय प्रसन्न रहो तथा पापी को भी पापी न समझकर हृदय से लगा लो।
११. चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते प्रसन्न ही प्रसन्न रहो।
१२. क्या मजाल है कि कोई पापी मेरा स्पर्श कर सके।
१३. समझो कि जब तक बोध की इच्छा का त्याग न हो, तब तक बोध नहीं हुआ।
१४. जब साधु सेवा, सत्संग और शास्त्र से प्रेम हो, उस समय से समझो कि संसार से उद्धार हो गया।
१५. कैसे ही रूप से बचो, यही आसक्ति बढ़ाने वाला है। दुःख का कारण विशय नहीं, उसकी आसक्ति ही है।
१६. शरीर को सजाना तो पायखाना सजाना है और फिर उसमें राग करना—राम ! राम ! राम !
१७. चित्त सर्प है। इसके सामने विषय आने से इसमें विष बढ़ता है।
१८. धनिकों के अन्न से बचो।

१६. यदि कोई गृहस्थ पुरुष काम्य-कर्म, निषिद्ध-कर्म और कर्म-फल-का त्याग करने वाला है तो वह घर पर ही संन्यासी है।

२०. हर समय सावधान रहो कि क्षोभ न होने पावे। देखते रहो।

२१. सबसे बड़ा काम है ध्येय और ज्ञेय में वृत्ति को विस्मृत कर देना।

२२. देखो, विस्मृति तो ज्ञान और अज्ञान दोनों में ही होती है। अज्ञान (निद्रा) में बिस्मृति होने से ही कितना सुख मिलता है, फिर ज्ञान में विस्मृति हो तो कितना सुख मिलेगा ?

२३. इष्टाकार वृत्ति का नाम भजन है और सन्धि में वृत्ति को स्थित करना मुख्य भजन है।

२४. शान्ति संकल्प का त्याग है और अशान्ति संकल्प करना।

२५. विचार करो, सम्पूर्ण दोषों का कारण मनोराज्य है, क्योंकि विषयों के चिन्तन से उनमें आसक्ति हो जाती है और अन्त में उनमें फँस जाता है।

२६. वासना रहित मौन से उत्तम और कोई पद नहीं है।

२७. जब तक किसी उपाधि को लेकर यह कहता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ' तब तक भी बोध हुआ मत समझो।

२८. जहाँ भेद है, वहां अज्ञान है।

२६. जहाँ उत्पत्ति है, वहां अज्ञान है।

३०. अकर्तापन का त्याग न करो। यदि स्वयं हो जाय तो हो जाने दो

३१. असंगता का अभ्यास तो निरन्तर करते रहना चाहिये। बोध होने पर भी करते रहो।

३२. बोध होने पर भी विवेक और वैराग्य को बनाये रखो। नित्य-अनित्य का विवेक करके नित्य में राग और अनित्य में वैराग्य का अभ्यास करते रहो।

३३. बाह्य, त्याग तो बिना विवेक के भी हो जाता है। ऐसे त्यागी वैराग्यवान् देखे गये हैं जिन्हें विवेक नहीं हुआ। परन्तु त्याग-वैराग्य है प्रशंसनीय।

३४. कभी-कभी विवेक हो जाने पर भी वैराग्य नहीं होता। जैसे बड़े-बड़े पण्डितों को विवेक होते तो देखा गया है, परन्तु उनमें वैराग्य की गन्ध नहीं होती।

३५. अनेक मूर्खों को तो संसार के दुःख और क्लेश के कारण उससे क्षणिक वैराग्य हो जाता है।

३६. त्याग में दो पदार्थ रहते हैं, एक को ग्रहण करता है, दूसरे का त्याग करता है। परन्तु बोध में तो पर-सत्ता का सर्वथा अभाव हो जाता है।

३७. 'सब स्वरूप ही है, अन्य कुछ नहीं। जो दिखाई देता है वह प्रतीतिमात्र है।' जब ऐसा अनुभव हो तभी बोध होता है।

३८. वेदान्त में 'परसत्ता की जो प्रतीति हो रही है, उसका त्याग ही अभ्यास है।

३९. विचार द्वारा यह सिद्ध हो जाने पर कि यह सब आकाश ही है, सबको आकाशवत् देखना, मनोराज्य या स्वप्नवत् देखना ही अभ्यास है।

४०. बोध के पूर्व बाह्य वैराग्य होता है, वास्तविक वैराग्य तो बोध के पश्चात् ही होता है।

कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न—हम लोगों ने अनेक बार श्रीमुख से उपदेश सुना है और अभ्यास की बिधि भी सुनी है, फिर भी हमारे लोभ मोहादि नहीं

छूटते। इससे तो यही जान पड़ता है कि जब तक श्रीमहाराजजी की कृपा न होगी हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

उत्तर—तुम लोग घबड़ाओ मत। बराबर यत्न करते रहो। अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी। यदि अभ्यास करते-करते शरीर छूट जाय तो समझ लो कि काम पूरा हो गया। बीच में जो त्रुटियाँ हों उनकी परवाह मत करो।

× × × ×

प्र०—संसार में सुखी कौन है ?

उ०—मैं सुखी हूँ।

प्र०—हम लोग कैसे सुखी हो सकते हैं ?

उ०—मेरे पास आओ।

प्र०—क्या हम लोग आपके पास तक नहीं पहुँचे हैं ?

उ०—नहीं।

प्र०—हम कैसे जानें कि हम आपके पास पहुँच गये ?

उ०—जब तुम मेरे बिना न रह सको।



स्वामी श्रीसिद्धेश्वराश्रम जी

(दण्डिस्वामी श्री सियाराम जी)

श्रीमहाराजजी की सारी लीलायें अलौकिक थीं। उनकी प्रत्येक क्रिया रहस्यपूर्ण होती थी। वे हमारे बीच में बैठे-बैठे ही सहस्रों मील दूरवर्ती भक्तों की सुधि लेते रहते थे। इधर सत्सङ्ग में सामने बैठे हुए नर-नारियों को उपदेश करते और ठीक उसी समय योगबल द्वारा सुदूरस्थ भक्तों को भी प्रेरणा प्रदान करते रहते थे। ऐसे एक-दो नही, सैकड़ों भक्त हैं जिन्हें स्वप्नों में भी श्रीमहाराजजीने दूर रहते हुए भी उपदेश दिये हैं और संकट निवृत्ति का उपाय बताया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे भी सैकड़ों भक्त हैं जिन्हें श्रीमहाराजजी ने अप्रकट रूप से गोपनीय ढङ्ग से परमार्थ पथ में लगाया, और अग्रसर किया, तथापि स्वयं उन भक्तोंको इस रहस्य का पता तक नहीं चला। इस रहस्य को विरले व्यक्ति ही समझ पाये हैं कि वे क्या करते और कैसे करते थे। यह विषय सामान्य बुद्धि से परे है। तथापि उनकी पवित्र स्मृति के हेतु अपने अनुभव में आयी हुई कुछ लीलाओं का वर्णन किया जाता है।

[१]

श्री महाराजजी जब प्रथम बार देदामई पधारे थे तब एक स्थान पर उन्हें कांटा लग गया। वहीं बैठकर उन्होंने कांटा निकलवाया। वहां एक भग्नावशिष्ट कुआं था, जिसमें जल भी नहीं था। स्थान भी भयङ्कर था और उस पर ऐसे लोगों का अधिकार था जो साधु-सन्तों के विरोधी थे। उस कुएँ को देखकर श्रीमहाराजजी मुझसे

बोले, "बेटा ! यहाँ कुआं और बगीचा हो तो अच्छा हो।" इतना कहकर वहां से चल दिये। इसे श्री महाराजजी की वाक्‌सिद्धि कहें अथवा संकल्प सिद्धि ? जो कुछ भी हो, स्थान के मालिक के हृदय में स्वतः ऐसी प्रेरणा हुई कि उसने वहाँ एक पक्का कुआँ बनवा दिया, जैसा आस-पास के गांवों, कहीं नहीं है और साथ ही बगीचा एवं पक्की कुटी भी बनवा दी। एक वर्ष पश्चात् जब महाराजजी पुनः पधारे तो उसी कुटी में ठहरे।

[२]

इसी प्रकार एक बार आप भ्रमण करते हुए एक स्थान पर बैठ गये और मनोरञ्जन के लिये पृथ्वी पर लकड़ी से एक मकान का नक्शा बनाया। फिर वहाँ से उठकर चल दिये। उसके कुछ काल पश्चात् जब उस रास्ते से निकले तो अपने बनाये हुए नक्शे के अनुसार मकान बना देखा। मालूम होता है, सत्य संकल्प महात्माओं के संकल्प को सत्य करने के लिये प्रकृति देवी स्वतः प्रस्तुत रहती है।

[३]

गङ्गा किनारे शहबाजपुर में एक बुढ़िया माई रहती थी। वह बहुत निर्धन थी और उसके एक ही लड़का था। वह श्रीमहाराजजी को भी अपना पुत्र ही मानती थी। उसका प्रेम सच्चा था। घर में बर्तनों का भी अभाव-सा था। अतः प्रातःकाल अँधेरे में ही उठ कर वह मिट्टीके खिपड़े ही में आटा गूँदती और मोटी-मोटी तीन रोटी सेंकती। दो अपने और अपने पुत्र के लिये तथा एक श्रीमहाराजजी के लिए। उसे लेकर वह अँधेरे में ही बाबा के पास पहुंच जाती। आप उसका सच्चा प्रेम देखकर बिना स्नान किये बासी

मुँह उस रोटी को खा लेते। इतना ही नहीं, वह माई आपको आंचल से ढांपकर स्तनपान भी कराती थी और आँखों से प्रेम के आंसू गिराती जाती थी। आप भी चुपचाप बालक की तरह उसकी गोद में पड़े स्तनपान करते रहते थे। ऐसे आप खिलाड़ी थे।

परन्तु भक्तों के भाव तो भिन्न-भिन्न होते हैं। बलदेव ब्रह्मचारी का आपसे था सखा-भाव। उन्हें यह बात बहुत बुरी लगती थी। एक दिन जैसे ही अँधेरे में आयी उन्होंने डण्डा उठाया और यह कहते हुए उसकी ओर दौड़े—"अरी रांड! तू सबेरे ही सबेरे अँधेरे में चली आती है बिना नहाये-धोये ही रोटी खिला देती है। ठहर तो!" बुढ़िया प्राण लेकर भागी। उसके वाद वह डर के कारण दो-तीन दिनों तक नहीं आयी, परन्तु रोती रही। उसकी यह अवस्था बाबा से छिपी नहीं थी।

एक दिन प्रातःकाल आप शौच के लिए गये। ब्रह्मचारी जी जल का कमण्डलु लेकर साथ हो लिये। बाबा ने उनके हाथसे कमण्डलु ले लिया और अरहर के खेतों में छिपते-छिपते बुढ़िया के घर पहुँच गये। वह बड़ी प्रसन्न हुई और तत्काल भोजन बनाने लगी। इधर जब बाबा के आने में देर हुई तो बलदेव ब्रह्मचारी को सन्देह हुआ और उन्होंने अनुमान से समझ लिया कि आप बुढ़ियाके घरही गये हैं। बस, वे भी उधर ही चल दिये और जाकर देखा कि बुढ़िया तो रोटी बना रही है और आप मसाला पीस रहे हैं। बलदेव ब्रह्मचारी को देखते ही बुढ़िया डरी और इन्हें भी गुस्सा चढ़ आया। बोले, "अरे बाबा! यह रांड़ तुम्हें क्या खिलायेगी, तुमसे ही मसाला पिसवा रही है।" बाबा बोले, "चुप रहो, बोलो मत।" बस, उस दिन भोजन

करके बुढ़िया को प्रसन्न करके ही आप वहां से गये। आप दूसरों के मन को खूब पहचानते थे।

[४]

एक माई श्रीमहाराजजी से अपने घर चलकर भिक्षा करने का बहुत दिन से आग्रह कर रही थी। आप उससे कह देते, "कभी आयेंगे।" एक बार उसके गाँव होकर कहीं जा रहे थे। आपको उसकी याद आ गयी। अतः उसके घर जाकर 'नारायण हरिः' कहा। वह मैया घर के भीतर रोटी बना रही थी और उसका लड़का बाहर खेल रहा था। लड़के ने भीतर जाकर मां से कहा, "मां! साधु को रोटी दे दे।" वह चिल्लाकर बोली, "कह दे, चला जा, हाथ खाली नहीं हैं।" बालक ने आग्रह करते हुए कहा, "साधु बाबा अच्छे हैं, रोटी दे दे।" तब उसने रात की सूखी रोटी भेज दी। श्रीमहाराजजी उसे लेकर चले आये।

कुछ दिनों पश्चात् वह माई फिर आपके दर्शन करने आयी और पुनः घर चलकर भिक्षा करने का आग्रह करने लगी। तब आपने कहा कि तू एक रोटी देने में साधु को अच्छा-बुरा देखती है, ठीक तरह नहीं दे सकती। फिर हमें भिक्षा कराने से क्या लाभ? तब वह मैया रोने लगी और क्षमा प्रार्थना भी की। आपने उसे आश्वासन देकर शान्त किया।

[५]

श्रीमहाराजजी जब सर्वप्रथम इस प्रान्त में आये थे तब मोहनपुर में बहुत दिन ठहरे थे। वहाँ के भक्तगण आपसे बहुत स्नेह करते थे। आपको बगलबंदी पहना देते और खेत में लेजाकर मिट्टी के ढेले फुड़वाते तथा जबरदस्ती साग, रोटी, दूध और खीर आदि खिलाते

थे। वे आपको अपने घर का और प्राणप्रिय समझते थे। एक बार जब आपको मोहनपुर छोड़े हुए बहुत दिन हो गये तब एक बूढ़ी माई कर्णवास आयी और आपको देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। बोली, "अरे लाला ! तू हमें ऐसा भूल गया है। हमें क्या पता था कि तू ऐसा कठोर हो जायगा। तुझे हम गरीबों के साग-रोटी अच्छे नहीं लगे। तेरे बिना हम कैसे जियेंगे ?" इस प्रकार कह-कह कर उसने बड़ा विलाप किया। इससे वहाँ बैठे अन्यान्य भक्त भी फूट-फूट कर रोने लगे और भावों में विभोर हो गये। श्रीमहाराजजी ने उसे सान्त्वना दी और पुनः आने का वचन दिया।

[६]

श्रीमहाराजजी जब दिल्ली पधारे थे तब वहाँ सत्संगियों एवं दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ लगी रहती थी। साथ में मैं भी था। शीत-काल के दिन थे। रात को सोने के समय भक्त लोग आपको कम्बल ओढ़ा जाते, किन्तु सबेरे वह अलग पड़ा मिलता था। मैंने इसका कारण पूछा तो महाराज बोले, बेटा ! ओढ़ाते समय मैं उनका मन रख देता हूँ, किन्तु उनके चले जाने पर कम्बल हटा देता हूँ। साधु को अपने नियम से रहना चाहिये।" इस प्रकार श्रीमहाराजजी अपने साथ रहने वालों को क्रियात्मक शिक्षा देते रहते थे।

[७]

एक बार कर्णवास की झाड़ी में एक प्रेत मिला और बोला कि मैं कुश्ती लड़ूँगा। आपने उत्तर दिया, "बेटा ! हम तो साधु हैं, किसी स कुश्ती नहीं लड़ते।" परन्तु प्रेत न माना। तब आपने उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देखा कि वह चिल्ला उठा, "बाबा ! मैं जलता हूँ

मेरा उद्धार करो।" आपने कहा, "श्रीगङ्गाजी में स्नान कर गङ्गाजल पान कर और आज से प्राणियों को कष्ट देना बन्द कर। ऐसा करेगा तो तेरा कल्याण हो जायगा।" तब वह प्रेत वहां से चला गया।

[८]

श्रीमहाराजजी के सम्पर्क में आने से कई डाकुओं का भी सुधार हुआ। एक बार एक प्रसिद्ध डाकू आपका दर्शन करने के लिए आया। वह बोला, "मैं आपका नाम लेकर डाका डालता था तो सर्वदा सफल होता था, परन्तु अब मुझे कष्ट हो रहा है वैसी सफ ता नहीं मिलती।" इस डाकू से श्रीमहाराजजी का कोई पूर्व परिचय नहीं था। उसने केवल एक बार दर्शन किये थे और सुन रखा था कि बाबा के पास जो व्यक्ति जिस इच्छा से जाता है उसकी वह कामना पूरी हो जाती है। उसकी बात सुनकर श्रीमहाराजजी ने कहा, "भैया इस काम को तू बिलकुल छोड़ दे, यह तेरे योग्य नहीं हैं।" डाकू सुनकर चुपचाप चला गया और कुछ दिन वह शान्त भी रहा। परन्तु जब एक बार उसके साथियों ने बहुत दबाव डाला तो वह उनके साथ हो लिया। यद्यपि बाबाकी आज्ञा-भंग करने के कारण उसका चित्त दुःखी था।

दैवयोगसे उसदिन गांव वालों ने सभी डाकुओं कोघेर लिया। अब वह बहुत घबड़ाया और मन-ही-मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगा कि प्रभो! आज मुझे बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि फिर ऐसा काम अब कभी नहीं करूँगा। उसी क्षण उसके हृदय में ऐसी प्रेरणा हुई कि वह एक करब के ढेर में छिप गया। गाँववालों ने दूसरे डाकुओं का पीछा किया। इसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। पीछे वह श्रीमहाराजजी का स्मरण करता

हुआ दूसरी ओर निकल गया और उस घेरे से बच गया। दूसरे दिन श्रीमहाराजजी के पास आया और चरण पकड़ कर रोने लगा। श्रीमहाराजजी ने उससे जीवन पर्यन्त फिर डाका न डालने की प्रतिज्ञा करायी और उसे आश्वासन देकर शान्त किया।

कभी-कभी श्रीमहाराजजी विनोद में भक्तों के साथ खेल भी किया करते थे। उनके एक भक्त हैं पं० लालमणि। यदि कोई व्यक्ति उनके पैर छू लेता है तो वे बहुत बिगड़ते है और अत्यन्त दुःखी होते हैं। एक बार श्रीमहाराजजी गढ़मुक्तेश्वर के मेले में जा रहे थे। साथ में अनेक भक्त थे। उनमें से ठाकुर प्रतापसिंह ने विनोद में पं० लालमणि के पैर छू लिये। अब तो वे बड़े दुःखी हुए और रोने लगे। उन्होंने बाबा के पास जाकर प्रतापसिंह की शिकायत की। वे मुसकराये और बोले, "प्रताप ! इधर आ। तूने लालमणि को क्यों दुःखी किया ? तुझे इसका दण्ड दिया जायगा। प्रतापसिंह लालमणि के पैरों में गिर गये और सभी भक्त हँसने लगे।

इस प्रकार समय-समय पर आप सर्वदा निर्दोष मनोरञ्जन किया करते थे। आपकी लीलाएँ तो अनेक हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय। यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र करा दिया है।



पं० श्रीजगन्नाथजी भक्तमाली, वृन्दावन

जिस दिन मैं पहली बार श्रीउड़िया बाबाजी महाराज के आश्रममें कथा कहने के लिए आया था, उससे पहली रात्रिमें मैंने उन्हें स्वप्न में देखा था। वे मुझसे कह रहे थे कि यदि तुम मुझे कथा सुनाओगे तो तुम्हारा भक्तिभाव बढ़ेगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही मेरे पास आपके आश्रम से बुलावा आ गया कि श्रीहरिबाबाजी आपको भक्तमाल की कथा कहने के लिए बुला रहे हैं यह बाबा के विषय में मेरा पहला अनुभव हुआ।

दूसरा अनुभव मुझे आपके लीलासंवरण करने के पश्चात् हुआ। उस समय मैं आपके निर्वाणोत्सव में कथा कहने के लिए आया करता था। रात्रि को स्वप्न में मैंने देखा कि आप मुझे विनयपत्रिका के इस पद का उपदेश कर रहे हैं—

प्रभु तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।

साधनधाम विबुध-दूरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हो॥

उनकी वह भोली-भाली सूरत प्रायः मेरी आंखों के सामने नाचने लगती है।



श्रीपल्टूबाबाजी वृन्दावन

श्रीचरणों में आगमन

एक बार में खुरजा में किसी मन्दिर में ठहरा हुआ था। एक दिन रात्रिमें भक्त केदारनाथ जी आये और मन्दिर की परिक्रमा करनेलगे। वे अँधेरे में मुझसे टकराकर गिर गये। मुझे दुःख हुआ कि मेरे कारण किसी व्यक्ति को चोट लगी और उन्हें इस बात का दुःख हुआ कि मेरे कारण किसी महात्मा को कष्ट हुआ। फिर हम दोनों की परस्पर बातचीत होने लगी। उन दिनों मुझे संतोंकी वाणियां बहुत याद थीं और सत्संग में भी मैं बाणियों का खूब प्रयोग करता था। इससे भक्त जी ने मुझे कोई अच्छा सत्संगी महात्मा समझा। वे बोले, "आपने श्रीउड़ियाबाबाजी, स्वामी निर्मलानन्द जी अथवा लम्बे नारायण जी आदि का दर्शन किया है?" मैंने कहा, "नहीं।" तब उन्होंने कहा, "ये सब बहुत अच्छे महात्मा हैं, इनका दर्शन अवश्य करना।" मैंने कहा, "इनमें से किसी एक मुख्य का नाम बताओ, मैं उन्हीं का दर्शन करूँगा।" तब उन्होंने श्रीमहाराजजी का नाम बताया।

श्रीमहाराजजी उन दिनों मोहनपुर में थे। खुरजा से मुन्नालाल (वर्तमान स्वामी सनातनदेव) उनके दर्शन करने के लिये जा रहे थे। मैंने यह अवसर अच्छा समझा और उनके साथ हो लिया। मार्ग में हाथरस जंक्शन पर शंकरलाल और प्यारेलाल भी मिल गये। मोहन-पुर पहुँचने पर सब लोग श्रीमहाराजजी को दण्डवत् प्रणाम करने लगे। उस समय मैं खड़ा-खड़ा अपनी एक आँख से विचित्र प्रकार से

देख रहा था। मुझे इस प्रकार ताकते देख कर श्रीमहाराजजी ने पूछा, "मुन्नालाल ! क्या ये महात्मा अन्धे हैं ?" मैं झट से बोल उठा "महाराजजी ! अन्धे न होते तो आपके पास आते ही क्यों ?"

अस्तु। हम सब वहाँ गये। फिर मुन्नालाल ने मेरा कुछ परिचय दिया। तब श्रीमहाराजजी ने मुझसे पूछा, "क्या तुमको ज्ञान हो गया ?"

मैं—मैं न तो यही कह सकता हूँ कि ज्ञान हो गया है और न यही कह सकता हूँ कि नहीं हुआ !

श्रीमहाराजजी—ठीक है, ज्ञानी लोग ऐसे ही बोला करते हैं।
उस समय मैं अपने को ज्ञानी मानता था।
श्रीमहाराजजी—अच्छा, तुमको क्या ज्ञान हुआ है ?
मैं—मैं सबको आत्मस्वरूप देखता हूँ।

श्रीमहाराजजी—यह तो उपासना है। ज्ञान का स्वरूप तो ऐसा दृढ़ निश्चय होता है कि मेरे अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं। बल्कि शुद्ध स्वरूप में तो 'मैं' कहना भी नहीं बनता। तुम इसका अनुभव प्राप्त करो।

तब मैंने समझा कि मैं जो अपने को ज्ञानी मानता था वह मेरा भ्रम ही था। उसके पश्चात् श्रीमहाराजजी ने जप करने के लिये मुझे मन्त्र बताया।

अन्तर्यामिता

एक बार श्रीमहाराजजी कर्णवास में थे। वहाँ एक नृत्यकार आया हुआ था। उसे नृत्य करते देखकर मेरे मन में विकार हुआ। मैं वहाँ

से उठा और सीधा श्रीमहाराजजी के पास जाकर बैठ गया। उनसे मैंने कहा कुछ भी नहीं। तथापि वे मुझे डाँटते हुए बोले, "तुम साधु हो, इतने दिनों से भजन करते हो, फिर भी एक नर्त्तक को देखकर तुम्हारे मन में विकार हो गया!" तबसे मैंने समझ लिया कि श्रीमहाराजजी दूसरों के मन की बात जान लेते हैं।

निर्वाण के पश्चात्

श्रीमहाराजजी का निर्वाण होने पर मैं अत्यन्त दुःखी रहता था। चित्त में व्याकुलता बहुत बढ़ती तो मन बहलाने के लिये रात को बाहर घूमने चला जाता। एक रात्रि को स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और बोले, "क्या तुम मुझे शरीर समझते हो? मैं क्या शरीर हूँ? तुम मेरे शरीर से प्रीति करते हो? शरीर तो आज तक किसीका नहीं रहा। ब्रह्मा और शिव का शरीर भी अपनी आयु समाप्त होने पर नहीं रहता। मेरे सत्सङ्गका क्या यही फल है? याद रखो, शरीर तो सभी अनित्य हैं।"

इस प्रकार उनका उपदेश पाकर मुझे कुछ आश्वासन हुआ और मैंने उनकी आज्ञानुसार नियम से भजन करते हुए श्रीवृन्दावन में ही रहने का निश्चय कर लिया।

श्रीमहाराजजी के विषय में मैं अपने अनुभव क्या बतलाऊँ? जबसे मैंने उनका दर्शन किया है, तबसे आजतक मुझे उनके जैसा कोई महापुरुष नहीं मिला।



"एक प्रेमी"

'गुरु के द्वारा मुझे भगवान् मिलेंगे' ऐसा मानना भक्त का सर्वोत्तम भाव नहीं है। सबसे श्रेष्ठ भाव तो यही है कि गुरु के रूप में साक्षात् भगवान् ही हैं। वस्तुतः शिष्य का कल्याण करने के लिए स्वयं भगवान् ही गुरुरूप में मिलते हैं। अपनी प्राप्ति का मार्ग वे स्वयं ही बतलाते हैं। जीव गुरुदेव के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। उनके उपकारों का बदला नहीं चुका सकता। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीउद्धवजी कहते हैं—

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥

अर्थात् हे सर्वेश्वर! आप बाहर आचार्य रूप से और भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर प्राणियों की अशुभ वासनाओं को नष्ट करते हुए उन्हें अपने स्वरूप का अनुभव कराते हैं। ऐसे आपके उपकारों को बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष भी यदि परमानन्द में परिलुप्त होकर ब्रह्मा की आयुपर्यन्त स्मरण करते रहें तो भी आपसे उऋण नहीं हो सकते।

जिनकी ज्ञानरूप दीपक प्रदान करने वाले साक्षात् भगवत्स्वरूप श्रीगुरुदेव में 'ये मनुष्य हैं' ऐसी अशुद्ध वृत्ति है, उसका सारा श्रवण गजस्नान के समान निरर्थक है। यथा—

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धी श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥

श्रीभगवान् प्रेमास्पद हैं। उनसे हँसना, रोना, रूठना, खेलना सभी कुछ हो सकता है। पर गुरु केवल श्रद्धा के स्थान हैं, उन पर तो केवल श्रद्धा ही होनी चाहिए। कलियुग ने तो मूल पर ही कुठाराघात किया है। सब की जड़ तो श्रद्धा है। उसी को नष्ट कर दिया है, फिर लाभ कैसे हो ?

परमपूज्यपाद श्रीबाबा में मेरा गुरुभाव—भगवद्भाव रहा है। इसलिए उनके सम्बन्ध में कुछ कहना या उनका जीवन-चरित्र वर्णन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि जो कुछ कहा जायगा उक्त भाव से नीचे उतर कर ही कहा जा सकेगा। मेरे विचार से तो उपासना में गुरु ही सर्वस्व हैं, मोक्षादि की प्राप्ति तो आनुषंगिक है। श्रीमहाराजजी के समक्ष मैंने तो शायद ही कभी कोई प्रश्न किया हो। कभी प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। मन में किसी प्रश्न का संकल्प उठते ही वे तुरन्त अपने आप उसका उत्तर दे देते थे। ऐसा अनुभव मुझे ही नहीं अनेक भक्तों को हुआ है। मेरे लिए तो यही परम आश्वासन है कि उन्होंने मुझे कृपापूर्ण दृष्टि से देख लिया। ऐसा होने पर अब मेरा सब प्रकार कल्याण होना सुनिश्चित ही है।

श्रीमहाराजजी में मैंने कभी कोई इच्छा नहीं देखी। यदि उनमें कभी कोई इच्छा दिखायी भी दी तो यही कि किसका कल्याण किस प्रकार हो। वे केवल सबका कल्याण चाहते थे। जिसे स्वयं ही इच्छा है वह दूसरे का कल्याण क्या करेगा ? एक बार श्रीगुरुपूर्णिमा के अवसर पर श्रीमहाराजजी के मुख से ये वचन सुने थे—"भैया ! सब हुआ, पर न तो इन लोगों की चित्तवृत्ति बदली, न आज्ञापालन में ही इनकी निष्ठा है और न ये भजन परायण ही हुए। अब इन लोगों के साथ रहने में क्या लाभ है ?"

श्रीमहाराजजी के पास रहते तो बहुत लोग थे; परन्तु उन्हें ठीक-

ठीक जान कोई नहीं सका। यदि किसी ने कुछ जाना भी तो उतना ही, जितना उन्होंने अपने आपको जानना चाहा। पूर्णतया कोई नहीं जान सका। जानता भी कैसे—"सो जानहु जेहि देहु जनाई।"

श्रीमहाराजजी प्रायः कहा करते थे—"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" अर्थात् आज्ञापालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की कोई दूसरी सेवा नहीं हो सकती। वे आज्ञापालन पर ही जोर देते थे और आज्ञापालन करने पर ही विशेष प्रसन्न होते थे। वस्तुतः हम सबका परम कल्याण भी उनकी आज्ञा पालन करने में ही है। गुरुदेव की आज्ञा का पालन करनेसे गुरुचरणोंमें जो अनुरक्ति होती है वह साधक की मान-प्रतिष्ठा आदि सभी विघ्नों से रक्षा करती रहती है।

श्रीमहाराजजी का सबसे अधिक जोर करने पर था। वे कहते थे कि करो। कुछ भी करो। या तो जो रुचे वह करो, जो ठीक समझते हो वह करो, या जो मैं कहूँ वह करो। पर करो अवश्य। अकर्मण्य मत रहो। भगवतीश्रुति भी इसी तत्त्व का उपदेश इन शब्दों में करती है—"कुर्बन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतं समाः।" अर्थात् इस संसार में अथवा यह मनुष्यजन्म पाकर कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे भगवान् श्रीकृष्णजी कहते है—

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यासि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

अर्थात् मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त होओ, मेरे लिए यज्ञ करो और मुझे ही नमस्कार करो। यदि ऐसा करोगे तो मुझे ही प्राप्त होंगे। यह मैं तुम्हें प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो

साधक का एक क्षण भी व्यर्थ न जाय, निरन्तर भगवत्प्रीत्यर्थ भजन होता रहे, तभी उसे अपने ऊपर प्रभु की कृपा समझनी चाहिये। एक बार एक पण्डितजी केवल भगवत्कृपा का ही पक्ष ले रहे थे।

परन्तु श्रीमहाराजजी का कथन था कि भगवान् हमसे भजन-साधन करावें तभी उनकी कृपा समझनी चाहिये। और यदि न करावें तो उनकी अकृपा माननी चाहिये।

श्रीमहाराजजी के विषय में और अधिक क्या कहूँ ? मैं तो यही देखता हूँ—'मोपर करहिं सनेह विशेषी।'



"एक साधु"

एक बार किसी ने स्वामीजी से पूछा, "आप कोई ऐसा साधन बताइये जो सरल हो, संक्षिप्त हो, जिसमें सामग्री की आवश्यकता न हो और जिसमें सबका अधिकार हो। साथ ही वह शीघ्र फलदेनेवाला भी हो।" तब आप बोले, ऐसा साधन तो केवल भगवन्नाम जप ही है। उसमें उपर्युक्त चारों बातें हैं! वह सरल भी है, उसमें सामग्री की भी आवश्यकता नहीं है और सबका अधिकार भी है।

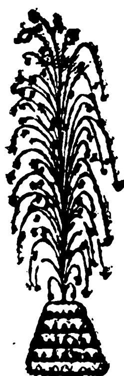
एक बार एक विरक्त और विद्वान् महात्मा श्रीमहाराजजी के पास आये उन्होंने जनसमूह के सामने ही एक क्लिष्ट ग्रन्थ की शङ्का आपके आगे रखी उसके उत्तर में आप बोले, "इस शंका का उत्तर हम न तो दे सकते हैं न दे ही सकेंगे। हम तो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं जानते।" यह उत्तर सुनकर महात्मा चकित हुए और मन मैं विचारने लगे कि यदि इनके मनमें मान की इच्छा होती तो इतने स्पष्ट शब्द इनके मुख से नहीं निकल सकते थे।

एक समय श्रीवृन्दावन में आपने यमुनाजी में दूध चढ़ाने की आज्ञा दी और कहा कि जिस भाव से जितना भी दूध मिले ले आओ। जब दूध यमुनाजी के किनारे पहुंचा तो किसी ने शंका की कि यदि यह दूध यमुनाजल में न डालकर दूसरे मनुष्यों को पिला दिया जाय तो उन्हें

पुष्टिदायक हो सकता है। यह सुनकर महाराजजी ने कहा, लोगों के पेट में गया दूध तो मल-मूत्र बन जायगा। हमें तो इसे यमुनाजल बनाना है मल-मूत्र नहीं।''

उदारता एक महान् गुण है, यह साधु का भूषण है। प्राचीन-काल में सन्तों में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता था। इससे हृदय प्रसन्न होता है, क्योंकि दूसरों को दी हुई प्रसन्नता तुरन्त लौटकर दाता को मिलती है। अर्थात् दूसरों का हृदय प्रसन्न करने से तुरन्त अपना हृदय भी प्रसन्न होता है। उनके हृदय के आशीर्वाद तत्काल फल प्रदान करते हैं। गरीबों को दें, अतिथियों को दे, रोगी-अपाहिजों को दे, साधु-ब्रह्मणों को दे, गङ्गा-यमुना को दे—किसी को भी, पर देता अवश्य रहे, विशेषत: अन्न खिलाकर दूसरों के हृदय को जितना वश में किया जा सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। किसी का अन्न खाने से हृदय तुरन्त उसका कृतज्ञ बन जाता है। अपनी वस्तु न हो, दूसरे की हो, तो भी उसे देते रहने से हृदय में त्याग की भावना आती है। प्रत्यक्ष देख लो, जिस दिन आप दूसरोंको भोजन कराते हैं उस दिन स्वयं खाने की लालसा कम रहती है। हलवाइयों को देखो, वे पैसा लेकर देते हैं तो भी उनमें दूसरों की भांति खाने की लालसा कम रहती है। इसलिये कुछ-न-कुछ देते रहना चाहिए। बाबा में यह गुण विशेष रूप में था। वे अपने पास आया हुआ मिष्ठान्न, बाँटते फल-फूल बाँटते, वस्त्र, कम्बलादि बाँटते, रोटीं बाँटते, मलेरिया के समय कुनेन बाँटते और लवंग इलायची का टिकट बाँटते थे। उनके इस आचरण से एक बड़ी शिक्षा मिलती है। कहते हैं महात्मा हातिम को मारने के लिये उनके किसी शत्रु ने एक आदमी को भेजा था। महात्मा हातिम ने उस व्यक्ति को खूब खिलाया पिलाया। पीछे यह पूछने पर कि आप कहां जा रहे हैं ? उसी आदमी

ने कहा, "मैं हातिम को मारने जा रहा हूं" इस पर हातिम ने अपना सिर झुका दिया और बोले, "मैं ही हातिम हूँ, मुझे मार डालो।" परन्तु उस व्यक्ति का हाथ नहीं उठा, बोला, "मैंने आपका अन्न खा लिया है, अब यह नहीं हो सकता।" बस, कृतज्ञता प्रगट करता हुआ वह वापिस लौट गया।



बाबा श्रीदेवकीनन्दनशरणजी (दीनजी) वृन्दावन

प्रथम दर्शन

पूर्वाश्रम में मैं 'कल्याण' का स्थायी ग्राहक था और उसमेंप्रकाशित लेखों को बड़े चाव से पढ़ता था। प्रायः प्रत्येक महीने 'कल्याण' में पूज्वपाद श्रीउड़िया बाबाजी के सदुपदेश छपते थे। उनमें शव्द तो थोड़े ही होते थे, परन्तु उनका चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ता था कि बार-बार पढ़ने की इच्छा होती थी। उन्हीं से धीरे-धीरे मेरे मन में बाबा के दर्शनों की लालसा जाग्रत इई।

एक दिन मैं लखनऊ की गीता प्रेस की दूकान पर गया। वहाँ दो व्यक्ति बैठे थे। उनसे मैंने प्रार्थना की कि आप मुझे कोई ऐसी पुस्तक दीजिये जिसे पढ़कर मैं रो सकूँ अवथा किसी महात्मा का ही पता बतलाने की कृपा करें। उन्होंने विचार कर एक पुस्तक दी ओर कहा कि इसे ले जाकर पढ़िये। इससे रोना और महात्मा का पता दोनों ही काम हो जायेंगे। उस पुस्तक को ले जाकर मैंने एकान्त मैं पढ़ा। उसमें प्रथम भाग में मुझे पूज्यबाबा ओर श्रीहरिबाबाजी का परिचय मिला। दूसरे भाग में कथा की रोचकता थी और आगे के खण्डों को पढ़ने से रोने में सफलता मिली। यह पुस्तक थी ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्त जी द्वारा लिखित 'श्री चैतन्यचरितावली'। इसी से प्रभावित होकर मैं धीरे-धीरे श्रीब्रह्मचारीजी के आश्रम में झूसी पहुंचा। वहाँ एक वर्प का श्रीहरिनामसंकीर्त्तन यज्ञ अभी आरम्भ ही हुआ था। मैंने भी एक वर्ष पर्यन्त वहीं रहने का संकल्प कर लिया।

झूसी में रहते हुए मैंने श्रीब्रह्मचारीजी से बाबा के दर्शन करानेकी

प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा, "बाबा के दर्शन तो तुम्हें यहीं माघ में अर्धकुम्भी के अवसर पर हो जाते। परन्तु किसी भक्त की प्रार्थना से ये काशमीर की ओर जा रहे हैं।" उसके कुछ ही दिनों बाद ब्रह्मचारी जी एक दिन बोले, "तुम लोगों को दर्शन देने का विचार बाबा के संकल्प में हो गया है और वे काशमीर-यात्रा स्थगित कर झूसी के मार्ग पर चल पड़े हैं। आशा है, अर्धकुम्भी पर्व के दिन ग्यारह बजे तक वे पहुँच जायेंगे।" इससे हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और हम उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे-धीरे निश्चित तिथि आ गयी। झूसी आश्रम के समीप ही बाबा को ठहराने के लिए एक छप्पर की कुटी बनायी गयी। ठीक समय पर बाबा भक्तमण्डली सहित आश्रम में पधारे और मुझ दीन की चिरकालीन अभिलाषा पूरी हुई।

झूसी में बाबा बड़े प्रसन्न रहते थे। प्रातःकाल चार बजे एक घण्टा अखण्ड कीर्तन में विराजते थे। फिर पाँच बजे भक्तों सहित त्रिवेणीस्नान को जाते थे श्रीब्रह्मचारीजी की बाबा में अपार श्रद्धा थी। वे अपने हाथों से डाँड चलाकर उन्हें संगम पर ले जाते थे। वहाँ से लौटने पर प्रायःआठ बजे आप आसन पर विराज जाते और दस बजे तक दर्शनार्थियों के प्रश्नों के उत्तर अथवा उपदेश देते रहते। तीसरे पहर कथा-प्रवचन आदि में और सायंकाल समष्टि संकीर्तन में सम्मिलित होते थे। आश्रम के सभी प्रोग्रामों में आप बड़ी प्रसन्नता और उत्साह से विराजते थे।

बाबा की दयालुता

एक दिन त्रिवेणी-स्नान के उपरान्त बाबा अपनी कुटिया के आगे धूप में बैठे हुए थे सामने भक्तगण और दर्शनार्थी थ। आप कहने

लगे, "भैया ! यहाँ कभी-कभी खुफिया पुलिस के लोग भी आते हैं और जिसकी खोज में वे आते हैं वह भी आता है। परन्तु दोनों एक दूसरे-को नहीं पहचानते। एक आदमो तो ऐसा आता है जिस पर सरकारने दो हजार रुपये का इनाम घोषित कर रखा है। मुझे सुनकर बड़ा कुतूहल हुआ। एकान्त पाकर मैंने बाबा से प्रार्थना की, "बाबा ! मुझे उस आदमी को दिखा दीजिये, जिस पर दो हजार इनाम है।" बाबा सुनकर मुसकराये और बोले, "अच्छा, कल दिखायेंगे।"

दूसरे दिन नित्य की तरह जमाव लगा। थोड़ी देर में उठकर बाबा कुटिया में चले गये। उनके पीछे एक तरुण संन्यासी ने प्रवेश किया, जिसका शरीर इकहरा था और सिर पर जटायें थी। उसके वस्त्र गेरुआ थे और कंधे पर एक झोली थी, जिसमें कुछ पुस्तकें थीं। बाबा ने मुझे संकेत किया और मैं तुरन्त कुटिया में पहुँचकर चटाई झाड़ने का बहाना करने लगा। वह संन्यासी बोला, "बाबा ! अब तो कई वर्ष हो गये हैं, मेरा मन घर जाने को होता है। आप आज्ञा दें तो घर चला जाऊँ।" बाबा बोले, "नहीं, तू घर जायगा तो अवश्य पकड़ा जायगा। तू यहाँ आता है और खुफिया पुलिस भी आती है। अभी कुछ दिन और इसी अवस्था में रहो। नित्य गीता पाठ करते रहो।" उस व्यक्ति ने फिर भी घर जाने की अनुमति माँगी, परन्तु बाबा ने अनुमति न देकर बार-बार सान्त्वना देते हुए यह कहकर विदा कर दिया कि फिर कभी मिलना। उसके चले जाने पर आपने मुझसे कहा, "यह क्रान्तिकारी है, अँग्रेजों का कट्टर शत्रु है। इसी पर दो हजार रुपये का इनाम है। इसके और भा कुछ साथी हैं, वे भी कभी-कभी आते हैं।"

यह सुनकर मेरे हृदय पर बाबा की दयालुता की छाप पड़ी।

अद्भुत समाधान

एक दिन प्रातःकाल नौ बजे मैं अपनी कुटिया में बैठा था। उसी समय मेरे परिचित कालीचरण खत्री कालेज के प्रिंसीपल श्रीकालीदास कपूर एम० ए० एल० टी० एक अँग्रेज को साथ लिए आये। उन्होंने मुझे बताया कि ये अँग्रेज सज्जन एक जर्मन विश्वविद्यालय के रिसर्च स्कालर हैं। ये वेदान्त पर एक ग्रन्थ लिखते-लिखते किसी विषय पर अटक गये हैं। उसी को समझने के लिये छुट्टी लेकर भारत में आये हैं। कलकत्ता, बम्बई, काशी, हरिद्वार आदि कई नगरों में हो आये हैं, परन्तु अभी तक इनके हृदय का समाधान नहीं हुआ। अब ये अपने उद्देश्य से निराश हो चुके हैं। आप किसी महात्मा का पता बता सकें तो बड़ी प्रसन्नता होगी। ये बातें सुन कर मेरा ध्यान बाबा की ओर गया, मैंने उन्हें कुछ आश्वासन देते हुए कहा कि यहाँ एक महात्मा पधारे हैं। पहले मैं उनसे आज्ञा ले लूँ, तब आपसे मिलाऊँगा।

बाबा उस समय कथा मण्डप में कथा सुन रहे थे। मैंने उनसे संक्षेप में सब हाल कहा। वे बोले, "मैं कुटिया पर चल रहा हूँ। तुम उन्हें साथ लेकर वहाँ आओ।" बाबा के समीप पहुंच कर अँग्रेजी सभ्यता के अनुसार उस व्यक्ति ने अपना टोप उतार कर अभिवादन किया और बैठ गया। प्रिंसीपल साहब ने प्रयोजन का स्पष्टीकरण किया बाबा ने प्रश्न करने की आज्ञा दी। उस अँग्रेज ने प्रश्न किया और प्रिंसीपल साहब ने दुभाषिये के रूप में उसका अनुवाद किया। बाबा ने पूछा, "इस प्रश्न का उत्तर ये कितने समय में समझना चाहते हैं?" अँग्रेज ने प्रश्न किया, "आप कितनी देर में समझा सकते हैं।" बाबा बोले, "एक वर्ष में, एक महीने में, एक दिन में

और केवल पन्द्रह मिनट में।" तब अँग्रेज सज्जन ने पन्द्रह मिनट में ही समझने की इच्छा प्रकट की और अपने हाथ पर बँधी घड़ी की ओर देखा।

बाबा ने उत्तर देना प्रारम्भ किया और साथ-ही-साथ कपूर साहब उसका अँग्रेजी में अनुवाद करते गये। बाबा चौदह मिनट में उत्तर देकर चुप हो गये। उसके प्रश्न का समाधान हो गया और उसने प्रसन्नता से बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। कुछ समय तक तो वह स्तब्ध होकर बाबा के मुख की ओर निहारता रहा। फिर उसने दूसरा प्रश्न किया, "भारत में जो नाम संकीर्तन होता है, क्या इसका प्रचार श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने ही किया है ?" बाबा बोले, "बैकुण्ठधाम में नारद प्रह्लाद आदि भक्तों द्वारा सदा ही भगवान् के सामने सकीर्तन होता रहता है। यह संकीर्तन तो अनादि है। महाप्रभुजी के काल में भगवान् की विभूतियों द्वारा इसका पुनरुद्धार हुआ था। श्री चैतन्य महाप्रभु भी भगवान् की ही विभूति हैं। उन्होंने लोककल्याण के लिये ही संकीर्तन का पुनः प्रचार किया था।" बाबा के इस उत्तर से भी उस अँग्रेज को बड़ी प्रनन्नता हुई और वह प्रणाम करके चला गया।

उन दोनों व्यक्तियों के चले जाने पर बाबा ने कहा, "यह प्रश्न कर्त्ता अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और विद्वान् है, पर अनुवादक योग्य नहीं है।" मैंने कहा अनुवादक तो उच्चकोटि के विद्वान् और लेखक भी हैं। बाबा बोले, "भले ही इन्होंने अनुवाद कर दिया, पर प्रशंसा के योग्य तो प्रश्नकर्त्ता ही था। अनुवादक इस विषय से अपरिचित है।"

बाबा की यह बात मेरी समझ में नहीं आयी। छः महीने पश्चात् मैंने अनुवादक महोदय से उस विषय को समझना चाहा। परन्तु उन्होंने कहा, "मैंने तो बाबा के वाक्यों का अँग्रेजी में अनुवाद मात्र

किया था। प्रश्नोत्तर का मुख्य विषय मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मुझे आश्चर्य है कि उस अँग्रेज ने तो प्रश्न का उत्तर पाकर कृतज्ञता प्रकट की और मैं ज्यों का त्यों रह गया।"

लखनऊ में

मेरी प्रार्थना पर पूज्य बाबा झूसी से अयोध्या होकर लखनऊ पधारे थे। साथ में श्री ब्रह्मचारीजी तथा बाबा रामदासजी आदि कई सन्त और भक्तगण भी थे। जब तक आप लखनऊ में विराजे तबतक कथा, कीर्तन, सत्संग और प्रवचन आदि का बड़ा ही सुन्दर सुयोग रहा। बाबा की भिक्षा के लिये प्रार्थना करने वालों की संख्या जब बहुत अधिक बढ़ गयी तो उन्होंने प्रतिदिन की नामावली निश्चित करने का काम मुझे सोंप दिया था। एक दिन कृपा करके आपने मेरे घर को भी पवित्र किया था।

जब से बाबा लखनऊ पधारे थे उस दिन से मैं नित्य ही उनसे प्रार्थना करता था मुझे साधु बना लीजिये, अब मैं आपके साथ ही रहा करूँगा। एक दिन तो, जब वे मुहल्ला गणेशगंज जाने वाले थे, मैंने उनके चरण पकड़कर साधु बना लेने के लिये प्रार्थना की थी। तब वे बोले, "नहीं, तुम अभी साधु नहीं बन सकते। तुम्हें साधु होने का संस्कार नहीं है। अभी तुम्हें आर्थिक चिन्ता है और सन्तानप्राप्ति भी शेष है, इसलिये अभी तुम साधु नहीं बन सकते।"

मैं—'बाबा! आपकी इन बातों से तो मेरे चित्त में बहुत दुःख होता है। मैं तो कई वर्षों से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहा हू। क्या मुझे फिर गार्हस्थ्य के जाल में फँसना होगा?"

बाबा—'यह तो होनहार है, टल नहीं सकता। धैर्य धारण करो। आगे चलकर तुम साधु हो जाओगे।"

मैं—"यदि बीच ही में मर गया तो ?"

बाबा—"क्या तुमने शरीर अपने अधीन कर लिया है ? यदि मर भी गये तो दूसरा शरीर धारण करके साधु होगे । यदि तुम साधु न हो सको तो मुझे साधु मत कहना ।"

मैं—"तो बाबा ! वह संतान प्राप्ति वाली बात तो आप किसी प्रकार मेट दीजिये ।"

बाबा—"होनहार अमिट होती है । रावण जैसे प्रतापी भी होनहार को नहीं मेट सके, तुम्हारी क्या सामर्थ्य है ?"

यह कहकर बाबा ने वह इतिहास सुनाया जिस प्रकार रावण की पुत्री का विवाह एक भंगी के लड़के के साथ हुआ था । इसके पश्चात् बाबा से मेरा वियोग हो गया । किन्तु दस-बारह वर्ष के भीतर उनकी वह भविष्यवाणी सत्य हो गयी और उनके कथनानुसार मैं इस जीवन में ही साधु भी हो गया । इससे पता चलता है कि बाबा को भविष्य का भी ज्ञान हो जाता था । मेरे ऊपर बाबा के अनन्त उपकार हैं । उनके चरण-कमलों में मेरी सदा प्रीति बनी रहे—यही प्रार्थना है ।



सेठ श्रीजुगलकिशोर जी बिड़ला, दिल्ली

गत कई वर्षों से जब-जब मुझे मथुरा जाने का अवसर प्राप्त होता था, मैं वृन्दावन के आश्रम में श्री उड़ियाबाबाजी से भी मिलने के लिये जाया करता था। उस समय सायंकाल में वहाँ कथा-कीर्तन आदि का कार्यक्रम रहता था, जिसमें बहुत से साधु-संत तथा अन्य लोग भी सम्मिलित होते थे। कथा-कीर्तन की समाप्ति पर कई बार बाबा से देश की परिस्थित के सम्बन्ध में वार्तालाप होता था। उस समय द्वितीय महायुद्ध हो रहा था, जिसके सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही बाबाकी यह निश्चित सी धारणा बनी हुई दिखाई देती थी कि अब भारत में अँग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो जायगा। किन्तु युद्ध के अन्त में अमेरिकन सहायता से जब जर्मनी और जापान परास्त हो गये और अँग्रेजी की विजय हुई तब एकबार फिर इस विषय में बाबा से चर्चा हुई। उस समय भी बाबा ने दृढ़तापूर्वक वही बात दोहरायी कि कुछ भी हो अब भारत में एक वर्ष के भीतर-भीतर अँग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो जायगा और भारत पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करेगा।

बाबा की यह भविष्यवाणी प्रत्यक्ष चरितार्थ हुई, यद्यपि इसमें पाकिस्तान भी बन गया और यहां के करोड़ों हिन्दुओं को भयानक सङ्कटों का सामना करना पड़ा। संत और भक्त होते हुए भी बाबा पाकिस्तान के हिन्दुओं की उस घोर विपत्ति से चिंतित दिखायी देते थे। यह भी कहते थे कि कुछ वर्षों के पश्चात् पाकिस्तान को अपने पापों के कारण नष्ट होना पड़ेगा तथा भारत में अश्वमेध रामराज्य एवं धर्मराज्य स्थापित होगा।

✱

कविरत्न पं० श्रीराधेश्यामजी कथावाचस्पति, बरेली

श्री महाराजजी की प्रशंसा मैंने अपनी युवावस्था के आरम्भ में कलकत्ते में सुनी थी। योगिराज अरविन्द के समान लोग आपको बताते थे। सुना तो यह भी था कि उस क्रान्तिकारी दल में आप रहे थे।* जो हो।

प्यासा कुएँ के पास पहुँच ही गया। प्रयागमें मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हो ही गये—मेरे घनिष्ट मित्र स्वर्गीय राष्ट्रकवि श्री माधव-शुक्ल की कृपा से। मैं तब वहाँ अपनी रामायण का 'केवट संवाद' गा रहा था। उसकी व्याख्या करते-करते मैंने कहीं यह कह डाला—"भगवान् तो बड़े हैं ही, पर मैं आज एक भक्त के दर्शन कराता हूँ और वह भी एक सीधे-सादे एक ग्रामीण के—मल्लाह के जिसका आग्रह है चरण धोये बिना नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। भगवान् को भक्त की माननी पड़ी। तब तो सिद्ध हुआ कि भक्त भी बड़ा है। एक भक्त कहता है—

'खुदाई आपकी, ऐ जान जाँ! मेरी बदौलत है।
सनम जिस दिन अकेले तुम हुए उस दिन कयामत है।।

मेरी इस व्याख्या पर मुझे श्रीमहाराजजी का आशीर्वाद मिला। मैंने अपने को बड़भागी समझा।

कितने ही वर्ष पश्चात् फिर मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए एक गांव भिरावटी में। उन दिनों श्री हरिबाबाजी वहां एक उत्सव कर

---

* क्रान्तिकारी दल में तो नहीं, किन्तु बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन में पिकेटिंग आदि अवश्य किया था।

रहे थे। धनारी स्टेशन से मां श्री आनन्दमयी जी के साथ-साथ मुझे हाथी पर जाना पड़ा। मैंने बहुत ही निवेदन किया कि मैं हाथी पर नहीं जाऊँगा। पर मां क्यों मानने लगीं ? अन्त में बोलीं, "तो हम भी हाथी पर नहीं जायेंगे।" लाचार मुझे उनके साथ जाना पड़ा।

गांव के समीप पहुंचते ही मैंने देखा, श्री हरिबाबाजी हाथ में आरती लिये सामने से आ रहे हैं। उनके साथ श्रीमहाराजजी तथा और भी सैकड़ों पुरुष हैं। मैंने समझ लिया, यह मां का स्वागत है। एक भावना ने उस समय मुझे विवश किया कि मैं हाथी से कूद पड़ूँ। भावना यह थी कि मां के साथ कहीं मेरी आरती न हो जाय। बस, कूदा मैं हाथी से अनाड़ी की तरह। हाथी का हड्डा मेरे सीने पर लगा। मैं एकदम अचेत हो गया। आँख खुली तो मैंने अपने को श्री हरिबाबा के हाथों पर पाया। श्रीमहाराजजी खड़े थे और हाथी-पर बैठी हुई माँ हँस रही थीं। बाबा ने कहा, "कहीं भी हड्डी नहीं टूटी है, दिल की हालत ठीक है।" मैं बोल उठा, "मर जाता तो अच्छा था, ऐसा मौका किसे मिलता है ? जटायु राम की गोद में मरा, मैं महाराज के हाथों पर मरता।" निश्चय ही अपने उस दिन के पुनर्जीवन को सन्तों की ही कृपा समझा। तीनों में से किसी की भी हो मुझ पर कृपा अवश्य हुई। सुनने वाले तो अब तक कहते हैं कि ऐसी घटना प्राण लेने वाली ही हुआ करती है।

भिरावटी में कई दिन रहने के कारण प्रतिदिन कई बार श्रीमहाराजजी के दर्शन होते थे—सबके सामने भी और एकान्त में भी। एक दिन बड़े प्रसन्न थे, फरमाने लगे, "रामायण ही की भाँति अब तुम कृष्णायन को भी पूर्ण करो। कृष्णचरित में बाँसुरी का रस और गीताका ज्ञान ही नहीं है, संसारभर की राजनीति और जीवन या संघर्ष भी है। अब ऐसा समय आने वाला है कि विश्व में दिनों-दिन संघर्ष

बढ़ता ही जायगा। उस समय वही जीवन को सफल बना सकेगा। जिसने श्रीकृष्णको खूब समझा होगा।" श्रीमहाराजजी केभविष्यसूचक वचन आज प्रत्यक्ष हैं।

अन्तिम दर्शन मैंने श्रीकृष्णाश्रम वृन्दावन में ही किये थे। उस समय मेरी प्रार्थना पर श्रीमहाराजजी ने बरेली आने की सहर्षस्वीकृति दी थी। पर बरेली का दुर्भाग्य ! उसके पहले ही गाँधीजी के समान श्रीमहाराज भी आन की आन में सर्वव्यापिनी शक्ति जगदात्मा में लीन हो गये। अब केवल उनकी स्मृति हमारे दिल में हैं, जिसे कोई भी हमसे दूर नहीं कर सकता; जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण के मथुरा जाते समय गोपियों ने कहा था—

'हाय विधाता ! क्यों दिया हमें प्रेम का रोग।
जब तुमको संयोग में था मंजूर वियोग॥'

× × × ×

"आँखों के भीतर की छवि को तू अगर हटाये तो जानें।
हृदयों के श्याम समलिया को मथुरा ले जाये तो जानें॥"

बरेली (अपनी कृष्णायन से)

१५-११-१९५३



प्रो० श्रीगंगाशरणजी 'शील' एम०ए०, चँदौसी

सन् १९२७-२८ की बात है। उस समय मैं मेरठ कालेज की बी०ए० क्लास में पढ़ता था। एक दिन वहां के परमभक्त श्रीकर्त्ता-रामजी ने मुझसे कहा, "आजकल मैं रामघाट में एक कुटी वनवा रहा हूँ। वहां एक सिद्ध सन्त श्री उड़िया बाबाजी रहते हैं। मुझे 'उड़िया बाबा' नाम बड़ा विचित्र-सा लगा, क्योंकि मैं तो कई जन्मों-से इन्हीं चरणों की सेवा करता आ रहा हूँ; मालूम पड़ता है बाबा का और मेरा सम्बन्ध कई जन्मों से था। अत: 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' के नाते इस संत के प्रति मुझे बड़ा आकर्षक उत्पन्न हुआ। परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी मैं श्रीसरकार के दर्शन शीघ्र न कर सका।

मेरठ के प्रथम संकीर्तन-सम्मेलन में श्रीमहाराजजी नहीं पधार सके। उन दिनों बांध पर एक अपूर्व सम्मेलन हुआ था। उसमें मेरठ से 'संकीर्तन' मासिक-पत्र के संचालक श्रीदुर्गाप्रसाद जी भी पहुँचे थे। वे वहां के बहुत से संत और भक्तों के फोटो लाये थे। उनमें श्रीसर-कार का भी फोटो था। उसी के द्वारा पहले-पहल मुझे आपके दर्शनों-का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् दिल्ली में और फिर बुलन्द-शहर एवं अलीगढ़ में बड़े विशाल उत्सव हुए। इन सभी सम्मेलनों में मुझे श्रीचरणों में बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जिस दिन मैंने प्रथम बार श्रीमहाराजजी के दर्शन किये उसी दिन किसी चिरपरिचित बालक की भाँति उन्होंने मुझे अपना लिया, जिससे मैंने भी तत्क्षण श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। उसी दिन मुझे श्रीमहाराजजी की कई विशेषताओं (चमत्कारों) का

अनुभव हुआ। पूज्य श्रीमहाराजजी और श्रीहरिबाबाजी की असीम सहनशीलता का अनुभव तो मुझे बुलन्दशहर के उत्सव में हुआ, जब ब्रह्मलीन श्रीरामतीर्थस्वामी के शिष्य श्रीनारायणस्वामीजी ने बांधके आश्रमों और मधुरभाव की उपासना के कारण स्वामीश्रीकृष्णानन्दजी बंगाली के प्रति गहरे कटाक्ष किये, किन्तु उनका उत्तर देने की आज्ञा के लिये लाख प्रयत्न करने पर भी मुझे अनुमति नहीं मिल सकी।

एक बार श्रीमहाराजजी हरिद्वार पधारे थे। उस समय मैंने अपनी बहिन हीरावती को उनके दर्शन कराये। उसी समय वह उनकी अनन्य भक्त हो गयीं। उसी साल गुरु-पूर्णिमा वृन्दावन के श्रीकृष्णाश्रममें मनायी गयी। हीरो उस अवसर पर श्रीमहाराजजी के लियेएक अत्यन्त सुन्दर हार गूँथकर लायी और कहने लगी, 'इस हार से मैं बाबा की पूजा तो अवश्य करूँगीं, परन्तु मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि यह हार उनके करकमलों द्वारा तुम्हें प्रसाद में मिले।" मैंने कहा 'बाबा अन्तर्यामी हैं, तुझे विश्वास न हो तो आज यह खेल भी देख लेना।" बात बड़ी विचित्र हुई। श्रीमहाराजजी के गले में फूलों और गोटे के सैंकड़ों हार थे। अब हारों का प्रसाद बँटने लगा। जब हीरो वाले हार पर सरकारका हाथ पड़ा तो आपने बड़े प्यारसे मुझेबुलाया और हार देकर कहा, "यह तेरे लिये है।" बहिन हीरो इस घटना को देखकर चकित रह गयी।

मैंने जुलाई सन् १९३४ ई० मे इस चंदौसी कालेज में साधारण अध्यापक के रूप में कार्य आरम्भ किया था। एक दिन प्रिंसीपल श्रीशिवशंकर महोदय ने मुझसे कहा, "आप हिन्दी में एम०ए० क्यों नहीं कर लेते? हमें हिन्दी में एम०ए० की बहुत आवश्यकता है।" मैंने सोचा, ठीक तो है; केवल संस्कृत में एम०ए० रहने से उतना

लाभ नहीं हो सकता। यह सोचकर मैंने सन् १९३५ में परीक्षा का आवेदनपत्र भर दिया और सन् १९३६ में उसका पूर्वखण्ड उत्तीर्ण कर लिया। उस समय चँदौसी में कोई हिन्दी का एम०ए० था नहीं; अतः मेरे सामने यह समस्या थी कि मैं अपना पाठ्यक्रम तैयार करने में किससे सहायता लूँ। कालेज केवल इण्टर क्लास तक था, अतः पुस्तकालय से एम०ए० की पुस्तकें भी नहीं मिल सकती थीं। फिर १० बजे से ४ बजे तक कालेज में पढ़ाना, घर पर कापियां जांचनाऔर डायरी भरना। इनसे अवकाश मिले तो कथा-कीर्तन आदि में जाना। इन सब झंझठों एवं असुविधाओं के कारण मेरी तैयारी पास होने योग्य भी नहीं हो सकी।

इसी प्रकार आज-कल करते-करते होली आ गयी। इसके पश्चात् ही परीक्षा थी। सोचा कि अब होलीकी छुट्टियोंमें जीभरकर परिश्रम कर लूँगा। पर साथ ही बाँध के उत्सव और पूज्य बाबा के दर्शनों का भी लोभ था। अन्त में यही सोचा कि जब वर्ष भर कुछ नहीं पढ़ा तो चार दिनों में ही क्या तैयारी कर सकूँगा। बाँध कर चलकरबाबाका आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना चाहिये। यह सोचकर मैं बांधपर चला गया। आज तक बाबासे किसी प्रकार की प्रार्थना नहीं की थी। परीक्षा के लिए कहते हुए बड़ी लज्जा सी लगी। एक दिन जब प्रसाद बांटते-बांटते बाबा स्वयं ही मेरी झोंपड़ी में आ गये तो मैंने कहा, 'बाबा, इस वर्ष परीक्षा देनी है।" वे हँस कर बोले, "जीवन भर परीक्षा ही देता रहेगा?" सेने कहा, "इसके पश्चात् नहीं दूँगा। अब तो नौका पार लगा दो।"

अस्तु। वहाँ से आकर मैं अस्वस्थ हो गया, फिर भी जैसे-तैसे बरेली पहुंचा। मेरे कनिष्ठ भ्राता भोलानाथ जी चाय अदि पिलाकर

किसी प्रकार इस योग्य तो कर ही देते थे कि परीक्षा दे आऊँ। पर वहां जो कुछ लिखा जाता उसे तो मैं ही जानता हूँ। परीक्षा देकर घर आया और जब परीक्षाफल प्रकाशित होने वाला था तब बिजनौर के संकीर्तन-सम्मेलन में चला गया। घर रहकर करता भी क्या? अपने परिश्रम और प्रश्नों के जो उत्तर लिखे थे उनसे तो पास होने की भी आशा नहीं थी, फिर किसी उत्तर श्रेणी की तो कौन कहे?

परन्तु जब परीक्षा फल देखा तो मेरा नाम प्रथम श्रेणी में था। पूज्य बाबा के इस चमत्कार को देखकर मैं रो पड़ा और अपने को सँभाल न सका। यदि बाबा की असीम कृपा से उस समय प्रथमश्रेणी प्राप्त न होती तो आज कालेज के हिन्दी विभाग का अध्यक्ष कौन बनाता? यह घटना सत् १९३७ ई० की है।

× × × ×

एक दिन महाराजजीने सत्संग में लोंगों से पूछा कि गीताका सार चौथाई श्लोक में क्या है? इस पर साधक लोग अपनी-अपनी निष्ठा के अनुसार उत्तर देने लगे। किसी के कहा, "भक्ति", कोई बोला, "ज्ञान" और किसी ने कहा, "कर्म"। तब अन्त में श्रीमहाराजजी ने कहा, "तुम लोग जो कुछ कहते हो वह भी ठीक है, परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गीता का साराँश आठ अक्षरों ने यह है—"सर्वभूतहिते रताः।"* इसीलिए सन्तों का आविर्भाव होता है तथा इसी निमित से भगवान् अवतीर्ण होते हैं।

मुझे बड़ा आश्चर्य तो तब हुआ जब परलोक विद्या के द्वारा आवाहन किये जाने पर श्रीमहाराजजी ने परलोक से आकर भी यही बात कही। यह घटना इस प्रकार हुई—एक भगवद्भक्त पुत्र के पर-

* सम्पूर्ण प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाले।

लोक सिधारने पर मेरा आकर्षण परलोक विद्या की ओर हो गया था। पूज्य बाबा के आवाहन के लिये उमेशप्रसाद के रूप में मुझे माध्यमभी बहुत उच्चकोटि का मिल गया। यह अच्छा साधननिष्ठ बालक था। उन दिनों इस विद्या के द्वारा मेरा बड़े-बड़े प्रेमियों से परिचय हो गया था, जो परलोक में रहते हुए भी हमारी सहायता करते हैं तथाप्रार्थना करने पर हमारा पथ-प्रदर्शन करने के लिये आ-जाते हैं। अभी राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का परलोकवास हुआ ही था कि कुछ ही महीनों के पश्चात् पूज्य बाबा भी हमें छोड़कर चले गये। मेरे परलोक के मित्रोंने बताया कि बाबा का पता चौदहवें लोकतक भी नहीं है, वे तो लोकातीत हैं। यदि किसी कार्यवश वे नीचे उतरेंगे तो तुम्हारी प्रार्थना कर उन्हें यहां लाया जा सकेगा। बड़ी प्रतीक्षाके पश्चात्केवल पाँच मिनट के लिये बाबा परलोक से मेरे यहाँ पधारे। चँदौसी के प्रमुख भक्त भी उस समय वहां उपस्थित थे। सबने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और एक स्वर से प्रार्थना की कि आप तो चये गये, अब हम क्या करें? तब श्रीमहाराजजीने अचेत माध्यम के द्वारा लिखवाया —'लोकहित' अपने जीवनकाल में आपने, कहा था—'सर्वभूत हिते रताः' और अब परलोक से आकर भी आपने वही बात कैसे सूक्ष्म अक्षरों में कही – 'लोकहित'।*

(१) पंचाक्षर, द्वादशाक्षर और महामन्त्र आदि में से किसी-न किसी मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिये।

(२) गीता और रामायण का पाठ करे तथा इन्हें कण्ठ करने का भी प्रयत्न करता रहे।

---

* अपने जीवनकाल में बाबा लौंग का टिकट बांटा करते थे। यहां से जाते समय भी आप कुछ लौंगे छोड़ गये, जिससे लोगों को आप के पधारने में किसी प्रकार का सन्देह न रहे।

(३) तम्बाकू का सेवन किसी भी रूप में न करें तथा और भी समस्त मादक वस्तुओं से बचें।

(४) सौन्दर्य दृष्टि में है, सृष्टि में नहीं, अतः संसार के सौन्दर्य को देखकर कारण पर दृष्टि रखनी चाहिये, न कि कार्य पर। पण्डित की दृष्टि सर्वदा कारण पर ही रहती है, कार्य पर तो मूर्ख लोग ही मुग्ध होते हैं।

(५) कलियुग में नामसंकीर्तन से विशेष लाभ होता है अतः स्वयं संकीर्तन करे और दूसरों को भी कराता रहे।

मैंने अपने जीवन में ये ही पाँच रत्न अपने पल्ले में बाँधे हैं और यथाशक्ति इनका अनुसरण करते रहने का प्रयत्न करता रहता हूँ। मैं तब भी आपका कृपापात्र था और अब भी उनकी कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ। मेरे जीवन में जो दोष हैं वे मेरी निर्बलताके सूचक हैं और गुण उन्हीं की अपार, अहैतुकी एवं असीम कृपा के परिचायक हैं।



पं० श्रीसुबोधचन्द्रजी, चन्द्रनगर (बदायूं)

पूर्णानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्रीउड़िया बाबा जी बहुत बड़े महापुरुष हैं—यह चर्चा दास ने सबसे पहले संतमण्डली में विराजमान ब्रह्मविद्वरिष्ट श्रीअच्युतमुनिजी महाराज के मुखारविन्द से भृगु क्षेत्र में सुनी थी। उनसे मुझे यह भी विदित हुआ कि वर्तमानकाल में पूज्य बाबा के अतिरिक्त श्री भागीरथी तट पर कोई अन्य परमवराग्यानिधि जीवन्मुक्त संत नहीं है। यह सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता और उनके दर्शनों की उत्कण्ठा हुई। श्रीहरि की अनुकम्पा से एक दिन अकस्मात् अनुपशहर के दक्षिण में पतितपावनी श्रीगङ्गाजी के तट पर दास को आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप तीव्र गति से कर्णवासकी ओर जा रहे थे तथा आपका शरीर कृश होने पर भी अत्यन्त तेजस्वी था। उस समय तो मैं केवल दूर से आपके दर्शन ही कर सका। मुझे ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति उनसे वार्तालाप अथवा उनकी छाया का स्पर्श करने का भी साहस नहीं कर सकता था। इनके पीछे तो रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर, श्रीहरिबाबाजी के बाँध और श्री वृन्दावन आदि कई स्थानों में आपके दर्शन एवं सत्संग का सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसा अद्भुत और अपूर्व सत्संग तो आज तक मेरे देखने या सुनने में नहीं आया। आपके सत्संग में एक विशेषता यह थी कि

यज्ञ-विशेषज्ञ, भक्त-अभक्त सभी मानो समाधि सुख का अनुभव करने लगते थे; उस समय सभी की बोधमयी वृत्ति हो जाती थी। यह बात वर्तमान समय में सर्वथा अलभ्य है।

पूज्य बाबा के उस देव दुर्लभ सत्संग का प्रभाव देखकर चित्त में यह विचार हुआ कि आत्मजिज्ञासा की निवृत्ति के लिये यदि श्रीमहाराजजी को गुरु रूप से वरण कर लिया जाय तो फिर सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है। इस विचार के आने के दूसरे ही दिन परम योगी सर्वज्ञ बाबा स्वयं ही मेरा हाथ पकड़कर श्री गङ्गा तट पर एकान्त में ले गये और बोले, सुबोध ! तू क्या चाहता है ? मैं एक दम विस्मित हो गया और मैंने उनके आगे अपना विचार प्रकट किया। तब बाबा ने स्वयं स्नान किया और मुझे भी स्नान करने की आज्ञा दी। मैंने स्नान किया और बाबा के कौपीन तथा कटिवस्त्र धोकर झाऊ के पेड़ों पर फैला दिये। फिर अपने स्वस्तिकासन से मुझे अपने सामने बिठाया और द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश दे मुझे उसके जप की विधि और अवधि बता दी।

मैंने विधिवत् जप आरम्भ किया और कुछ ही सप्ताह व्यतीत होने पर मुझे बिना ही संकल्प किये अर्द्ध रात्रि के समय स्वप्न में भगवती श्रीमहाकाली के दर्शन हुए। भगवती के अङ्ग की कान्ति उज्जवल नीलमणि के समान थी तथा रक्त जिह्वा उनके मुख मण्डल को शोभायमान कर रही थी। उनकी पृथुल जंघाओं पर जांघिया खिंचा हुआ था। उस पर भाँति-भाँति के आभूषण ध्वनि कर रहे थे। पूज्य बाबा एक रत्नजटित स्वर्णमय थाल में सब प्रकार की सामग्री ले षोडशोपचार से पूजन कर भगवती की आरती कर रहे थे। उस समय उनकी भक्तमण्डली हाथ जोड़े बाबा के पीछे खड़ी थी। ऐसे परम विचित्र,

मनोहारी, रोमाञ्चकारी कालीविग्रह का दर्शन पा मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और मैं बाबा का ध्यान करने लगा। मैंने जब भगवती दर्शन का यह अद्भुत प्रसङ्ग श्रद्धेय प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी और आनन्द ब्रह्मचारी आदि भक्तगण के सम्मुख प्रकट किया तो उत्तर मिला कि बाबा की तुम पर अत्यन्त कृपा है। पूज्य बाबा ने मन्त्रोपदेश देकर तुम्हें अनुग्रहीत किया है, अतः यह सब उन्हीं का प्रसाद है। किन्तु सङ्कोचवश दास ने यह देवी-दर्शन का प्रसङ्ग पूज्य बाबा को नहीं सुनाया। बस, नियमानुसार मन्त्र जप करता रहा।

दैवगति से पूज्य बाबा द्वारा बतायी हुई मन्त्र जप की अवधि पूरी हो गयी। घर में स्वाध्याय के समय भी बाबा के ही दर्शन एवं सत्सङ्गादि की स्मृति बनी रहती थी। परन्तु उन दिनों आपका कोई निश्चित निवास स्थान नहीं था, अतः कहीं जाकर दर्शन करना तो असम्भव ही था। इतने ही में बाबा के एक भक्त से यह शुभ समाचार मिला कि बाबा विचरते हुए अनूपशहर आ गये हैं और सेठ रामशंकर के बाग में ठहरे हुए हैं। यह सुनकर दास गङ्गाजी को पार कर आपके दर्शनार्थ अनूपशहर पहुंचा। वहां जाकर देखा कि बाबा अधिकारिभेद से कर्म, उपासना और ज्ञान-वैराग्य आदि सभी साधनों का उपदेश कर रहे हैं तथा साथ ही सबको प्रसाद भी बांट रहे हैं। उन दिनों में बाबा की यह अद्भुत सिद्धि तो अधिकांश भक्तों ने देखी थी कि जिस पात्र से बाबा प्रसाद बाँटते थे वह आपके संकल्प करने पर, कितने ही लोगों को प्रसाद बाँटा जाय, खाली नहीं होता था। वह चमत्कार सेठ रामशंकरजी आदि अनेकों भक्तों ने प्रत्यक्ष देखा था। भगवती श्री अन्नपूर्णा निर्जन वन में भी बाबा के भोजन-भण्डार को पूर्ण रखती थीं।

बाबा में ऐसे ही अगणित गुण थे, उन सबका वर्णन करना असम्भव ही है। यों तो आप प्राणिमात्र से प्रेम करते थे, परन्तु अपने आश्रित भक्तजनों को तो अपने प्रेमामृत से आप्लावित ही कर देते थे। उनके भजन, अशन, आसन, वसन, शयन इत्यादि सभी आवश्यकताओं का इतना ध्यान रखते थे कि कोई परम सुहृद तथा माता-पिता भी उसका अनुकरण नहीं कर सकते। साथ ही विशेषता यह थी कि प्रत्येक प्रेमी यही अनुभव करता था कि बाबा का सबसे अधिक प्रेम मुझ पर ही है। आत्मा का नाश करने वाले एवं नरक-नगरके द्वारभूत क्रोध पर तो आपका ऐसा आधिपत्य था कि वह भयके कारण यावज्जीवन कभी आपके सम्मुख ही नहीं आया। बाबा को किसी भी व्यक्ति ने कभी अपराधी पर भी क्रोध करते नहीं देखा।

पूज्य बाबा एक उच्चकोटि के सर्वसमर्थ योगी थे। वे एक ऐसा विलक्षण कुम्भक करते थे, जिसकी विधि खोजने पर किसी शास्त्र में भी नहीं मिलती थी। इस कुम्भक को करने पर बहुत समय तक बाबा के प्राणों की गति सर्वथा रुक जाती थी। उस समय उनके नेत्र अर्धोन्मीलित रहते थे तथा वह अत्यन्त दीप्तिमान् और समाधिस्थ हो जाते थे। रामघाट में बाबू रामसहायजी ने कई बार कलकत्ता (नरौरा) के डाक्टरों से भी आपकी परीक्षा करायी थी। दास को तो उन्होंने स्वयं ही दो बार अपनी उस स्थिति का दर्शन कराया था।

बाबा का कार्य संकल्पमात्र से सिद्ध हो जाता था। उसके लिये उन्हें याञ्चा, मन्त्रणा अथवा परामर्श की आवश्यकता नहीं होती थी। वे कहा करते थे, 'न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।' उनकी आत्मनिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि उनके सत्संग में सम्मिलित होने वालों को भी

देह भावना उतनी देर के लिये निवृत्त हो जाती थी। वे इस श्लोकार्ध को प्रायः सुनाया करते थे—'आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्त स्तस्मिन् पदे विगतच्चित्तलवा भवन्ति।'* श्रीबाबा सर्वदेवमय थे, उनमें सभी देवताओं का वास था। इस सिद्धिका भक्तजनों को तब प्रत्यक्ष हुआ जब अनूपशहर में श्री लक्ष्मणवल्लभ जी की पत्नी ने श्री राघवेन्द्र के रूप में आपका दर्शन किया और वे प्रेतबाधा से मुक्त हो गयीं। साथ ही आपका दर्शन पाकर वह प्रेत भी मुक्त हो गया— 'सर्वदेवमयो गुरुः' 'नास्ति तत्त्वं गुरोः समम्।'

पूज्य बाबा केवल प्रेमवश दास के देह और गेह को पवित्र करने के लिये अपनी पुनीत भक्तमण्डली के सहित घर पर पधारे थे। दो-तीन बार तो रात्रि को भी विश्राम किया था। यह सब आपकी लीला ही थी। वास्तव में तो हमारे गुरुदेव श्री उड़ियाबाबाजी महाराज समस्त सद्गुण एवं अनेकानेक सिद्धियों के मूर्तिमान् विग्रह थे। अपने भक्तों के लिये तो वे प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष ही थे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अन्त में पूज्यपाद श्री गुरुदेव ने पादपद्मों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ—

यस्य प्रसादलेशेन सुबोधोऽपि पारङ्गतः।
तमेव सद्गुरुं वन्दे श्रीपूर्णानन्दविग्रहम्॥
पूर्णानन्द प्रसादेन सुबोधः पूर्णतां गतः।
अतस्तमेव वृणुते सर्वदेवमयो हि सः॥

---

* आकाशमण्डल ही जिनका देह है ऐसे देहातीत महापुरुष उस परम पद में स्थित हो चित्त रूप अणु से रहित हो जाते हैं।

— ✱ —

श्रीमान् ठाकुर श्रीकंचनसिंह जी साहब, गोरहा (एटा)

आपने जीवनकाल में मैंने जितने महात्माओं के दर्शन किये है उनमें सबसे अधिक मेरी श्रद्धा बाबा में हुई। मुझे अनेक बार उन्हें भिक्षा कराने का अवसर मिला। परन्तु मैंने कभी उन्हें स्वाद के साथ भोजन करते नहीं देखा। भोजन करने में उनके स्वाद पर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। इसी प्रकार अन्य सब विषयों में भी उनकी विलक्षण असङ्गता देखने में आती थी।

सन् १९४७ ई० में मैं एक मोटर दुर्घटना में ग्रस्त हो गया था। उस समय मुझे एक मिनट के लिये मूर्च्छा हो गयी थी। अपने मन में कोई संकल्प न होने पर भी उस समय मुझे बाबा के दर्शन हो रहे थे; यद्यपि आप उस समय वृन्दावन में थे। उस दुर्घटना से जो मेरी प्राण-रक्षा हुई उसे मैं बाबा का ही प्रसाद मानता हूँ।



श्रीमती ठकुरानी साहिबा, गोराहा (एटा)

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मुझे अमरसा में हुआ था। उसी समय मेरे हृदय में उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। उसके पश्चात् एक बार सम्भल जाते हुए आप अकस्मात् नरौली पहुंचे और वहाँ मेरे ही बाग में विश्राम किया। मैं भी उन दिनों वहीं थी। आप एक दिन ठहरे और मुझे मन्त्र देकर भजन की विधि बतायी। वहाँ से सम्भल जाने का विचार आपने त्याग दिया, मानो मेरे ही लिये आपने वहाँ आने को कृपा की थी।

अपनी कुल मर्यादा के अनुसार मैं हर जगह उनके दर्शनार्थ नहीं जा सकती थी। अतः आपने मुझे आदेश दिया कि जहाँ उपयुक्त स्थान और व्यवस्था देखेंगे वहाँ के विषय में तुम्हें सूचना दे देंगे, तभी आना। इस नियम का आप अन्त तक निर्वाह करते रहे। उनके दर्शन और स्मरण से जो अनिर्वचनीय सुख एवं शान्ति मिलती थी वह अवर्णनीय है। व्यवहार में अनेकों चमत्कार भी हुए। उनमें से दो तीन का यहाँ उल्लेख करती हूँ।

[१]

नरौली में मुसलमानों का उर्स का मेला लगने वाला था। वहां के प्रधान हिन्दू रईस भी सहमत थे, परन्तु जनता दुखी थी, क्योंकि उस मेले में गोबध होता था। लोगों ने मेरे पास समाचार भेजे और मैंने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की। आप बोले, "तुम प्रयत्न करो, मेला नहीं लगेगा।" बस, एक प्रार्थना-पत्र दिला दिया गया और मेला स्थगित हो गया।

[२]

मेरे पति आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। एक दिन श्रीमहाराजजी के समक्ष चर्चा चली कि यह एक राजकीय सम्मान है। आप बोले, यह सम्मान तो तुच्छ है, सम्मान तो उपाधि का ही माना जाता है।" श्रीमहाराजजी ने जिस समय रामघाट में यह बात कही, उसी समय घर पर तत्कालीन कलक्टर ल्यूस साहब की सूचना आयी कि साहब ने कुँवर साहब को बुलाया है। किन्तु कुँवर साहब तो रामघाट में थे। वहांसे एक मास पश्चात् लौटने पर कलक्टर साहब मिले। तब उन्होंने बतलाया कि मैंने आपके लिये 'रायबहादुर' उपाधि की सिफारिश की है। इस प्रकार श्रीमहाराजजी के संकल्प मात्र से अनायास ही कुँवर साहब को रायबहादुर की उपाधि प्राप्त हो गयी, जो दूसरों को बहुत प्रयत्न करने पर मिलती थी।

[३]

एक बार प्रान्तीय विधान सभा का चुनाव होने वाला था। उसमें खड़े होने के लिये तत्कालीन कलक्टर ने कुँवर साहब से बहुत आग्रह किया परन्तु जब श्रीमहाराजजी से पूछा तो उन्होंने मना कर दिया। हमने कहा कि कलक्टर साहब बहुत आग्रह कर रहे हैं। तब आप बोले, "सब ठीक हो जायगा।" कुछ दिनों पश्चात् जब आप घर पर लौटे तो उक्त कलक्टर साहब स्थानान्तरित हो चुके थे। उनके स्थान-पर जो दूसरे कलक्टर आये उन्होंने इस विषय में कोई चर्चा ही नहीं की। हम चुनाव के झंझट से बच गये।

[४]

हमें कष्ट और आपत्तियों से कभी संघर्ष नहीं करना पड़ता था। श्रीमहाराजजी स्वयं ही उनका निवारण करते रहते थे। एक बार

मेरे यहाँ सोरों निवासी पं० दशरथ शास्त्री एक अनुष्ठान कर रहे थे। अकस्मात् उनका लड़का बहुत बीमार हो गया। उसे त्रिदोष हुआ और उसकी स्थिति मरणासन्न हो गयी। ऐसी अवस्था देखकर मैंने नाहरसिंह को श्रीमहाराजजी के पास भेजा। बस, जिस समय आपको इस विघ्न की सूचना दी गयी, उसी समय से उस बालक की दशा सुधरने लगी और धीरे-धीरे वह पूर्णतया स्वथ्य हो गया।



ठाकुर श्रीनाहरसिंहजी बी०ए० गोरहा (एटा)

प्रथम दर्शन

मैं जोबनेर (राजस्थान) के हाईस्कूल की नवीं कक्षा में पढ़ रहा था। उन दिनों मैं कुछ आर्यसमाजी विचारों का था। हमारे हैड-मास्टर पं० भूदेव शर्मा कभी-कभी श्रीमहाराजजी के दर्शनों को जाया करते थे। एक बार उनके मुख से ही मैंने श्रीमहाराजजीकानाम और उनकी कुछ चर्चा सुनी। यद्यपि उस समय मेरी प्रवृत्ति महात्माओं के पास जाने की नहीं थी, तथापि आपकी चर्चा सुन कर मेरे मन में ऐसा भाव हुआ कि मैं आपका दर्शन अवश्य करूंगा। संयोगवश उसके दूसरे ही वर्ष श्रीमहाराजजी कासगञ्ज पधारे। उनके साथ मेरे सहपाठी पं० चिन्तामणि भी थे। उन्होंने एक दिन श्रीमहाराजजी से निवेदन किया कि यहांसे थोड़ी दूर पर मेरे एक मित्र नाहर सिंह रहते हैं। तब बाबा बोले, 'उसे मेरे पास ले आ।' बस पं० चिन्तामणिजी आये और मुझे कासगंज ले गये। यहाँ श्रीज्वालाप्रसादजी के घर पर ही सबसे पहले मैंने श्रीमहाराजजी के दर्शनकिये। उस समय आप शुद्ध खादी के वस्त्र पहनते थे और मुझे भी खादी से प्रेम था। वहाँ से जब विश्राम-स्थल पर लौटे तो आपने मुझसे पूछा, "तू आर्यसमाजी है या सनातन धर्मी ?" मैंने उत्तर दिया, "मैं कुछ आर्यसमाजी हूँ और कुछ सनातनधर्मी भी हूँ।" यह विचित्र उत्तर सुनकर बाबा हँस पड़े और बोले, "यह क्या, कुछ आर्यसमाजी और कुछ सनातनधर्मी ? एक ओर तो रहना चाहिये।" बस प्रथम दर्शनमें श्रीमहाराजजी से मेरी इतनी ही बात हुई।

उसके पश्चात् मैं घर चला आया। दो वर्ष पश्चात् अध्ययन-काल में ही मैंने पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'तुलसीदास' नाम की पुस्तक पढ़ी। कुछ तो उसका प्रभाव पड़ा और कुछ श्रीमहाराजजी की ही ऐसी आन्तरिक प्रेरणा हुई कि मैं शुद्ध सनातन धर्मी बन गया। इसकेपश्चात् जब बाबा पुनः कासगञ्ज पधारे और मैं उनके दर्शनार्थ गया तब उन्होंने मुझसे फिर यही प्रश्न किया—"अब तू आर्यसमाजी है या सनातनधर्मी ? मैंने स्पष्ट उत्तर दिया, "अब मैं सनातनधर्मी हूँ।"

अद्भुत क्षमा

इसके कुछ काल पश्चात् श्रीमहाराजजी नरौली (चँदौसी के पास) पधारे। मैं उस समय वहीं था। भक्तजनों का विचार आपको बागवाली कोठरी में ठहराने का था। परन्तु जब आप वहां पहुँचे तो कोठी के प्रधान चौकीदारने आपको वहां ठहरने नहीं दिया। अतः आप बाग के समीप ही एक मेंड़ पर बैठ गये। मुझे जब इस बात की सूचना मिली तो मैं तुरन्त घोड़े पर चढ़कर पहुँचा। मेरे मन में बड़ा संकोच और भय था कि न जाने अब स्वामीजी कोठी में ठहरेंगे या नहीं ? परन्तु जब मैं पहुँचा तो मुझे देखते ही आप बोले, आ 'अरे तू यहां कहां ?" फिर मेरे आन्तरिक भाव के अनुसार आप स्वयं ही कहने लगे—"कोठी की सफाई हो गयी या नहीं ?" मैंने कहा, "हो गयी।" आप बोले, "देख, नौकर से कुछ कहना मत।" आप की इस क्षमावृत्ति का मेरे चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बस, कोठी में आपका आसन लगवा दिया गया। फिर ठकुरानी साहिबा ने भी आपके दर्शन किये। यहीं आपने मुझे रामनाम का उपदेश किया और जप करने की आज्ञा दी। इसके सिवा दासबोध और भक्तमाल पढ़ने का भी आदेश दिया।

कार्य का निर्णय

एक बार श्रीमहाराजजी बाँध पर थे। तब मैंने पूछा कि मुझे कोई नौकरी करनी चाहिये या उसका संकल्प हृदय से निकाल देना चाहिये ? आप बोले, "भैया ! और सब काम तो तुम आगे भी कर लोगे, धन भी कमा लोगे, परन्तु सत्सङ्ग का ऐसा सुन्दर अवसर फिर नहीं मिलेगा।" तब से मैंने नौकरी का संकल्प सर्वथा त्याग दिया।

ठाकुर साहब*कभी-कभी श्रीमहाराजजी से कहा करते थे कि रियासत का प्रबन्ध ठीक नहीं है। मेरे पिताजी की मुझे आज्ञा थी कि तुम अन्यत्र कहीं भी नौकरी करना, परन्तु ठाकुर साहब के यहां नौकरी मत करना। इधर ठाकुर साहब भी सोचते थे कि ये बी०ए० पास हैं इन्हें कोई अच्छी गवर्नमैण्ट-सर्विस करनी चाहिये, इन बातों का श्रीमहाराजजी ने इस प्रकार फैसला कर दिया। वे ठाकुर साहब से बोले, "अब तुम सारा काम नाहरसिंह के ऊपर छोड़ दो।" और मुझसे कहा कि तुम इसे मेरा काम समझकर सब प्रबन्ध करो। तब से श्रीमहाराजजी की आज्ञा से मैं उन्हींका कार्य समझकर रियासत का प्रबन्ध करने लगा। हां मेरे मन में एक बात अवश्य थी कि मुझे कभी कचहेरी न जाना पड़े और न कभी बयान देने पड़े। सो श्रीमहाराजजी की कृपा से आज तक मुझे कभी कोर्ट में नहीं जाना पड़ा।

रोग में सहायता

एक बार ठाकुर साहब के साथ मैं मोहनपुर से श्रीमहाराजजीके दर्शन करके लौट रहा था। रात के नौ-दस बजे का समय था। मार्गमें

---

*गोरहा के रईस रायबहादुर ठाकुर कञ्चनसिंह जी। इनका नाहरसिंह जी से कोई समीप का सम्बन्ध है।

मुझे हैजा हो गया। पेट में भयानक दर्द था, कय और दस्त दोनों चल रहे थे। व्याकुलता के कारण मैं नहर के किनारे लोटा-लोटा फिरता था। ठाकुर साहब और ठकुरानी जी बड़े दुःखी हो रहे थे। सोचते थे अब मोहनपुर श्री स्वामीजी के पास ही लौट चलें। किन्तु श्रीमहाराजजीकी कृपा से मैं उस समय भी अपने को शरीर से अलग अनुसंधान कर रहा था। मैंने कहा, "नहीं, मुझे ऐसे स्वामी जी से क्या मतलब जो मोहनपुर में हैं और यहां नहीं हैं।" उसी समय ठकुरानी जी के हृदय में ऐसी प्रेरणा हुई कि इनकी नाभि पर हींग का फोहा रखना चाहिये। उन्होंने वैसा ही किया और मैं अच्छा हो गया।

लीला संवरण के पश्चात् भी श्रीमहाराजजी ने मुझे दो बार स्वप्न में दर्शन दिया है और आज्ञा दी है कि तुम अपने को शरीर से अलग देखो।

भक्त वत्सलता

श्रीस्वामीजी अपनी सेवा से उतने प्रसन्न नहीं होते थे जितने अपने फक्तों की सेवा करने से। एक बार श्रीस्वामीजी ने नुझे एक ऐसे भक्त की सेवा सोंपी जिनमें मेरी बिल्कुल श्रद्धा नहीं थी। तथापि मैंने यथाशक्ति आदरपूर्वक आपकी आज्ञा का पालन किया। इससे प्रसन्न होकर आप बोले, "मैं इसकी सेवा से प्रसन्न हूँ।" एकबार जब आपको पता चला कि रसोई में उत्तम और सामान्य दो प्रकार का भोजन बनता है तभी से आप रसोई का प्रबन्ध देखने लगे और स्वयं अपने हाथ से परोस कर भक्तों को खिलाने लगे।

श्रीमहाराजजी वड़े ही भक्तवत्सल थे। अपने भक्तों की श्रद्धा और रुचि का वे इतना अधिक ध्यान रखते थे कि हम उसका अनुमान

भी नहीं कर सकते। वे अपने भक्तों को दुःखी नहीं देख सकते थे। मेरा स्वाभाव था कि मैं यदि किसी बड़े नगर या प्रदर्शनी आदि में जाता तो यह अवश्य देखता था कि यहाँ श्रीस्वामीजी के योग्य कोई अच्छी वस्तु है या नहीं ? एक बार सोरों के मार्गशीर्ष मेले में गया। वहाँ और कुछ तो पसन्द आया नहीं, एक चाकू खरीदा। परन्तु उसका बेंटा सींग का था। वह चाकू मैंने श्रीमहाराजजी को भेंट किया। रात्रि में बहिनजी ने देखा और घृणा के भाव से बोलीं, "सींग का चाकू लाया हैं !" इस पर स्वामीजी ने उन्हें फटकारा कि तुमने तो सींग ही देखा, उसका हृदय तो देखा नहीं कि कितनी श्रद्धा से लाया है ?

इसी प्रकार पञ्जाब यात्रा में जब खन्ना में यह निर्णय हुआ कि आगे की यात्रा में केवल २५—३० व्यक्ति ही जा सकेंगे और श्रीमहाराजजी के भक्तों को लौटाने का निश्चय हुआ तो उस समय आपका हृदय भर आया था, क्योंकि भक्तजन इस प्रकार अधूरी यात्रा से आप को छोड़कर लौटना नहीं चाहते थे। मेरा हृदय भी उस समय आपके वियोग का दुःख अनुभव करता था, इसलिए मुझसे तो आपने स्पष्ट कह दिया था कि तू अपने खर्चे से हमारे साथ चल।

वृन्दावन में ठाकुरसाहब के यहाँ चोरी हो गयी थी। उसमें प्रायः एक लाख की सम्पत्ति जाती रही थी। उस समय जब मैंने श्रीमहाराजजी को सूचना दी और आप घटनास्थल पर पहुंचे तो देखते ही अचेत हो गये थे उस चोरी का ठाकुरसाहब, ठकुरानी जी या मुझे भी उतना दुःख नहीं हुआ था जितना कि आप को। इन घटनाओं से निश्चय होता है कि आप में भक्तवत्सलता बहुत अधिक थी।

उपसंहार

श्रीमहाराजजी में कार्यकुशलता भी अद्भुत थी। परन्तु वे थे

सर्वथा असङ्ग । वे साग बहुत अच्छा बनाना जानते थे, परन्तु स्वयं खाने में उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी । एक बार मैंने उनका बनाया हुआ आलू-गोभी का साग खाया था । वैसा स्वादिष्ट साग मैंने आज तक कभी नहीं खाया । उनके यहां आर्थिक संकोच का अवसर भी कभी नहीं देखा गया । परन्तु वे कभी किसी से रुपये की इच्छा नहीं रखते थे, आर्थिक सेवा बहुत आग्रह करने पर ही स्वीकार करते थे । उनके यहां खर्चा बहुत होता था, परन्तु वह कहाँ से आता था—इस बात को वे ही जानते थे, और किसी को पता नहीं था ।

श्रीमहाराजजी के सम्बन्ध में अपने अनुभवों को तो मैं उनके सामने ही प्रकट करना अच्छा समझता हूँ, क्योंकि तब तो लोग उन्हें कसौटी पर कस सकते थे । अब उन बातों को प्रकट करना तो स्वयं ही उनकी ख्याति करना होगा । अतः अब इस विषय में अधिक निवेदन करने की आवश्यकता नहीं समझता ।



पं० श्रीरामानन्द जी, दिल्ली

पूज्य श्रीउड़ियाबाबा जी महाराज को श्रीमन्महाप्रभु जी का* साक्षात्कार हो चुका था — ऐसा मेरा विश्वास है। एक दिन की बात है, मैं बाबा के साथ श्रीयमुनाजी से आ रहा था। मैंने पूछा, "महाराजजी ! श्रीमन्महाप्रभुजी का स्वरूप कैसा है ?" बाबा बोले, अरे ! उनका स्वरूप तो दयामय है। उनके स्वरूप में दया के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। ऐसा करुणामय ठाकुर मैंने कोई नहीं देखा।" इतना कहकर श्रीस्वामीजी ने मेरी ओर देखा। उस समय सचमुच ही उन दयालु कीदया से श्रीमन्महाप्रभुजी का दयामय स्वरूप ज्यों का त्यों मेरे हृदय में आ गया। हृदय में मुझे उनका दर्शन हुआ। तब मैंने जाना कि बाबा जिस पर दया करें, उसे महाप्रभुजी के दर्शन करा सकते हैं।

श्रीमहाराजजी को अन्नपूर्णा की भी सिद्धी थी। वे जिस पदार्थको दृष्टि से देख लेते थे वह अमृतस्वरूप हो जाता था। उनमें अनेकों सद्‌गुण थे, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।



---

*श्रीचैतन्यमहा प्रभुजी।

पं० श्रीज्योतिप्रसादजी, दिल्ली

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी इस युग के एक महान् पुरुष थे। वे सिद्ध महात्मा थे। उनमें वाक्सिद्धि थी। श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मुझे श्रीहरिबाबाजी के बाँध पर हुआ था। उनके दर्शनमात्र से मुझे कुछ बेहोशी-सी होने लगी थी। मैं उनके श्रीचरणों पर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठाया, मेरी पीठ पर हाथ फेरा और मुझे प्रसाद दिया। उस प्रसाद को पाने से शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। बाबा ने स्वयं ही मेरा नाम लेकर कहा, "तुम दिल्ली से आये हो ?" मानो वे मेरे चिरपरिचित हों, भले ही यह मुझे मालूम नहीं था। इतनी कृपा किसी भी जीवन को अपनाने के लिए पर्याप्त थी। उसी दिन से मेरा मन बाबा के श्रीचरणों में लग गया। जब कभी मैं मन-ही-मन उनका ध्यान करता वे स्वप्न में अवश्य दर्शन देते।

एक बार बाँध पर दिल्ली वालों की ओर से आपसे दिल्ली पधारने के लिए प्रार्थना की गयी। आपने और कुछ न कर सीधे कह दिया, "जब स्वराज्य हो जायगा, अँग्रेज भारत से चले जायेंगे, तब दिल्ली आऊँगा।" यह बात भारत को स्वराज्य मिलने के पांच-सात वर्ष पूर्व की है। उस समय सबको यह बात असम्भव सी जान पड़ी थी। बाबा ने एक-दो व्यक्तियों के सामने नहीं, भरी सभा में यह बात कही थी। सब लोग सुनकर दङ्ग रह गये। परन्तु बाबा भविष्य को जानते थे। उनकी बात सच्ची निकली और वे तभी आये जब भारत को स्वराज्य मिल गया। उनके साथ माँ श्री आनन्दमयी, श्रीहरिबाबा और स्वामी अखण्डानन्दजी आदि भी थे।

एक बार गीता जयन्ती के अवसर पर बाबा दिल्ली पधारे थे। बहुत से भक्तोंकी इच्छा थी कि बाबा को छत्र-चँवर लगाकर जय-जयकार करते हुए सवारी निकाली जाय। परन्तु बाबा ने यह आडम्बर पसन्द नहीं किया। श्री गीताजी की सवारी निकाली गयी और बाबा सबके साथ पैदल चले। उस समय सहस्रों नर-नारियों ने उनका दर्शन एवं पूजन किया। रास्ते भर प्रसाद बँटता रहा। उनके हाथ से थोड़ा प्रसाद भी बहुत हो जाता था। कहते हैं, उन्हें अन्नपूर्णा सिद्ध थी। एक बार उनसे एक महात्मा ने पूछा था, 'महाराज ! आप तो महापुरुष हैं, परमहंस हैं, यह प्रसाद बांटने का झंझट क्यों करते हैं ?" आपने मुस्कराकर कहा, "मुझे आदत पड़ गयी है ।"

एक बार गवर्नमैण्ट की ओर से मुझ पर मुकदमा चलाया गया। यद्यपि उसमें मेरी ओर से कोई गलती नहीं हुई थी। परन्तु लोगों का अनुमान था कि उस मुकदमे से मेरा बचना कठिन है। किसी ने वृन्दावन में बाबा से इस मुकदमे की चर्चा की। मैं उस समय वहां उपस्थित नहीं था। पर बाबा ने कहा, "इसमें पण्डितजी की कोई गलती नहीं है वे छूट जायेंगे।" बाबा के वचन सत्य हुए और हाईकोर्ट से मेरे अनुकूल निर्णय हुआ ।



श्री विपिनचन्द्र मिश्र एडवोकेट, दिल्ली

प्रथम परिचय

जाति, कुल, संस्कार और संग के कारण पौगण्डावस्था से ही मेरे आध्यात्मिक संस्कार थे। कम खाता, भजन करता तथा गीता और कल्याण पढ़ा करता था। 'कल्याण' में छपे पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी के उपदेशों का चित्त पर ठोस प्रभाव पड़ता था और उनके दर्शनों की लालसा होती थी। सन् १९३१ के दिसम्बर मास की बात है, पं० श्री लालजी ने मुझे सूचना दी कि बाबा दिल्ली पधारे हैं, दर्शन करने चलो। मैंने कहा, "पहले आप पूछ लीजिये कि बाबा मुझे दर्शन देंगे या नहीं ?" उन्होंने पूछा तो बाबाने कहा, "अरे वह बालक तो संस्कारी है, उसे बुला लाओ।" मुझे बड़ी उत्सुकता हुई और मैं मध्याह्नके दो बजे श्रीयमुनातट पर कुदसियाघाट पहुंचा। थोड़ी देरमें ही एक पतली सी चादर ओढ़े, चरण धूलि से सने हुए, २-३ भक्तों से घिरे मस्ती से चलते हुए बाबा दृष्टिगोचर हुए। उनके दर्शन करके आदर और श्रद्धा से स्वाभाविक ही मस्तक झुक गया। फिर वे मुझे एकान्त में ले गये और बातचीत की। मुझसे बोले, "क्या करता है ?" मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता, आप ही बतलाइये मैं क्या करता हूँ और आगे क्या करूँ ?" वे बोले, "बेटा ! सब आप ही ठीक हो जायगा। चिन्ता मत कर।" फिर मेरा इष्ट और मन्त्र निश्चित् किया, श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्ध के चौदहवें अध्याय के अनुसार ध्यान करने की प्रणाली बतायी, जो साधक को भक्ति से ज्ञान की ओर ले जाती है। और उपनिषद् पढ़ने की आज्ञा दी। इसके सिवा 'शरीर

मैं नहीं, मेरा है' यह समझाया और कहा कि यदि तुम अभी साधु बन कर भिक्षान्न खाओगे तो तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। इसपर मैंने तर्क किया कि मुझे तो मांग कर ही खाना पड़ता है, चाहे माँ-बाप से मांगू, चाहे सास-ससुरसे, क्योंकि उसके बदले में मैं उनकी कोई सेवा तो करता ही नहीं हूं। तब वे बोले, "बेटा! भजन करना ही सब से बड़ा कार्य है। जो भजन करता है, उसे रोटी प्राप्त करने का सहज अधिकार है। फिर भी तुम्हारे लिये जगह-जगह से मांगने की अपेक्षा मां-बाप से माँग लेना अधिक अच्छा है।

यह बाबा से मेरा प्रथम मिलन था। इसमें ही मेरी कई शंकायें सुलझ गयीं और मेरे कई विचार परिमार्जित हो गये। उस समय जैसी मेरी बाल-बुद्धि थी, उसके अनुसार वे मुझे जटिल समस्यायें भी बड़ी सरल रीति से समझा देते थे। उनके सत्संग से मुझे बहुत लाभ हुआ।

कुछ समस्याओं के समाधान

एक बार मैंने पूछा कि योगशास्त्र में वर्णित चक्र क्या है? इसका रहस्य समझाइये। बाबा बोले, "बेटा! चक्र नसों के जोड़ हैं, उनमें चक्रों की भावना करली जाती है।"

ऐसे ही दूसरी बार पूछा, "ब्रह्मचर्य की महिमा कहने और सुनने में बहुत आती है। परन्तु अनुभव तो ऐसा है कि इसके खण्डन द्वारा प्रत्यक्ष सुख मिलता है और उसके वेग में पढ़ी-सुनी बात बह जाती है। इस पर बाबा ने कहा, "बेटा! इस शरीर में एक प्रकार की गर्मी होती है। उसके निकल जाने से सुख का अनुभव होता है। यदि चित्त-का मन्थन न होने दिया जाय और किसी प्रकार कुछ महीने ब्रह्मचर्य धारण कर लिया जाय तो उसके आनन्द का अनुभव ब्रह्मचर्य-खंडन के

सुख से कहीं बढ़ कर होगा और उससे ब्रह्मचर्य की महिमा भी ठीक-ठीक हृदयंगम हो जायगी ।

एक बार मैंने बाबा से प्रार्थना की कि आपके दर्शनों के लिये बहुत बार आना मेरे लिये सम्भव नहीं है और मन में अनेकों शंकायें उठती ही रहती हैं। ऐसी अवस्था में मैं क्या करूँ ? इस पर बाबा बोले, "बेटा ! ध्यान कर लिया कर।" तब से जब कभी मेरे मन में कोई शंका उठती तो मैं उनका ध्यान कर लेता और ध्यान से उठने के पश्चात् उस शंका का समाधान हुआ पाता तथा एक विलक्षण शान्ति और आनन्द का अनुभव होता, जिसे मैं बाबा का प्रसाद समझ कर गद्गद् हो जाता। फिर तो मैंने अपने ध्यान की प्रणाली ही ऐसी बना ली कि सबसे पहले बाबा का ध्यान करता कि वे अचल गम्भीर मुद्रा में ध्यानस्थ हुए बैठे हैं और अपने हृदय में मेरे इष्टदेव का ध्यान कर रहे हैं। इसके पश्चात् अपने इष्टदेव का ध्यान करता। इस प्रक्रिया से मुझे अत्यन्त लाभ हुआ, क्योंकि हमारे गुरुदेव जो ध्यान करते हैं वह पूर्ण होगा। उसके अन्दर मेरे हृदय की दुर्बलताओं और विक्षेपों-के लिये स्थान नहीं हो सकता। इसके सिवा गुरुदेव का तो मुझे साक्षात् दर्शन होता था, अतः उनका ध्यान भी गहरा होता था। और जब वे मेरे इष्टदेव का ध्यान करते हैं—ऐसा चिन्तन किया जाता तो इष्टदेव का ध्यान भी गहरा हो जाता था। आगे चल कर बाबा ने मेरी इस ध्यान प्रणाली का समर्थन किया और इसे मेरे लिये श्रेष्ठ बतलाया ।

बाबा क्या थे ?

बाबा क्या थे—यह हम क्या कह सकते हैं ? बाबा ज्ञेय नहीं थे, ज्ञान थे। इसलिये प्रत्येक द्रष्टा की दृष्टि के अनुसार प्रतिभासित होते थे। वस्तुतः वे चलते-फिरते स्वयं प्रकाश ब्रह्म थे। उनमें सभी

गुण और सभी भावों का आरोप किया जा सकता था। भिन्न-भिन्न व्यक्ति उनसे भिन्न-भिन्न भाव और सम्बन्ध जोड़ते थे और वे महापुरुष उन सभीकी पुष्टि कर देते थे तथा जीवनपर्यन्त निभाते रहते थे। वे सत्ता सामान्य में व्यवहार करते थे और सभी क्रिया एवं भावों को बिना किसी आग्रह के प्रकाशित करते थे। सभा में श्रेष्ठ आसन पर बैठते थे, पूजा भी स्वीकार करते थे और दूसरे ही क्षण सेवा-कार्य करते भी देखे जाते थे। कभी अत्यन्त शान्त, गम्भीर और श्रेष्ठतम भूमिका में समाविस्थ प्रतीत होते थे और कभी दूसरों की नकल करके मनोरञ्जन भी करते थे। कभी शौच होने जाते और वापिस न लौट कर बिना कुछ सामान साथ लिये अन्यत्र चले जाते। पीछे भक्तजन जहाँ-तहां ढूँढ़ते फिरते। कभी रोटी बाँटते रहते और छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों के ठहरने और खाने का प्रबन्ध करते तथा एक-एक की खातिरदारी में लगे रहते थे। कामिनी-काञ्चन से सदा दूर रहते, परन्तु किसी भाग्यशालिनो से पदपंकज की सेवा भी करा लेते और किसी से कहते कि अबके तुमने इतना रुपया पैदा किया पर हमारी भेंट कुछ नहीं किया। वे किसी भी व्यक्ति या परिस्थिति का आवाहन नहीं करते थे, परन्तु आये हुए व्यक्तियों को घरवालों के समान प्रेम से रोकते और उनके चित्त पर अपने स्नेह की गहरी छाप लगा देते थे। वे प्रत्येक परिस्थिति का बड़ी मस्ती और वीरता से सामना करते थे।

बाबा विरुद्ध धर्माश्रय थे, जो ईश्वर का ही गुण है। यह उनके प्रत्येक बचन और कार्य से प्रगट होता था। दो भक्तों द्वारा लाये हुए चाय और मौसमी के रस को वे तुरन्त पी जाते थे। यह कभी नहीं कहते कि यह हमको अनुकूल या प्रतिकूल होगा। यदि कोई चोरी करता हुआ पकड़ा जाता तो पकड़ने वाले से कहते, "तुम बड़े होशि-

यार हो, सेवा में ऐसी ही सावधानी रखनी चाहिये।" और जब चोर सामने लाया जाता तो कहते, "यह हमारा बेटा है, इससे कुछ मत कहना।" फिर उसे प्रसाद और रुपया दिलवा देते ।

बाबा की दृष्टि में कोई बात छोटी या बड़ी, अनुकूल या प्रतिकूल नहीं थी। उन्हें किसी बात का आग्रह नहीं था। केवल भक्तवत्सलता-से ही उनका दिन भर का व्यापार होता था। उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी थी। परन्तु वे दया और उदारता से लोगों के अवगुणों की उपेक्षा कर देते थे। उपदेश सर्वदा प्रश्नकर्त्ता की भूमिका से ऊँचे उठकर देते थे। शास्त्र, अनुभव और तर्कसम्मत उत्तर विलक्षण रीति से देना उनका स्वभाव था। कोई ब्रह्मज्ञान की बात विशेष करता तो उसे अभ्यास की शिक्षा देते और कोई अभ्यास में बहुत लगा रहता तो उसे मस्ती का सिद्धान्त सुनाते। कहते कि यदि कोई एक बार भी लाट साहब से हाथ मिला लेता है तो उसे जीवन भर तथा उसके पुत्र-पौत्रों को भी उसका अहंकार और गौरव बना रहता है। तुम लोग कैसे हो कि आज प्रातःकाल ही भगवान् के नाम और रूप के दर्शन करके आये हो और अभी एक घण्टे में ही पिटी सी सूरत हो गयी। एक दिन-रात भी उसकी मस्ती न रही ।

वे सन्तानोत्पत्ति के लिये श्री शङ्करजी की पूजा और सोमवार का व्रत बतलाया करते थे। अपने प्रेमियों के पूजा के आसन पर बैठकर उनके इष्ट और अपने फोटो को अपने ही हाथ से भोग लगा देते थे। ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जो एक बार उनके सम्पर्क में आया हो और उनके हृदय पर उनके उपदेश एवं प्रेम की कुछ भी छाप न पड़ी हो। श्री महाराजजी हमारे मन की बात बिना कहे ही जान गये हैं और उसके अनुसार उन्होंने पहले ही से कार्य कर दिया है—इस प्रकार के

चमत्कार जिसे अनुभव न हुए हों ऐसा शायद ही कोई बाबा का परिचित निकले।

उपसंहार

एक बार श्रीमहाराजजी ने अपने देह त्याग की बात व्यक्त की और उससे मैं दुःखी हुआ तो उन्होंने कहा, "बेटा! मैं तो नित्य हूँ और नित्य तुम्हारे पास हूँ। यह शरीर तो न कभी नित्य था और न है। तुम्हारे अन्तःकरण में मेरा जो शरीर है उससे कभी तुम्हारा वियोग नहीं होगा।

श्रीमहाराजजी का वन्दनीय विग्रह आज हमारे दृष्टिगोचर नहीं है, परन्तु अब वह बाहर की अपेक्षा अन्तरिम हो गया है और अब वे हमारे अधिक निकट हैं। उनसे निरावरण मिलन का देश-काला-बाधित संयोग हम सबको प्राप्त है। ऐसे श्रीमहाराजजी, जो प्रसन्नता और कृपा की मूर्ति थे, हमें दया करके यह आशीर्वाद दें कि हम उनकी कृपा का अनुभव करने के योग्य हो सकें और अपना परम पुरुषार्थ प्राप्त करें।



पं० श्रीशङ्करदेवजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली

प्रथम दर्शन

श्रीमहाराजजी की ख्याति सर्वत्र फैली हुई थी। मैंने भी सुन रखा था कि श्रीउड़ियाबाबाजी एक उच्चकोटिके महात्मा हैं।सन् १९२७ की बात है। मैं उस समय अपने गाँव भटवारा में ही रहता था। मैंने सुना कि श्रीउड़ियाबाबाजी खुरजा पधारे हैं। भटवारा के रईस सेठ बाबूलालजी बोले, "चलें, बाबा के दर्शन कर आवें और उनसे गाँव में आने के लिए प्रार्थना भी कर आवें।" ऐसा विचार कर हम लोग खुरजा पहुंचे। उस समय श्रीमहाराजजी सूरजमल जटिया के बाग में ठहरे हुए थे। सारे शहरमें उनकी उपस्थिति की एक लहर-सी फैली हुई थी। सैकड़ों मनुष्यों की भीड़ उनके पास लगी हुई थी। महाराजजी सभी को मुक्तहस्त से प्रसाद वितरण कर रहे थे। उनका दर्शन करके चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। बाबूलालजी ने गाँव में आने के लिए प्रार्थना की और श्रीमहाराजजी ने अपनी स्वीकृति देदी। उसके चार दिनों के बाद आप भटवारा पहुँच गये। उस सयय आपके पास एक चादरा, एक कटिवस्त्र और एक तूँबा ही था।

रात्रि में आप सेठ बाबूलालजीके गंगामन्दिर में शयन कर रहे थे, **मैं चरण सेवा** कर रहा था। उसी समय मेरे मन में संकल्प उठा कि श्रीमहाराजजी तो एक खजाना हैं। मैं अपनी अनिश्चित् वृत्तिकेकारण चिन्तित था ही। अतः सोचा कि इस विषय में कुछ पूछना चाहिये। परन्तु पूछने का साहस नहीं होता था। इतने में श्रीमहाराजजी बोल उठे, "अरे पण्डित! तू कुछ भजन जादि करता है या नहीं?" मैंने

कहा, 'महाराजजी ! कभी-कभी भगवती का पाठ कर लेता हूँ।" आप कहने लगे, 'कभी-कभी क्यों ? भगवान् का नाम 'नियमो यमः' है, अतः नियम से भजन करना चाहिये। इसके सिवा तुम 'विद्या समस्ता तव देवि भूताः' आदि श्लोकों से दारिद्र्य-भयहारिणी श्रीदुर्गा-का स्तवन भी किया करो।" तब से मैं नित्य-प्रति दुर्गासप्तशती का पाठ करने लगा। वह पाठ कई वर्षों तक चालू रहा। मेरे मन में आया कि मैं श्रीमहाराजजी से भगवती की दीक्षा लूँ। इसी संकल्प से मैं रामघाट गया और उनसे दीक्षा के लिये प्रार्थना की। आप बोले, "भैया ! मैंने तो सब त्याग दिया है। अब मुझे दीक्षा देने का अधि-कार नहीं है। यदि कोई अच्छा पण्डित मिलेगा तो बताऊँगा।" फिर बोले, "तुम दीक्षा ही समझो और निरन्तर पाठ किये जाओ।"

स्त्री की बीमारी

एक बार मेरी सहधर्मिणी अत्यन्त रोगग्रस्त हो गयी। मैं कर्ण-वास श्रीमहाराजजी के पास पहुंचा। आप बोले, "कहो, क्या बात है ?" मैंने स्त्री की बीमारी का समाचार सुनाया। आपने बताया— "भगवती के नाम का एक घट स्थापित करो और नित्यप्रति उसका दर्शन कर लिया करो। जब स्त्री अच्छी हो जाय तब भगवती के सत्ताईस पाठ करा देना।" मैंने लौटकर जैसे ही यह प्रयोग किया कि स्त्री अच्छी हो गयी। कुछ दिनों बाद वह दिल्ली लौट आयी और फिर बीमार पड़ गयी। मैंने रात्रि में स्वप्न देखा और उसने भी प्रातःकाल कहा कि मुझे खुरजा जाकर भगवती का दर्शन करना चाहिये। उसने जैसे ही वहाँ पहुंच कर घट के दर्शन किये, वह पुनः स्वस्थता का अनुभव करने लगी। उसके पश्चात् मैंने श्रीमहाराजजीकी आज्ञानुसार पं० रामवल्लभजी के द्वारा खुरजा में भगवती के सत्ताईस

पाठों का अनुष्ठान कराया ।

पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार

सन् १९४५ ई० की बात है, मेरी लड़की विवाह के योग्य हो गयी थी। मैं आगरे के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामधन जी के लड़के के साथ उसका सम्बन्ध निश्चय करके वृन्दावन श्रीमहाराजजी के पास आया। उन्हें लड़की के सम्बन्ध की बात सुनाते हुए मैंने कहा, "महाराजजी ! इतने बड़े घर से सम्बन्ध स्थिर हुआ है, कैसे होगा ?" आप बोले, "घबराने की कोई बात नहीं, तुम सम्बन्ध कर लो।" इसके पश्चात् सम्बन्ध तथा विवाह की तिथि निश्चित करके मैं पुनः श्रीमहाराजजीके पास गया और उन्हें बतलाया कि चैत्र शु० पूर्णिमा का विवाह निश्चित हुआ है, आप किस तिथि को विवाह में पधारेंगे ? इस पर आप हँसकर बोले, "मैं भी आजाऊँगा। तुम भोजन-भण्डार में घी का दीपक जला देना और नित्यप्रति एक पाठ अन्नपूर्णा का करा देना।" फिर मुझे टिकट देकर विदा कर दिया ।

मैंने विवाह का आयोजन दिल्ली की एक धर्मशाला में किया। नवरात्रि को ही मैं उस धर्मशाला में पहुँच गया और वहां से लड़कीकी लग्नपत्रिका भेजी। श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार एक कमरे में भगवती की स्थापना करके पाठ आरम्भ करा दिया। नित्यप्रति अन्नपूर्णा का एक पाठ करा देता था। उसका परिणाम यह हुआ कि चारों ओर से आशातीत न्योते के रुपये आने लगे। मेरे रुपये जिन के पास बाकी थे और जिनके रुपया मिलने में सन्देह था, वे लोग भी स्वयं आकर रुपये देने लगे। मैं तो समझता था कि लड़की के विवाह में खर्च-ही-खर्च करना पड़ता है। परन्तु इस समय तो रुपयोंकी वर्षा सी होने लगी। जब विवाह समाप्त हुआ तो देखा कि जितने

रुपये मैं विवाह के लिये लेकर आया था, उससे सवाये मेरे पास हैं। सभी बराती पूर्णतया संतुष्ट रहे। समधी पं० रामधन जी ने मुझसे कहा, "पण्डितजी ? जो स्वाद मन्दिर के भगवत्प्रसादीय पेड़े के एक कण में आता है वही आपके सम्पूर्ण पत्तल में आया।" बराती, घराती और महात्माजनों को भोजन करा चुकने के बाद भी घी, आटा, चीनी और शाक आदि सामान इतना बचा कि जो भी देखता वही आश्चर्य करता था। वह सब श्रीमहाराजजी के विवाह में पधारने का प्रत्यक्ष प्रमाण था।

मेरी बीमारी

मुझे एक बार भगन्दर की बीमारी हो गयी थी। मैं चार वर्ष इस रोग से पीड़ित रहा। वेदना और घबड़ाहट के कारण मेरी आंखों से नींद उड़ गयी थी। मैं अहर्निश मछली की भांति तड़पा करता था। ऐसी अवस्था में मैं श्रीमहाराजजी की शरण में आया और उन्हें अपना सारा हाल सुनाया। आप बोले, "घबराने की कोई बात नहीं है। 'भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते।' भगवान् सब ठीक करते हैं। तुम दुर्गा सप्तशती के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया करो।" मैंने ऐसा ही किया और श्रीमहाराजजी की कृपा से इस कठिन रोग से मुक्त हो गया। घर वाले तो मेरे जीवन से भी निराश हो बैठे थे।

मैं सन् १९२७ ई० में श्रीमहाराजजी की शरण में आया था। तब से जब तक उनका शरीर इस धाम में रहा, मैं ऐसे रहता था जैसे एक अबोध शिशु अपने माँ के अञ्चल में पहुँचकर निश्चिन्त हो जाता है। जब कभी मैं किसी सांसारिक व्यथा से पीड़ित होता श्रीमहाराजजी के पास पहुंचकर निश्चिन्त हो जाता था। अब भी जब विकट अवसरों पर मेरे सामने अन्धकार छा जाता है तब श्रीमहाराजजी कृपा करके प्रकाश दिखाते हैं। ●

श्री ॐप्रकाश गौड़, दिल्ली

प्रथम दर्शन

पूज्य श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मुझे सात-आठ वर्ष की अवस्था में हुआ था। और फिर समय-समय पर उनसे मिलना होता ही रहा। मेरे परिवार में पहले से ही महात्माओं के प्रति श्रद्धा-भक्ति का भाव रहा है। मेरे पिताजी रामघाट में दरोगा थे और सपरिवार वहीं रहा करते थे। वहीं पर एक बङ्गालिन माताजी भी रहती थीं। उनकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थी। वे परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की शिष्या थीं। उनके पास हम लोग भी कभी-कभी भिक्षा ले जाया करते थे। एक दिन उन्होंने मेरी बूआजी से कहा कि यहां श्री उड़िया बाबा नाम के बड़े ऊँचे महात्मा आये हुए हैं, उनके दर्शन करो। उन्होंने हमें बाबा का थोड़ा सा परिचय भी दिया। तदनुसार हम सबने जाकर उनके दर्शन किये।

उन दिनों श्री महाराजजी के पास स्त्रियां नहीं जाती थीं। वे हर समय मिलते भी नहीं थे। उनके मन, वाणी और शरीर संयत थे। सर्वदा बड़ी गम्भीर मुद्रा में रहते थे। सत्संग के समय शिष्टाचार का पालन होता था। हम लोग बच्चे ही थे, फिर भी तिनका तोड़ना, धरती कुरेदना आदि मना कर देते थे। उनके भीतर जो प्रेम का स्रोत बहता था उससे हम लोग प्रभावित हो गये। हमें उनके पास बैठे रहने में बड़ा आनन्द आता था। वे जिस तरह हमें बुलाते और आग्रहपूर्वक प्रसाद देते, वे सारी बातें अब याद आ रही हैं। वहां हमारे रहते हुए दो-तीन बार महाराजजी आये। कभी-कभी उन्हें भिक्षा कराने का

भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराजजी कहते थे कि दरोगा की भिक्षा तो सबसे पहले मैंने तुम्हारे यहां की है ।

कुछ काल पश्चात् पिताजी वहां से स्थानान्तरित हो गये। उनके साथ हम लोग भी जिला हमीरपुर चले गये। वहां मुझे और हमारे सारे परिवार को श्री महाराजजी की याद आती रही। श्रीमहाराजजी में यह विशेषता थी कि जो एक बार उनसे मिल लेता था वह उनके प्रेममय व्यवहार के कारण उन्हें अपना सनेही समझने लगता था।

सम्पर्क बढ़ा

इसके पश्चात् हमें पं० शोभाराम जी मिले। ये महाराजजी के अनन्य भक्त थे। उनका मिलन हम श्रीमहाराजजी की कृपा ही मानते हैं। जिस समय श्री शोभारामजी पिलानी में पढ़ते थे उनके यहाँ एक महात्मा आये। यद्यपि तब तक महात्माओं में इनकी विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि न जाने क्यों उन महात्माजी का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और ये उनकी सेवा करने लगे। जब महात्माजी भिक्षा करके लेट गये तो शोभारामजी प्रेम से उनके चरण दबाने लगे। थोड़ी देरमें जब इन्हें निन्द्रा-सी आने लगी तो एकाएक महाराजजी चौंक पड़े और बोले, "मैं कलकत्ते से आ रहा हूँ और शाम तक बम्बई पहुँचना है।" यह सुनकर शोभाराम जी बिगड़ उठे और बोले, "कमजोर तो ऐसा है कि एक धक्का दूं तो चार लूढ़कियें खाय और बात ऐसी बनाता है।" तब महात्माजी ने वहीं कैमरे से एक चित्र खींचा और कहा, "यह पुरुष तेरा गुरु होगा। कार्य करता चल।" फिर शोभारामजी के सामने ही वह चित्र लुप्त हो गया। वह फोटो श्रीमहाराजजी से मिलता था। शोभारामजी की अवस्था भजन में ऊँची थी। हम लोगों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा और हम भी भजन करने लगे। सन्

१९३५ में शोभारामजी का पत्र आने पर ही हमने उत्सव में जाकर श्रीमहाराजजी, श्रीहरिबाबाजी, स्वामी श्रीशिवानन्दजी और श्रीराम-देवजी अवधूत आदि महापुरुषों के दर्शन किये।

इस प्रकार श्रीमहाराजजी से हमारा सम्पर्क बढ़ता गया। वे प्रायः उत्सवों में पत्र डालकर हमको बुलवा लेते थे। रामायण आदि भक्ति-ग्रन्थों में जैसी भावुकता का वर्णन है श्रीमहाराजजी की कृपा से मुझे उसका स्वप्न में अनुभव होने लगा। उससे मेरा हृदय उन्मत्त होकर उनके पास भागता था। मैं उनके चरणों पर गिरकर यह समझता था कि अपने सर्वस्व को पा रहा हूँ। परन्तु महाराजजी चपत मार कर मेरी भावुकता को हटा कर कहते, "जरा ध्यान करते चलो।" मैं कहता, "आप स्वप्न में मुझे जितने अच्चे लगते हो उतने प्रत्यक्ष होने पर नहीं। आपकी प्रेममयता और भक्तवत्सलता का नग्न स्वरूप तो स्वप्न में ही देखने को मिलता है।" मेरी कठिनाइयों को वे स्वप्न में ही सुलझाते थे। उनकी कृपा से जागृत में भी कुछ ऐसे तत्त्वों का अनुभव हुआ जिन्हें साधन से प्राप्त करना तो मेरे लिए असम्भव ही था। जैसे कभी तो ऐसा होता कि श्रीराधा-कृष्ण की छवि आंखों से ओझल ही नहीं होती थी और कानों से उनकी एकान्त प्रेमवार्ता भी सुनायी देती थी। इसका परिणाम यह होता कि हृदय में आत्म-समर्पण करने की भावना जागृत होती और आनन्द हिलोरें लेने लगता। कभी स्वप्न में जप होता रहता और आनन्द का भी अनुभव होता। कभी नेत्रों से अश्रुधारा बहती और हृदय द्रवी-भूत हो जाता।

उपदेश

श्रीमहाराजजी से मुझे अनेकों उपदेश मिले। उनमें से कुछ का

यहां उल्लेख किया जाता है—

विद्यार्थी जीवनमें जब मैंने उनसे प्रश्न किया कि मेरा क्या कर्त्तव्य है ? तब उन्होंने कहा था—"तुम्हें विद्याध्ययन के लिये सदैव सचेत रहना चाहिये। इस समय यही तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। इसके लिये तुम्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना नितान्त आवश्यक है" ब्रह्मचर्य पालन के लिये उन्होंने मुझे कई नियम बताये; जैसे—स्त्री तथा स्त्री संगियों के संग का त्याग, सात्त्विक भोजन, मन को सदैव सत्कार्यों में लगाये रखना इत्यादि। वे बोले, "यदि मन को सदैव सत्कर्मों में न लगाये रखा जाय तो वह बुरी-बुरी बातों की उधेड़-बुन में लग जाता है। इससे परिणाम में अनर्थ होता है। साथ ही तुम्हें जप, ध्यान और स्वाध्याय में भी लगे रहना चाहिये। इसकी तो विद्यार्थी जीवन में ही नहीं सम्पूर्ण जीवन में ही बड़ी आवश्यकता है।" इन तीनों की व्याख्या आपने इस प्रकार की—

१. जप—अपने इष्टदेव के गुरुप्रदत्त नाम या मन्त्र को जपना ही 'जप' कहलाता है।

२. ध्यान—अपने इष्टदेव के रूप को सर्वदा मानस नेत्रों से निहारते रहना, जो कि सौन्दर्य की राशि है, 'ध्यान' कहलाता है।

३. स्वाध्याय—अपने इष्टदेव की लीलाओं और उनके उपदेशों का जिन ग्रन्थों में वर्णन है, उन्हें पढ़ना और मनन करना ही 'स्वाध्याय' है।

इन तीनों साधनों को करते रहने से भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। और वे ही समस्त प्राणियों के चरम लक्ष्य हैं।

जब मैंने उनसे कुछ और उपदेश करने की प्रार्थना की तो बोले, "मैं विद्यार्थियों को इतना ही बतलाता हूँ। उनके लिये यही पर्याप्त है।" परन्तु आगे चलकर तो मैंने अनुभव किया कि इतना उपदेश

तो सदा के लिये ही पर्याप्त है ।

इसके पश्चात् जब मैं कालेज में गया और श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार जप-ध्यानादि करने लगा तो सहपाठियों में मेरी गिनती सीधे अर्थात् उनके अभिप्रायानुसार भोंदू या मूर्ख व्यक्तियोंमें होने लगी । मैं उन सबके कटाक्ष का पात्र बन गया । मैं समय-समय पर श्रीमहाराजजी के दर्शन करने को ही आता था । उनसे इस बात की चर्चाकी तो वे मुझे सान्त्वना देते हुए बोले, "तू आगे चलकर जानेगा कि तुझमें और दूसरे विद्यार्थियों में कितना अन्तर है । मनुष्य को पथ-प्रदर्शक मिलने में पहले बहुत कठिनाई होती है । परन्तु मिल जाने पर यदि वह उनकी आज्ञानुसार कार्य करे तो जल्दी उसे सफलता के दर्शन होने लगते हैं ।" उनके कथन से मेरा चित्त स्वस्थ हो गया ।

एक दिन मैंने श्रीमहाराजजी के सामने निवेदन किया कि मित्र मण्डली के साथ रहने और उनसे बातें करने से मन में उद्वेग होता है तथा विवेक भी नष्ट होता जान पड़ता है । तब आपने बड़े प्रेम से कहा, "तू चिन्ता मत कर । इधर-उधर का ध्यान छोड़ कर कार्य करता चल । और सब बातें मैं स्वयं देख रहा हूँ । अज्ञान की उत्पत्ति स्त्री, बालक, पागल और अज्ञानियों से ही होती है; अतः इनसे तुझे सदा दूर रहना चाहिये ।

स्वामीजी की प्रेममयता की बातें मैं उनके भक्तों से सुनता था । परन्तु ज्यों-ज्यों उनसे मेरा सम्पर्क बढ़ा त्यों-त्यों वे बातें अनुभव में आने लगीं । वे अपने अनुभूत सिद्धान्तों को संक्षिप्त वाक्यों में समझा देते थे । अधिक तर्क-वितर्क में नहीं पड़ते थे । उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करने पर साधक को उसकी वास्तविकता का स्वयं पता लग जाता था । साधनकाल में यदि हृदय में शंकायें उठतीं तो वे साथ के

साथ ही उन्हें निवृत कर देते थे। कभी-कभी वे ऐसा कहकर सान्त्वना दिया करते थे—"मैंने जो कुछ बतलाया है उसे करता चल। मैं तुझे भटकने नहीं दूँगा। गुरु की प्राप्ति आधी भगवत्प्राप्ति है। वह तो तुझे है ही अतः अब तू जितना करेगा उतना ही तेरा रास्ता कम होगा।"

उनकी गुणगरिमा

श्रीमहाराजजी में अनन्त गुण थे। मेरे हृदय पर सबसे अधिक छाप इस बात की पड़ी कि वे प्रेममय थे। उनके इस गुण का प्रभाव सभी पर पड़ता था, चाहे वह नवागत हो अथवा बहुत दिनों से आता हो। वे जिस किसी से एक बार मिले वह उन्हें सदा याद करता रहा। इसे हमारे साथी, श्रीस्वामीजी की मोहिनी सिद्धि कहा करते थे। वे दूसरे का कष्ट नहीं देख सकते थे। उनके मुख से कठोर शब्द तो क्या कठोर दृष्टि भी किसी ने नहीं देखी। उनका स्वभाव सरल और नम्र था। इससे उनकी महत्ता को देखते हुए आश्चर्य होता था। कभी-कभी मैं सोचता था—श्रीमहाराजजी स्वयं कृतार्थ होते हुए भी इतना कार्य क्यों किया करते हैं? इसके उत्तर में उनका यह कथन याद आता था—'शीघ्रता करो, अब अधिक नहीं रहना है।' इससे अब अनुभव होता है कि वे दीनवत्सल हमारे लिए ही रात-दिन एक करके कार्य में लगे रहते थे। हमें उनका कितना सहारा था। हमारे हित के लिए हमारे अवगुणों को सहन करते हुए वे कितने सचेष्ट रहते थे—यह याद करके हृदय विह्वल हो जाता है।



श्री बारूमल जी, दिल्ली

(१)

दिल्ली निवासी श्रीआत्मारामजी खेमका ऋषिकेश में श्रीमहाराजजीका दर्शन कर चुके थे। लोगोंके मुखसे भी मैंने उनकी बहुत प्रशंसा सुन रखी थी। अतः एकबार श्रीआत्मारामजी के साथ कर्णवास जा कर मैंने उनके दर्शन किये। उस समय सिद्धासन से स्थिर दृष्टि बैठे हुए श्रीमहाराजजी मूर्त्तिमान् वैराग्य ही जान पड़ते थे। उस यात्रा में जो सबसे पहले आपके मुख से सत्सङ्ग की बात सुननेको मिली वह यह थी—[१] ध्यानरहित जप, [२] ध्यान सहित जप, [३] जप सहित ध्यान [४] जप रहित ध्यान – । साधन के चार सोपान हैं।' इस पर श्री आत्माराम जी ने पूछा—' महाराजजी ! जप रहित ध्यान ?" आप बोले, "हाँ, ध्यान की एक ऐसी स्थिति भी होती है जिसमें जप छूट जाता है और मन एकदम ध्यान में डूब जाता है,"

उस समय यद्यपि मुझे केवल दो ही दिनों के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ या तथापि उतने से ही मेरे हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दिल्ली लौटने पर मनमें उपरामता आ गयी और भगवत्भजन में रुचि हो गयी।

(२)

श्रीमहाराजजी में अनेकों महान् गुण थे। मैंने उनमें एक विशेष गुण यह देखा कि भक्तों पर उनका प्यार माता-पिता से भी बढ़कर था। उनके पास कोई व्यक्ति कितना भी जलते हुए हृदय से आता, उसे आते ही शान्ति मिलती थी। उनमें करुणा बहुत थी। जिस पर कृपादृष्टि करते थे उसे खींचकर भगवदभिमुख कर देते थे। आपका

मुख्य उपदेश था—[१] अखण्ड भगवत्स्मृति, [२] सहनशक्ति [३] निरिच्छा और प्रभु जैसे रखें उसी में प्रसन्न रहना।

(३)

एक बार बाबा खुरजा में सेठ सूरजमल के बाग में ठहरे हुए थे। एक दिन कीर्तन करते-करते मैं रोने लगा। आप बोले, "जा, सो जा।" मैं जाकर सो गया। स्वप्न में देखता हूँ कि एक बौने साधु लेटे हुए हैं और उनके हृदय की गति के साथ अखण्ड जप चल रहा है। मेंने 'महाराजजी !' महाराजजी ! ऐसा दो-तीन बार संबोधन किया। परन्तु वे कुछ भी न बोले। निरन्तर जप में ही लगे रहे। दूसरे दिन बारह बजे जब मैंने श्रीमहाराजजी का दर्शन किया तो उनके हृदय की गति को भी वैसे ही चलते देखा इससे मुझे अखण्ड नाम जप की प्रेरणा मिली।

(४)

सन् १९३२ ई० के लगभग बाबा दिल्ली पधारे। उनके सत्सङ्ग और उपदेश से मेरे हृदय में वैराग्य हुआ और मुझे घर-बार छोड़कर वृन्दावन में रहते हुए भजन करने की इच्छा हुई। में अपनी स्त्री से 'माँ' कहकर महाराजजी के पास चला आया और घर जाना छोड़ दिया। कई दिनों बाद मेरी स्त्री श्रीमहाराजजी के पास गयी और उनकी चादर का पल्ला पकड़ कर बोली, "महात्मा लोग किसी का घर उजाड़ते हैं या बसाते हैं ? महाराजजी की समझ में उसकी बात न आयी। उन्होंने औरों से पूछा कि वह क्या कह रही है ? तब लोगों ने मेरे 'माँ' कहने और घर छोड़कर वहीं रहने की बात बताई। महाराजजी ने मुझे बुलाया और कहा, "मेरी आज्ञा है कि तुम तीन वर्ष तक स्त्री-पुरुष भाव से ही घर में रहो।" मैंने कहा, "महाराजजी

मैं तो इससे माँ कह चुका हूँ।" आप बोले, इस पाप का भागी मैं हूँ, मेरी बात मानो।"

अब मुझे घर जाना पड़ा। इसका और तो जो कुछ परिणाम हुआ-सो-हुआ, परन्तु लोगों को मेरे वैराग्य पर बड़ा मजा आया। पीछे कई वर्षों तक मेरी हँसी होती रही। महाराजजी भी पन्द्रह वर्षों तक कभी-कभी याद दिलाते रहते थे। अब कितने तीन वर्ष बीत गये ? मैं तो जहाँ-का-तहाँ ही हूँ। अन्त में लीला संवरण करने के पन्द्रह दिन पूर्व वृन्दावन में कुटीकी छत पर श्रीमहाराजजी ने कहा था "बेटा! विश्वास कर, मैं तुझे अपना ही मानता हूँ। मैं जो कहता हूँ वही करना, तुम साधु मत बनना, साधु स्वभाव बनना। यदि तुम कहो कि मेरे परिवार में तो कई साधु हो गये हैं, तो बेटा मैं इनसे प्रसन्न नहीं हूँ ये व्यर्थ समय बहुत खोते हैं। भजन तो कोई शूरमा ही करता है। तुम कह देना कि बाबा का यह ऐलान है कि साधु नहीं बनना, साधु स्वभाव बनना।"

ऐसी श्रीमहाराजजी की अद्भुत कृपा थी। उनके अलौकिक गुणों का कहाँ तक वर्णन किया जाय ?



श्री परमानन्दजी दीक्षित, दिल्ली

प्रथम दर्शन और कृपा

पूज्यपाद श्रीमहाराजजो सन् १९३१ ई० के शरत्काल में दिल्ली पधारे थे। उससे पूर्व दिल्ली के संकीर्तनमहामण्डलेश्वर पूज्ज पं० ज्योतिप्रसाद जी की कृपा से मुझे अलीगढ़ के उत्सव में उनके दर्शन हो चुके थे। उस समय मेरी आयु लगभग पन्दह साल की थी। उसके पश्चात् जब आप दिल्ली पधारे और प्रायः दो मास यमुनातट कुद-सिया घाट पर ठहरे तब तो दिल्ली की जनता में एक अपूर्व उत्साह और आध्यात्मिकी जागृति हो उठी थी। अनेकों नर-नारी तथा बालक और वृद्ध उनके दिव्य गुणों से प्रभावित हुए तथा अपनी-अपनी भावना और अधिकार के अनुसार उन्हें अपने लौकिक और परमार्थिक अभीष्टों की सिद्धि हुई।

उन दिनों दशरथनन्दन, शिवचरन और दीनानाथ आदि अपने अपने साथियों के सहित मैं भी रात्रिके आठबजे श्रीमहाराजजीकेसमक्ष कीर्तनादि में सम्मिलित होता था। एक दिन कीर्तन के अन्त में श्री-महाराजजी ने शिवचरण से मेरे विषय में पूछा। शिवचरण ने कहा "महाराजजी! यह ब्राह्मण का लड़का है, परमानन्द नाम है, बिजली का काम सीखता है। बेचारा हमारे साथ चला आता है।" इतना सुनकर श्रीमहाराजजी मेरी ओर टकटकी बांध कर देखने लगे। वे डेढ़-दो मिनट तक देखते रहे। इससे मुझे बड़ा संकोच-सा हुआ। किन्तु उनकी दृष्टि हटते ही मेरे शरीर में रोमाञ्च होने लगा और मैं उस स्थान पर बैठा न रह सका। वहाँ से उठकर बराबर की कोठरीमें

जा बैठा। उस समय मुझे कुछ ऐसा आवेश-सा हुआ कि आनन्दातिरेक से मेरी आँखों से जल बहने लगा और मैं हिलक-हिलक कर रोने लगा।

कीर्तन के पश्चात् पदगान होता था और उसके पश्चात् श्रीमहाराजजी बेसन के लड्डू बाँटते थे. जिन्हें नित्यप्रति श्रीआत्मारामजी खेमका और बिहारीलालजी पोद्दार अपने घर में बनवाकर लाते थे। उस समय मुझे वहाँ न देखकर श्रीमहाराजजी ने पूछा, भैया! परमानन्द कहाँ है ?" इस समय जिस कोठरी में बैठा था, उसमें से उठकर श्रीमुनीलालजी महाराजजी के पास पहुँचे। उन्होंने कहा, "एक लड़का तो कोठरी में बैठा रो रहा है।" तब न जाने कौन मुझे पकड़ कर श्रीमहाराजजी के पास ले गया। उन्होंने मुझे पकड़कर अपने कम्बल के भीतर अपनी गोद में डाल लिया और मेरे शरीर पर प्यार से हाथ फेरने लगे। उस समय मुझे जैसा आनन्द अनुभव हो रहा था वह अनिर्वचनीय है, जिह्वा उसका वर्णन नहीं कर सकती।

बस तभी से मेरी अवस्था कुछ पागलों की-सी हो गयी। अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इसके ८–१० दिन पूर्व कुछ लड़कों के कुसंगवश मैं दुर्गुणों में प्रवृत्त होने लगा था। जिस समय श्रीमहाराजजी ने मेरे शरीर पर अपने कर-कमलों से स्पर्श किया, मुझे ठीक ऐसा जान पड़ता था मानो मैं शीतल जल में डूब रहा हूँ, कोई मुझे पकड़कर भीतर की ओर खींच रहा है। यही मुझ पर पहली बार कृपा की दृष्टि हुई।

दिल्ली में श्रीमहाराजजी

जब सन् १९३१ में श्रीमहाराजजी दिल्ली में पधारे थे तो यहाँ एक हलचल-सी पड़ गयी थी। आपके दर्शन और सत्सङ्ग के लिये

आबालवृद्ध सभी में बड़ा अपूर्व उत्साह देखने में आता था। स्वयं श्रीमहाराजजी भी कहा करते थे कि दिल्ली की जनता, क्या स्त्री क्या पुरुष और क्या बालक, सभी सत्सङ्गी हैं। अतः नीचे मैं उस समय की आपकी दिल्ली यात्रा का संक्षिप्त विवरण लिखता हूँ—

दिनचर्या—प्रातःकाल साढ़े तीन बजे के लगभग आप अपने निवासस्थान किशोरीलालके घाटसे कुछ भक्तों के सहित यमुनाकिनारे उत्तर की ओर प्रायः एक मील नित्यकर्मसे निवृत होनेके लियेजाते थे। वहीं सेठ आत्मारामजी खेमका, गुलराजजी, भगवानदासजी और दुलीचन्दजी आदि कई सत्सङ्गी चार बजे के लगभग पहुँच जाते थे। उस स्थान पर यमुना की रेतीमें प्रायः सात बजे तक सत्सङ्ग होता था श्रीमहाराजजी जिज्ञासुओं की अनेकों गुत्थियाँ बड़ी सरलतासे बात की बात में सुलझा देते थे। उस समय आप साक्षात शंकराचार्य अथवा शुकदेवजी ही ज्ञान पड़ते थे। अभ्यास पर सर्वदा ही आपका जोर रहता था। आपका कथन था कि केवल विचार से कुछ न बनेगा और विचार न होने पर भी केवल साधनों में लगे रहने से कालान्तर में लाभ की सम्भावना है।

साढ़े सात बजे आप आसन पर लौट जाते थे। यहाँ सैकड़ों नर-नारी और बालक पूजा के लिए आपकी प्रतीक्षा करते रहते थे। लोग बड़े भक्तिभाव से आपका पूजन करते और उदारतापूर्वक वह सब स्वीकार करते। उस समय आप साक्षात् नारायण स्वरूप श्री-गिरिराज गोवर्धन ही जान पड़ते थे। आपके आगे पत्र, पुष्प, फल मेवा और मिष्ठान का ढेर लग जाता था। वह सब प्रसाद उसी समय वितरण कर दिया जाता था। जिसको जो वस्तु प्रिय होती वही वस्तु उसका नाम लेकर, बुलाकर प्रेमपूर्वक देते थे। लोग उनके

करकमलों से प्रसाद पाकर अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझते थे।

दस बजे के लगभग आप नगर में भिक्षा के लिये पधारते थे। भिक्षा तो आपके आसन पर ही यथेष्ट आ सकती थी। किन्तु आप करुणा करके लोगों के घर पधारते और एक-एक दिन में पन्द्रह-बीस घरों में भिक्षा करनेके लिए जाते। उस समय आप में अद्भुतवात्सल्य रस की अनुभूति होती थी। आपकी भिक्षाचर्या से सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख करना यहां आप्रासंगिक न होगा। एक दिस सेठ बिहारीलालजी पोद्दार के मुनीम भक्त रामशरणदास ने आपको निमन्त्रित किया। निश्चित समय पर आप नंगे-सिर नंगे-पैर घुटनों तक धूलि-धूसरित हुए उनके मकान पर पहुंचे। साथ में कुछ भक्तजन भी थे। वह भक्त उस मकान में किरायेदार था। उसमें मकान-मालिक तथा और भी कई किरायेदार रहते थे। जब आप दरवाजे पर पहुँचे तो चौकीदार ने आपको भीतर न घुसने दिया और बोला, "यहां दिन भर कंगले आते रहते हैं, मैं तुमको भीतर नहीं जाने दूँगा।" आप दरवाजे पर खड़े हो गये। रामशरणदास ने चौकीदार को समझाने और आपको भीतर ले जाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु एक न मानी। इससे उसे बहुत दुःख हुआ। तब महाराजजी ने उसे समझाया कि "तू क्यों दुःखी होता है, यह इसका मकान है, इसमें मुझे ले जाने का आग्रह करता है। तू मुझे भिक्षा ही तो कराना चाहता है, सो ला, यहीं ले आ। मैं तेरी भिक्षा यहीं कर लूँगा।" कहना न होगा कि उस भक्तने फिर दूसरे स्थान पर ले जाकर आपको भिक्षा कराई।

इस प्रकार पन्द्रह-बीस घरों में भिक्षा करने के लिए कई मीलों का चक्कर काटकर ठीक तीन बजे आसन पर पहुँचने के लिए आप जल्दी-

जल्दी कदम बढ़ाते। उस समय मार्ग में कोई और भक्त मिल जाता और उसी समय अपने घर ले जाने का अनुरोध करता तो उससे आप कहते, "भैया ! तीन बजे कुटिया पर पहुंचना है, वहाँ बहुत लोग आये बैठे होंगे।" फिर भी यदि वह इस कठिनता पर ध्यान न देकर गिड़गिड़ाने लगता तो तुरन्त ही उसके साथ चल देते। फिर उसे सन्तुष्ट कर विलम्ब हो जाने के कारण ठीक समय पर पहुँचने के लिए भागने लगते। आगे कोई और भक्त मिल जाता। परन्तु आपको भागते देखकर उसे रोकने का साहस न होता और वह भी पीछे-पीछे भागने लगता। एक-दो फर्लांग भागने के पश्चात् जब आप पीछे घूम कर देखते तो आप पीछे दौड़ते हुए उस भक्त को देखकर आप पूछते, "क्यों भैया ! तुम कैसे भाग रहे हो ?" वह कहता, "कुछ नहीं महाराजजी, आप कहाँ भाग रहे हैं मेरा घर भी इधर ही है।" तब आप उससे कहते, "भैया ! ठीक तीन बजे कुटिया पर पहुंचना है। हम को भिक्षा में देरी हो गयी।" फिर चलते जाते और कहते जाते, "भैया ! किसी के पास घड़ी है, कितना बजा है ? ओहो ! बहुत देर हो गयी।" इस प्रकार पन्द्रह-बीस कदम बढ़ने पर फिर मुड़कर देखते कि वह भक्त सुस्त सा खड़ा हुआ दीनता से आपकी ओर देख रहा है। तब खड़े होकर संकेत से उसे बुलाते। वह बड़े वेग से दौड़कर आपके पास आता। श्रीमहाराजजी उससे फिर पूछते, भैया ! तुम्हारा घर कहाँ पर है ?" वह कहता, महाराज ! यहीं पास ही है।" तब उससे बड़े स्नेह और प्यार से कहते, "भैया ! हम कुदसिया घाट पर ठहरे हुए हैं, वहां आ जाना और हरि को अपने घर का पता लिखा देना।" वह कहता, "महाराजजी, मैं तो हरि को नहीं जानता।" तब आप कहते, "अच्छा, तू मेरे पास कल दस बजे

आ जाना, कल तेरे घर चलेंगे।" इस प्रकार उसे सन्तुष्ट कर आप फिर भागने लगते और ठीक तीन बजकर कुछ मिनटों पर वहाँ पहुँच जाते। उसी समय आप अपनी ऊँची चौकी पर विराज जाते और बिना किसी प्रकार का बिश्राम किये लोगों के प्रश्नों का उत्तर देने लगते। इस प्रकार पराधीन की-सी लीला करते हुए आप दूसरों के सुख में ही सुख अनुभव करते थे।

मध्याह्नोत्तर तीन बजे से समागत दर्शनार्थियों के साथ आपका प्रश्नोत्तर का क्रम चलता। आपके सत्सङ्ग में सनातनी ही नहीं आर्य-समाजी, सिक्ख, पारसी, जैन, ईसाई सभी सम्प्रदायों के लोग आते थे। आपका सभी के साथ समानता का व्यवहार होता था; सभी आपके समाधान से सन्तुष्ट होकर जाते थे। कभी-कभी तो बिना पूछे ही जिज्ञासु को आपसे अपनी शंकाका समाधान मिल जाता था। मुझे तो इस समय आप साक्षात् भगवती श्रुति के समान करुणामय, अन्त-र्यामी की तरह सर्वज्ञ और स्वयं परब्रह्म की तरह सच्चिदानन्दस्वरूप जान पड़ते थे। इन दिनों दिल्ली के बड़े-से-बड़े विद्वान भी आपका सत्सङ्ग करके अपने को कृतार्थ समझते थे। महामहोपाध्याय पं० हर-नारायण शास्त्री,व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीनदयाल शर्मा,व्याकरणा-चार्य पं० मुखराम शास्त्री तथा आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० रामचन्द्रजी देहलवी आपके पास प्रायः आते रहते थे। पं० श्रीमुख-रामजी पर तो आपका ऐसा प्रभाव पड़ा कि प्रायः नित्य ही आपके सत्सङ्ग में आते रहे। इन्हीं दिनों उन्हें पुत्ररत्न की भी प्राप्ति हुई। इससे पूर्व आपके कन्यायें ही थीं। अतः उसके जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आपने परिकर-सहित श्रीमहाराजजी को अपनी पाठशाला में आम-न्त्रित किया और वेद-मन्त्रों के द्वारा आपकी पूजा की। उस दिन

सबका भोजन भी वहीं हुआ।

रात्रि का समय श्रीमहाराजजी के खेल-मेल और बाल-भाव का होता था। इस समय बालकों की ही प्रधानता होती थी। उनके साथ खूब बाल क्राड़ा होती रहती थी। खूब हँसते-हँसाते और प्रसाद लुटाते थे। लड़के भा निःसंकोच हो जाते थे तथा प्रेम से उछल-उछल कर जोर-जोर से गाते, कीर्तन करते और आनन्द में विभोर हो जाते थे। कीर्तन के पश्चात् जब प्रसाद बाँटा जाता था तब दशरथनन्दन, शिवचरण, दीनानाथ और रघुवीर आदि सभी बालक बड़े उत्साह से 'दाता एक राम भिखारी सारी दुनियाँ' यह रटवाते थे। उस समय प्रसाद बाँटा नहीं, लुटाया जाता था। उस लूट में बूढ़े भी बालक बन जाते थे। इस प्रकार वह सख्य-रस की अद्भुत लीला देखने होकेयोग्य होती थी।

एक दिन की बात है। श्रीमहाराजजी अपने भक्त-परिकर सहित श्रीअतुलकृष्ण गुप्त नामक एक-बंगाली बाबू के यहाँ गये थे। ये सैक्रिटेरियट में लैजिसलेटिव डिपार्टमेण्ट में आफिस-सुपरिटेण्डेण्ट थे। श्रीमहाराजजी के दिल्ली पधारने के समय ही दर्शन हुए थे। परन्तु प्रथम दर्शन में ही आपके प्रति इनकी अनन्य निष्ठा हो गई थी। जिस दिन ये मिले उसके एक दिन पहले आपके पास इनके दफ्तर का एक बाबू आया था। उसका परिचय मिलने पर आपने उससे कहा था कि उस दफ्तर में तो भैया हमारे एक बंगाली बाबू हैं। उसने पूछा, "महाराज! उनका क्या नाम है? मैं उन्हें आपका समाचार दे दूँगा।" तब आपने उसे ऐसा कहकर बात टाल दी कि वह आप ही आ जायेंगे। लो प्रसाद लो, जल्दी जाओ, तुम्हें दूर जाना है। दूसरे दिन ये स्वयं ही घाट पर पहुँच गये। इनके गुरुदेव स्वामी शिवानन्द

जी ने पहले ही कह रखा था कि तुम्हें यमुना तट पर एक महात्मा मिलेंगे। उनका दर्शन करने पर तुम्हें किसी महात्मा से मिलने की इच्छा नहीं रहेगी। अतः छुट्टी के दिन ये सर्वदा यमुना तट पर घूमने के लिए जाया करते थे। प्रथम दर्शन में ही इन्हें महाराजजी के प्रति अपूर्व आकर्षण का अनुभव हुआ और आपने भी मिलते ही इनसे कहा, "अच्छा, बाबूजी तुम आ गये।" इस प्रकार यह 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' वाली बात हुई। ये प्रायः नित्य ही श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ आते थे; आये बिना रह नहीं सकते थे।

हां तो एक दिन श्रीमहाराजजी परिकर-सहित इनके यहाँ भिक्षा के लिए गये। इनकी कोठी नई दिल्ली में घाट से प्रायः पाँच मील दूर थी। इसलिए पहले दिन सायंकाल में लोगों से कह दिया कि कल मुझे बंगाली बाबू के यहाँ जाना है, वहाँ न जाने कितना समय लग जाय, अतः कल कोई आना मत। वहाँ से आप सूर्यास्त के पश्चात् लौटे। उस दिन सेठ आतमाराम और बिहारीलालजी भी नहीं आये। अतः नित्य जो बेसन के लड्डुओं का प्रसाद आता था, आज नहीं आया। हम बालक लोग तो नित्य नियम के अनुसार पहुंच ही गये। प्रायः डेढ़ घण्टे कीर्तन होता रहा। आप उस दिन नेत्र बन्द किये सिद्धासन से बैठे रहे, कुछ बोले नहीं। दशरथनन्दन ने पदगान किया। तब भी आप चुपचाप नेत्र बन्द किये ही बैठे रहे। आपको इस प्रकार चुपचाप देखकर सब बालक रोने लगे और देर तक रोते रहे। तब आप बोले, "क्यों रे! क्या बात है? बेटा! रोते क्यों हो? आज तो आतमाराम भी नहीं आये। आज तुम्हें प्रसाद कहाँ से दें। अच्छा, लो, यह एक सेब रखा है, इसी में से सब ले लो।" वह सेब किसी एक के ही हाथ पड़ गया। फिर आप ने पीछे हाथ डालकर

एक सेव और निकाला। तव तो हम सभी कहने लगे, "महाराजजी! मुझे भी! मुझे भी" बस, आप पीछे से निकाल-निकालकर सबको देने लगे दशरथनन्दन और दीनानाथ ने अपने हाथ से पीछे टटोलकर देखा तो उनके हाथ कुछ न लगा। किन्तु आपने सभी को एक-एक सेव दिया।

प्रभाव और गुण

श्रीमहाराजजी जब दिल्ली पधारे तो यहाँ की जनता आपके दर्शनों से ऐसी प्रभावित हुई कि साधकों की तो बात ही क्या साधारण संसारी लोग भी यदि आपके पास जाते थे तो वे आपसे परमार्थ सम्बन्धी प्रश्न ही करते थे। स्वार्थियों को भी अपने स्वार्थ के विषय में कोई प्रश्न करने का साहस नहीं होता था। मातायें पूछतीं, "महाराजजी! महामन्त्र का जप किस प्रकार करना चाहिये? उसकी कितनी मालाये की जाये?" कोई पूछती, "बाबा! माला चन्दन की रखनी चाहिये या तुलसी की?" कोई प्रश्न करती, "महाराजजी नित्य-नियम से किस पुस्तक का पाठ करना चाहिये?" कोई कहती, "बाबा! स्त्रियों का प्रधान धर्म क्या है?" इत्यादि। इसी प्रकार दस-दस बारह-बारह वर्ष के बालक और बालिकायें भी आपसे माला और रामायण की पोथी माँगते थे।

दया की तो आप मूर्त्ति ही थे। सभी पर आपकी समान दयादृष्टि थी, तथापि मैंने तो यह विशेषता देखी कि जो दीन-हीन-कंकाल आपके पास जाते थे उनसे आप धनी-मानी व्यक्तियों की अपेक्षाअधिक प्यार से बोलते थे। ऐसे ही व्यक्तियों में एक मैं भी था। मैं अत्यन्त निर्धन, निरक्षर और भजनविहीन बालक था, किसी भी प्रकार उनकी कृपा का अधिकारी नहीं था। किन्तु कितनी थी इस अयोग्य पर उनकी करुणा। रात्रि के चार घण्टे छोड़ कर और हर समय आपके

आपके पास सभी प्रकार के व्यक्तियों की भीड़ लगी रहती थी। रात्रि में आठ बजे सेठ आत्माराम जी खेमका और बिहारीलालजी पोद्दार आकर आपके चरणों में बैठते और प्रेम से चरण दबाते रहते थे। दोनों ही सज्जन बड़े ऊँचे सत्सङ्गी बयोवृद्ध और धनसम्पन्न थे। तथापि जब आप मुझे देखते तो अपने पास बुला लेते और इन दोनों से चरण छुड़ाकर बड़े प्रेम से यह कहते हुए कि 'आत्माराम भैया! नैंक पीछे हो जाना' मुझे अपने चरणों में बिठाकर ऊपर से अपना कम्बल उढ़ा लेते। उन दिनों शीत अधिक थी, मेरे पास गरीबी के कारण कोई विशेष वस्त्र भी नहीं रहता था। परन्तु जब आपके चरणों में बैठ जाता तो मुझे बिलकुल ठंड नहीं लगती थी। मैं बालक था, इसलिये उस समय मुझे इन बातों का महत्व समझने की योग्यता नहीं थी बस, आपके चरणों में मुझे एक विलक्षण आनन्द ही आनन्द का अनुभव होता था।

अद्भुत न्याय

एक दिन आप सबेरे दस बजे के लगभग भिक्षा के लिये चलने लगे तो एक स्त्री और बालक ने आकर आपका आंचल पकड़ लिया। स्त्री बोली, "साधु तो पति देकर जाते हैं, आप कैसे साधु हैं जो मेरे पति को यहाँ रख छोड़ा है।" यह सुनकर सब दंग रह गये। जाँच-पड़ताल की तो मालूम हुआ कि बारूमल नामका एक भक्त क्षणिक वैराग्यमें अपनी स्त्री को 'माँ' कहकर चला आया है और कुछ दिनों से यहीं रहता है। यह स्त्री उसी की धर्मपत्नी है। तब आपने बारूमल को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम घर पर जाओ और हमारी आज्ञा से तीन वर्ष तक पति-पत्नी भाव से रहो। जब तुम्हारा लड़का काम-काज करनेके योग्य हो जाय तब देखा जायगा। बारूमल बोला, "महाराजजी! अब तो मैं इसे माँ कह चुका हूँ, अब

मैं इसे पत्नी रूप में कैसे ग्रहण करूँ ?" तब आप बोले, "तू बड़ा बावला है। अरे ! यह माँ इस बालक की है और तू इसे अपनी माँ बनाता है। इसका अधिकार छीनता है। जा, इसे लेकर घर जा, इसी में तेरा भला है, नहीं तो तुझे बहुत दण्ड भुगतना पड़ेगा। और इसे पत्नी रूप से स्वीकार करने में तुझे किसी प्रकार के पाप की आशंका हो तो उसकी जिम्मेदारी हम लेते हैं, तू निश्चिन्त रह।" आपकी यह आज्ञा सुनकर और आपके अरुण नेत्र देखकर बारूमल भयभीत हो गया और 'जो आज्ञा' कह अपने घर चला गया। इस प्रकार मन्द वैराग्य के कारण उसके उजड़ते हुए घर को आपने पुनः बसा दिया। वह बारूमल आज भी घर में ही है।

छायसा में

दिल्ली से श्रीमहाराजजी दक्षिण की ओर गये थे। शीतकाल था और पाला पड़ रहा था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चार दिन के पश्चात् मुझे यमुना तट पर छायसा नामक ग्राम में आपके दर्शन हुए। वहां एक भागवती पण्डित थे। उनसे एकान्त में श्रीमद्भागवत श्रवण करने के लिये ही आप यहां आये थे। मैं बिना वस्त्रादि लिये ही आपके पास पहुंच गया था। वहाँ पाँच दिन ठहरने के पश्चात् मुझसे आपने दिल्ली लौट जाने के लिये कहा। मैं अपने चाचा जी से बहुत डरता था, क्योंकि उनका मुझ पर कड़ा नियन्त्रण रहता था। इस समय मैं उनसे बिना कुछ कहे ही चला आया था। मैंने श्रीमहाराजजी से अपनी कठिनाई कही तो वे बोले, बेटा ! तू जा, तुझे कोई कुछ न कहेगा।" मैं आपकी आज्ञा पाकर घर लौटा तो यह देखकर दंग रह गया कि चाचाजी ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा और न कुछ कहा ही। इससे श्रीमहाराजजी के प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गई।

यात्रा प्रसङ्ग

अब मैं समय-समय पर पूज्यपाद श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ जाने लगा। उन सब प्रसंगों को देना तो स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है तथापि एक-दो प्रसंग यहाँ देकर इस लेख को समाप्त करता हूँ।

सन् १९३७ के जुलाई मास में साईकिल पर दिल्ली से आगरा पहुँचा। किन्तु श्रीमहाराजजी उन दिनों आगरे के समीपवर्ती गाँवों में थे। मैं पता लगाकर वहीं आप से मिला। उन दिनों पूज्य ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्तजी भी गोरखपुरके छः मास के अखण्ड संकीर्तनकी पूर्णाहुति कर आपके साथ ही घूम रहे थे तथा करह (ग्वालियर) के सुप्रसिद्ध सन्त बाबा रामदासजी रामायणी भी आपके साथ ही थे। आप सब काँकर रोड और विश्रामपुर आदि गाँवों में होकर आगरे पधारे। यहां दो दिन ठहरकर श्रीमहाराजजी सब लोगों को विदा करने लगे। उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो साथ ही रहना चाहते थे। उन्हें आपने डाँटना प्रारम्भ किया और कहा कि मैं किसी को अपने साथ नहीं ले चलूँगा।

आपकी यह लीला देखकर मैं भयभीत-सा हो गया और इस भय से कहीं मुझे भी जाने को न कहने लगें आपके सामने न पड़ा। बस, सबको विदा कर केवल तीन-चार मूर्त्तियों को साथ ले आपने हाथरस की ओर प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़ने पर आगरे के एकदो भक्त आपके लिए साग-पूड़ी बनवा कर ले आये। इस समय आपने मेरे विषय में पूछा। मैं विदाई के भय से अपनी साईकिल द्वारा आपसे कुछ दूर रह कर चल रहा था। तब किसी ने कहा कि महाराजजी! वह कुछ दूर पेड़ के नीचे बैठा है। आपने मुझे बुलाने की आज्ञा दी तो मैं सम्मुख उपस्थित हुआ और आपने मुझे भोजन कराया।

इस स्थान पर आपने दो घण्टा विश्राम किया। फिर कुछ दूर चलने के पश्चात् मुझसे बोले, "परमा ! तू भी जा।" मैं साइकिल-पर चढ़कर आपके आगे-आगे दौड़ने लगा। तब आप बोले, "कहाँ जाता है ?" मैंने कहा, "आपकी आज्ञानुसार दिल्ली जा रहा हूँ।" महाराजजी ने कहा, "तो इधर कहां जाता है ?" मैं बोला, "महाराजजी दोनों ओर से मुझे तो दिल्ली बराबर ही जान पड़ती है। मथुरा होता हुआ आया था, अलीगढ़ होता हुआ चला जाऊँगा। दोनों ओर का मार्ग देख लूँगा।" तब श्री महाराजजी ने मेरे गाल पर एक हल्की-सी चपत लगायी और बोले, "देखो तो, हो कैसा रहा है जैसे इसकी नानी मर गयी हो।" आपकी वह प्यार भरी चपत खाकर तो मैं निर्भय हो गया और आपके साथ ही चलने लगा।

आगरे से प्रायः ग्यारह मील पर एक गाँव था। वहाँ का एक व्यक्ति, जो आगरे में अध्यापक था, सायंकाल में अपनी साइकिल पर गांव लौट रहा था। श्रीमहाराजजी को देखकर उसने अत्यन्त विनम्र भाव से प्रार्थना की, भगवन् ! यह सामने का गाँव आपका ही है। अब तो संध्या का समय हो गया है, अतः यहीं पधारें।" गाँव बहुत छोटा और निर्धन लोगों का ही जान पड़ता था। किन्तु वह मास्टर श्रीमहाराजजी के मना करने पर भी प्रार्थना करता ही रहा। अतः आपको उस गाँव में जाना ही पड़ा। इस समय आपके साथ जहाँ तक मुझे स्मरण है बाबू रामसहाय, पल्टूबाबा, श्रीरामदास जी, खुरजेवाला कछीमल और मैं ये पाँच व्यक्ति थे।

गाँव में ठहरने के पश्चात् श्रीमहाराजजी ने उस मास्टर से कहा, "देखो भैया ! रोटी-वोटी कुछ मत लाना।" मास्टर ने कहा, "महाराजजी ! थोड़ा-थोड़ा भोजन तो कर ही लें।" ये मास्टर

बहुत धनहीन जान पड़ते थे। तथापि इनके बहुत प्रार्थना करने पर आप बोले, "अच्छा, दस-बारह घरों से एक-एक रोटी ले आना।" इसके कुछ काल पश्चात् बहुत मात्रा में दूध-रोटी आदि सामान आ गया। भोजन के पश्चात् सबने अपने-अपने आसन पर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः काल चार बजे प्रस्थान किया और सड़क पर आये जो यहाँ से दो-तीन फर्लांग की दूरी पर थी। वहाँ पहुँचने पर आपने सबकी ओर देखा तो मुझे न देखकर बोले, "परमा कहाँ है ?" तुरन्त ही कंछी उस स्थान पर भागा हुआ आया जहां विश्राम किया था और मुझे सोया देखकर उसने जगाकर कहा, "श्रीमहाराजजी सड़क पर खड़े हुए हैं, जल्दी चलो।" ऐसा कहकर वह श्रीमहाराजजी के पास भाग गया और मैं साइकिल पर चढ़कर आपके समक्ष उपस्थित हुआ।

श्रीमहाराजजी मेरी प्रतीक्षा में सड़क पर बैठे हुए थे। मेरे पहुंचते ही सब लोग चल दिये। श्रीरामदास बाबा के पास महाराजजी का बस्ता था। उसमें आपका चश्मा, डायरी, घड़ी और श्रीमद्भागवत आदि कई चीज़ें रहती थीं। चलते समय श्री रामदास जी उसे यहीं भूल गये। प्रायः चार मील निकल जाने पर श्रीमहाराजजी ने नित्य कृत्य से निवृत हो अपना बस्ता माँगा। तब रामदासजी बोले, "प्रभो ! वह तो मेरे पास नहीं है।" अब बस्ते के विषय में तरह-तरह की शंकायें होने लगीं। अन्त में निश्चय हुआ कि ग्राम से चलते समय तो बस्ता था, ये सड़क पर भूल आये हैं। श्री महाराजजी बोले, जाने दो, कोई बात नहीं।" किन्तु और सबको बस्ते के लिये विशेष चिन्ता हुई, क्योंकि उसमें श्रीमहाराजजी की बहुत आवश्यक चीजें थीं। आप तो सर्वथा निश्चिन्त थे। इससे स्पष्ट होता है कि

किसी भी वस्तु में आपको ममता नहीं थी, अथवा सभी को अपनी समझते थे। अतः आपकी दृष्टि में खोने या पाने में कोई अन्तर नहीं था।

तब बाबू रामसहायजी ने बहुत अनुरोध किया कि मुझे परमानन्द की साइकिल दिला दीजिये, मैं जाकर बस्ता खोज लाऊँगा। श्रीमहाराजजी ने साइकिल दिला दी। बस्ता उस स्थान पर तो नहीं मिला। उससे तीन-चार मील और आगे जाने पर एक बैलगाड़ी वाले के पास मिला। उसे दो रुपये देकर बाबूजी बस्ता ले आये। श्रीमहाराजजी की मुखमुद्रा तो जैसी बस्ता खोने पर थी वैसी ही पाने पर भी रही।

इसके अगले दिन श्रीमहाराजजी का हाथरस में पदार्पण हुआ। यहां आप चार-पांच दिन विराजे। इसके पश्चात् सायंकाल में आपने कर्णवास के लिये प्रस्थान किया। यहां से पाँच-छः मील चलकर आप सड़क के किनारे ठहर गये और बोले—"सब लोग दूर-दूर अपने आसन लगा लो, पहले भजन करो और फिर सो जाओ।" मैंने एक ओर श्रीमहाराजजी का आसन लगा दिया। आप उस पर विराज गये और मैं श्रीचरणों को पकड़कर पास बैठ गया। आपने मुझसे दो-तीन बार कहा, "सोता क्यों नहीं है? बेटा, सो जा।" मैं भी कहता रहा, "आप भी सोइये रात को बारह बजे के लगभग मैंने जबरदस्ती आपको पकड़कर लिटा दिया और स्वयं पास ही बैठा रहा। महाराजजी के समीप बैठने पर मुझे निद्रा नहीं आती थी। अतः उन्हीं के अंगों पर हाथ फेरता रहा। आप अचेत-से लेटे हुए थे। जब मेरा हाथ आपकी कमर की ओर गया तो मेरे हाथ में एक चींटा आया। इसे मैंने दूर फेंक दिया। दूसरी बार फिर एक चींटा मेरे हाथ में

आया। उसे भी मैंने आसन से दूर फेंक दिया। तीसरी बार एक चींटा महाराजजी की कमर से चिपटा हुआ मिला। उसे चुटकी से खींचकर दूर फेंक दिया। मैंने देखा वह श्रीमहाराजजी को काट रहा था, किन्तु आपको मानो इसका कुछ पता ही नहीं था। तब मैंने धीरे से आपके कान में कहा, "महाराजजी! महाराजजी!" आप तुरन्त बोले, "हाँ, बेटा! तू सोता क्यों नहीं है?" मैंने कहा, "यहाँ से उठ जाइये।" किन्तु आपने मेरी कुछ नहीं सुनी और फिर अचेत हो गये। मैंने दूसरी बार कान में वही बात कही तब भी आपने वही उत्तर दिया। थोड़ी देर में मैं फिर बोला, "महाराजजी! आप यहाँ से उठ जाइये, में दूसरी जगह आसन लगा देता हूँ!" तब आप मुझे डाँटते हुए बोले, "तू हट जा यहाँ से।" इसके पश्चात् थोड़ी देर मैं शान्त रहा और अधिक चींटे न काटें इस विचार से आपके सिर के नीचे अपना हाथ लगा दिया। तब आप बोले, "तू तो बेटा! बहुत तंग करता है, सोता क्यों नहीं? यहीं पर सो जा।" मैंने कहा, महाराजजी! यहाँ चींटे हैं, वे आपको काटते हैं। आप यहाँ से उठकर दूसरी जगह लेटिये। मैं इस जगह आपका आसान नहीं रहने दूँगा।' इस प्रकार रात्रि के साढ़े तीन बज गये। जब श्री महाराजजी ने मेरी ऐसी हठ देखी तो बोले, "बेटा, तू नही जानता। साधु का आसन जिस जगह लग जाता है, वहाँ से फिर नहीं हटता और यदि उठ जाता है तो फिर वहाँ से चल देते हैं।"

इतना कहकर श्रीमहाराजजी आवाज लगाने लगे, "अरे रामदास, पल्टू! उठते नहीं हो। ब्राह्ममुहूर्त्त का समय है।" फिर धीरे-धीरे कहने लगे, "तुम लोग तो भैया कैसे हो? घर छोड़ा, साधु हुए और अब ब्राह्ममुहूर्त्त में सो रहे हो। उठकर भजन-ध्यान करना चाहिये।"

श्रीमहाराजजी यह कह रहे थे कि सब लोग उठ कर उनके पास आ गये। इसके कुछ देर पश्चात् वहां से चल दिये। दोपहर के लगभग सड़क के किनारे एक कुए पर स्नान किया। रामदासजी श्रीमहाराजजी का शरीर मल रहे थे। उस समय उन्होंने देखा कि शरीर पर जहां-तहां लाल-लाल निशान पड़े हुए हैं। यह देखकर वे रुँधे हुए कण्ड से कहने लगे, "प्रभु आपके यह क्या हुआ ?" महाराजजी बोले, "क्या पता ? गेरो, पानी गेरो।" मैं कुए के किनारे खड़ा यह सब लीला देख रहा था और श्रीमहाराजजी की ओर संकेत करके हँस भी रहा था। मुझे देखकर श्रीमहाराजजी मुस्कराये। तब मैंने रामदासजी से कहा, "पूछो, इनसे क्या हुआ है ? आपको यह मालूम नहीं है। यह रात्रि की लीला है।" रामदासजी ने कहा, "प्रभु ! यह परमा क्या कहता है ?' आप बोले, "यह बावला है।" मैंने कहा, "रातभर तो चींटों ने काटा है, मुझे बावला बता रहे हैं। ये उसी के तो चकत्ते पड़ गये हैं।"

स्नान के पश्चात् आप आसन पर विराज गये। गांव के लोगों को पता चला तो वे भिक्षा लेकर आ गये। सबने प्रसाद पाया और कुछ विश्राम करके चल दिये। श्रीमहाराजजी को गुरुपूर्णिमा पर कर्णवास पहुंचना था, अतः चलते ही गये। रात को बारह बजे के लगभग कर्णवास के बगीचेमें पहुँच गये। यहाँ सैकड़ों भक्त प्रतीक्षाकर रहे थे। दूसरे दिन बड़े उत्साह से महाराजजी की पूजा हुई। उसके पश्चात् मैं दिल्ली चला गया।

उदारता और वात्सल्य

वैसे तो महाराजजी की सभी जीवों पर समान कृपा थी तथापि व्यावहारिक दृष्टि से ब्राह्मण और विद्यार्थियों से आप विशेष स्नेह रखते थे। गंगा किनारे ब्राह्मणों और विद्यार्थियों को तथा वृन्दावन में

रासस्वरूपों को आप प्राय: भोजन-वस्त्रादि देते रहते थे। आपका भोजन कराने का ढग अलौकिक था। उसमें माता से भी अधिक स्नेह और वात्सल्य रहता था। माता तो अपने बालकों से मोह रखती है परन्तु आप तो भगवत्स्वरूप समझकर भोजनादि कराते थे। एक बार आपसे किसी ने प्रश्न किया कि आप कौन हैं? तो बोले, "मैं चराचर का सेवक हूँ।" चराचर का सेवक तो केवल ईश्वर ही हो सकता है। भक्तों को भोजन कराते समय आप भी ऐसे ही प्रतीत होते थे मानो साक्षात् जगज्जननी मां अन्नपूर्णा प्रकट होकर अपने बालकों को भोजन करा रही है। भोजन कराते समय आप बहुमूल्य और मिष्ठान्न आदि स्वादिष्ट पदार्थ ही अधिक मात्रा में परोसते थे। विशेषता यह थी कि खाने वालों में जिसकी जैसी रुचि होती उसे वैसी ही वस्तु अधिक मिलती थी।

श्रीमहाराजजी के पास अनूपशहर का एक चौबा बहुत आया करता था। इसकी अवस्था कुछ ढल चुकी थी। मुझे इसके विषय में ऐसा मालूम हुआ कि इसने सुल्फा और गांजा के व्यसन में पड़ कर अपनी सब सम्पत्ति बर्बाद कर दी थी अब ये फाकेमस्त थे और बहुत कगाली तथा मस्ती का जीवन व्यतीत करते थे। एक बार मैंने कर्णवास में देखा कि श्रीमहाराजजी के पास कोई भक्त एक कटोरदान भरकर अनार के दाने लाये। उस समय आपके पास जो लाग खड़े हुए थे, उन्हें आप उन दानों का प्रसाद बांटने लगे। कुछ देर में चौबेजी भी वहां आ गये। बाबा ने उनसे यह पूछते हुए कि तुम क्या लोगे, वह कटोरदान खोला। चौबे जी अपना कुर्त्ता फैला कर बड़े वेग से महाराजजी की ओर बढ़े। आपने भी वह सारा कटोरदान उसके कुर्त्ते में लौट दिया। उसमें एक सेर के लगभग दाने थे। इतना प्रसाद

पाकर चौबा कुछ दूरी पर जाकर प्रसन्नता से नाचने-कूदने लगा। वहां कुछ आदमियों से वह कह रहा था, "मैंने बाबा के पास कटोरदान बन्द रखा देखा तो सोचा कि इसमें कुछ बढ़िया माल होगा और बाबा मुझे यह सब दे देंगे तो मेरी खूब तृप्ति होगी। अहाहा! बाबा कैसे अन्तर्यामी हैं।" चौबे के ये शब्द मैंने अपने कानों से सुने थे। इससे स्पष्ट होता है कि महाराजजी खिलाने-पिलाने में अत्यन्त उदार और वाञ्छाकल्पतरु थे।

इसी प्रकार सुखवीर नाम का एक १२-१३ वर्ष का लड़का कर्णवास में अधिकतर आपके पास रहता था। यह भी अनूपशहर का ही रहने वाला था तथा बहुत ही उद्दण्ड और पागल सा था। यह कुत्तों-को पकड़ लाता और उनसे बच्चों को डराता था। यह भी सुनने में आया कि एक बार यह सर्प पकड़ लाया था और उसे श्रीमहाराजजी के ऊपर छोड़ दिया। इस प्रकार यद्यपि वह अनेक प्रकार के उपद्रव करता था, तो भी आप उसे खाने-पीने को खूब देते थे। एक बार लोगों ने शिकायत की कि यह उपद्रव बहुत करता है, इसे यहां रखना ठीक नहीं। उसी समय कुछ लोग अनूपशहर जाने वाले थे। आपने आज्ञा दी कि इसे बांध कर ले जाओ। उन्होंने ऐसा ही किया और सायंकाल अनूपशहर पहुँचकर छोड़ दिया। कर्णवास से अनूपशहर प्रायः आठ मील है। परन्तु यह दूसरे दिन सबेरे ही फिर कर्णवास पहुंच गया। श्रीमहाराजजी गंगास्नान करके लौट रहे थे। उन्हें देखकर वह खूब रोया और बोला, "महाराजजी! मैं तो आपका ही हूँ।" यह केवल कौपीन बांधे रहता था तथा स्नान न करने के कारण इसके शरीर पर मैल के पपड़े जमे रहते थे। उस समय तो बहुत-सी फुन्सियां भी निकली हुई थीं। तथापि यह कुछ भी न

देखकर आपने उसे छाती से लगा लिया। यह देखकर मैं चकित रह गया कि जिसे म्लेच्छ समझकर लोग घृणा करते हैं उसे श्रीमहाराजजी हृदय से लगा रहे हैं। ऐसी थी आपकी उदारता।

एक बार श्रीमहाराजजी बुलन्दशहर पधारे और नाले के किनारे कन्नीमल के बगीचे में ठहरे। आपके पधारनेसे बुलन्दशहरमें ऐसी हलचल मची कि सैकड़ों नर-नारियों की भीड़ आपके पास लगी रहती थी। उसी समय बुलन्दशहर में एक अन्य सुप्रसिद्ध संत भी आये हुए थे। बाबा का इतना प्रभाव उन्हें सहन न हुआ और उनके हृदय में कुछ ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हुआ। जब महाराजजी बुलन्दशहर से अनूपशहर चले गये तो ये महात्मा एक अन्य तर्ककुशल संत को साथ ले आपसे शास्त्रार्थ करने के संकल्प से अनूपशहर पहुँचे। जब उन्होंने आपके सामने अपना विचार प्रकट किया तो बोले—

सुने न काहू की कही, कहे न अपनी बात।
नारायण वा रूप में, मगन रहे दिन-रात॥

बस, इतना कहकर आप मौन हो गये। इन दो शब्दों से ही उनका शास्त्रार्थ समाप्त हो गया, क्योंकि वाद-विवाद करना तो संत का लक्षण नहीं है। इतना सुनकर वे महात्मा चुपचाप अपने स्थान को लौट आये।

प्रेम परवशता

१८ फरवरी सन् १९४७ की बात है। नाहरसिंह जी मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ वृन्दावन ले गये। इधर बहुत दिनों से मैं आपके पास नहीं गया था। कारण यह था कि मैं उनसे यह प्रार्थना किया करता था कि कुछ दिन मुझे आप अकेला ही अपनी यात्रा में साथ रखें। ऐसा अवसर मुझे दिया नहीं गया। इसलिये मैं उनके

पास नहीं गया। इस बार कुँवर नाहरसिंहजी मुझे जबरदस्ती ले गये। आश्रम में पहुँचने पर भी मैं सामने न गया। कुँवरसाहब ने ही श्री महाराजजी को मेरे आने की सूचना दी। तत्काल आज्ञा हुई कि उसे पकड़ कर हमारे पास लाओ। नाहरसिंहजी मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए ले गये। श्रीमहाराजजी ने चौकी से उठकर दोनों हाथों से मुझे पकड़ लिया और करुणाभरी दृष्टि डाल कर कोमल स्वर में कहा, "नाहरसिंह! परमा हमसे रूँठा है।" उनके ऐसे शब्द सुनकर मेरे नेत्रों में कुछ अश्रु आ गये। फिर आपने धीरे से मेरे कान में कहा, "बेटा! अब बाँध पर चलेंगे और तुझे अकेले को ही ले चलूँगा।" यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसके दस दिन के पश्चात् १८ फरवरी को रात के साढ़े बारह बजे के लगभग हाथ में कमण्डलु लेकर आप कुटिया से चल दिये। मैं भी आपके पीछे हो लिया। एक दो व्यक्ति और भी साथ चलने लगे, किन्तु उन्हें आपने डाँट कर रोक दिया। बस, आगे आप और पीछे मैं तथा नाहरसिंहजी चले। प्रायः दो फर्लांग जाकर आप बैठ गये। मैं नाहरसिंह को आपके पास छोड़कर कुटिया से अपनी साइकिल ले आया। दो-ढाई घण्टे आप वहीं बैठे रहे। साढ़े तीन बजे के लगभग वहाँ से चले और यमुना तट पर आकर नौका की प्रतीक्षा करने लगे कुछ प्रकाश होने पर नोका आयी तब नाहरसिंह को बिदा कर के यमुना पार की। अब बस, मैं ही आपके साथ था।

आज दोपहर में साया से दो मील इधर हाथरस की सड़क पर एक मन्दिर में विश्राम किया। वहाँ बुलन्दशहर वाले मास्टर मुंशीलाल आ गये। विश्राम के पश्चात् आप वहाँ से अलीगढ़ की सड़क पर चले दूसरे दिन प्रातःकाल बेसवाँ के निकट पं० किशोरीलाल और प्रताप-

सिंह मिल गये। यहाँ से सब लोग साथ-साथ अलीगढ़ होते हुए बांध पर पहुंचे। मैं केवल एक दिन ही आपके साथ अकेला रह सका। आपके साथ अकेले रहने की मेरी वासना अतृप्त ही रही।

प्रायः एक मास आपका निवास बाँध पर ही रहा। यहाँ आप बहुत अस्वस्थ प्रतीत होते थे। लोग आपको बहुमूत्र का रोग बताते थे, साथ ही कुछ ज्वर भी रहता था। गर्वां के लाला बाबूलालआपकी चिकित्सा करते थे। आपके खान-पान पर बड़ा कड़ा नियन्यत्र था। परवल के रेशे के साथ केवल हल्का-फुल्का दिया जाता था। यह सब होते हुए भी परिश्रम आप पूर्ववत् ही करते रहे। कोई भी भक्त आता तो उसके ठहरने और भोजनादि की व्यवस्था आप स्वयं ही करते। कोई जाता तो उसे लौंग-इलायची का टिकट देकर विदा भी करते। यह सब करते हुए पूज्य श्रीहरिबाबा जी के सत्सङ्ग में भीठीक समय पर सम्मिलित हो जाते।

१० अप्रेल को प्रातःकाल साढ़े तीन बजे कुछ भक्तों के साथ आपने वृन्दावन के लिये प्रस्थान किया। अनूपशहर, भेरिया और कर्णवास आदि स्थानों पर होते हुए आप अतरौली क पास उत्तमगढ़ी पहुँचे। यहाँ आपके भक्त भवानीसिंह और किशनसिंह दरोगा रहते थे। सायं-काल में उनके घर पधारे। उन्होंने आपको ऊँचे आसन पर बिठाकर पूजन किया। आरती में प्रायः पाव छटांक कपूर था। वह अग्नि की तरह प्रज्जवलित हो रहा था। श्रीमहाराजजी नेत्र बन्द कियेसिद्धासन से विराजमान थे और ये दोनों भाई भी प्रेम विभोर हो नेत्र बन्दकिये गद्गद् कण्ठ से स्तुति बोलते हुए आरती कर रहे थे। इन्हें यह चेत भी नहीं रहा कि थाल श्रीमहाराजजी के मुख से कुछ दूरी पर रखना चाहिये। कपूरकी ज्योति आपके मुखारबिन्द को स्पर्श करने ही वाली

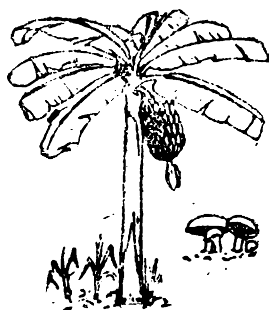
थी कि मैंने दरोगाजी को पकड़ कर पीछे खींच लिया। महाराजजीका मुख जलने से बाल-बाल बचा, किन्तु आप ज्यों-के-त्यों शान्त भाव से विराजे रहे, मानो शरीर से आपका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। प्रेमियों की प्रसन्नता के लिये आप इस प्रकार की अटपटी क्रियायें भी सहन कर लेते थे।

इसके पश्चात् अतरौली और हरदुआगंज होते हुए २१ अप्रेल को आप अलीगढ़ पहुंचे। आपको वृन्दाबन पहुँचने की जल्दी थी, अतः अलीगढ़ में केवल एक रात ही ठहरना चाहते थे। किन्तु अलीगढ़ के भक्त आपको घेरे हुए थे और उनका अनुरोध था कि कल तो यहीं ठहरें। रात को ग्यारह बजे आपने समझा-बुझाकर सबको बिदाकर दिया। उस रात गर्मी बहुत अधिक थी। आप पन्नालाल के बगीचे में चबूतरे पर विराजमान थे। मैं पंखे से हवा कर रहा था। औरभीकुछ भक्त आपके पास आने लगे। परन्तु आपने सब को रोक दिया। सबके चले जाने पर मैंने आप को लिटा दिया और स्वयं पंखा झलता रहा। रात को पौने दो बजे आप उठकर बैठ गये और मुझे साथ लेकर चल दिये। मैंने अपनी साइकिल ले ली। प्रायः एक फर्लांग चलने पर अलीगढ़ से इगलास जाने वाली सड़क आ गयी। मैंने श्रीमहाराजजीसे साइकिल पर बैठने का अनुरोध किया। मेरे प्रेमपरवश प्रभुसाइकिलके कैरियर पर बैठ गये। मुझे अपने पर भरोसा था कि मैं आपको साइकिल पर बिठाकर ले जाऊँगा। मैं साइकिल पर चढ़ा और पैर भी चलाये, परन्तु पहिया वहीं रेत में धँस गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी न चला सका। श्रीमहाराजजी साइकिलके बराबर रोड़ियों के ढेर पर गिर गये। मैंने तुरन्त साइकिल छोड़कर आपको उठाया और आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराजजी ऐसी कृपा कीजिये

जिससे मैं आपको साइकिल पर बैठा कर चला सकूँ। आप बोले, अच्छा, बेटा ! अबकी बार बिठा कर चला।" मैंने आप को बिठाया और साइकिल चलानी आरम्भ कर दी। इस बार मुझे कुछ भी कठिनाई न हुई। ऐसा लगा मानो साइकिल पर कोई वजन ही नहीं है। इस प्रकार श्रीमहाराजजी की कृपा से मैं उन्हें नौ मील के लग-भग ले गया।

वहाँ से मैं ही आपके साथ रहा। इस प्रकार प्रेम परवश सरकार ने मेरी ऐसी अटपटी इच्छा भी पूर्ण की।

उनके चरित्र तो अनेकों हैं। कहाँ तक लिखे बस, इन कतिपय प्रसंगों को देकर ही लेखनी को विश्राम देता हूँ।



श्रीशिवचरणलालजी शर्मा, दिल्ली

प्रथम दर्शन

यों तो मैं बहुत दिनों से श्रीमहाराजजी की महिमा सुना करता था, परन्तु उनका प्रथम दर्शन मैंने पं० ज्योतिप्रसाद जी की कृपा से अलीगढ़ के उत्सव में किया। उस समय विशेष भीड़-भाड़ होने के कारण दुर्भाग्यवश वहाँ उनके चरणस्पर्श या विशेष सम्पर्क स्थापित करने का अवसर नहीं मिला। उसके कुछ महीने पश्चात् सौभाग्यवश अपना कृपा-प्रसाद लुटाने के लिए आप दिल्ली पधारेऔर कुदसिया घाट पर विराजे। उस समय एक महीना तक हमें श्रीमहाराजजी के दर्शन, सेवा, सत्सङ्ग और लीलाओं के रसास्वादन का जो अद्भुत आनन्द मिला वह अवर्णनीय है। हम सारे दिन आपके साथ ही रहते थे। रात्रि को दस बजे घर लौटते थे।

उन्हीं दिनों की बात है, एक दिन हम लोग मिलकर मीराबाई का एक पद गा रहे थे। उस समय अकस्मात् महाराजजी समाधिस्थ हो गये। हम सब बहुत घबड़ाये। हमने वैसी अवस्था कभी देखी नहीं थी। अनुपशहर वाले भक्त प्यारेलालजी आपके तलवे मसलने लगे। इससे प्रायः एक घण्टे में आपको चेत हुआ। उस एक मास में आपने दिल्ली वालों पर कृपा की वृष्टि की उससे हममें से कई लोगों की जीवनधारायें बदल गयी। ऐसा जान पड़ता था मानो आपके रूप में स्वयं भगवान ही हमें अपनी ओर उन्मुख करने के लिए पधारे हों। बस, एक रात चुपचाप आप उठकर छाय से चले गये। तब से हम समय-समय पर विभिन्न स्थानों में आप के दर्शनार्थ जाते रहे।

अन्तर्यामिता

एक बार गुरुपूर्णिमा के अवसर पर मैं रामघाट आप के पास गया। उस पूण्यभूमि में आपकी परमपावनी सन्निधि में रहते हुए भी एक दिन मेरे मन में काम विकार उत्पन्न हो गया। इससे मैं बहुत घबड़ाया और मैंने इस पाप का प्रायश्चित करने के लिये तीन दिनका उपवास करनेका निश्चय किया। ठीक भोजनके समय मैं गंगा तटपर चला गया। वहाँ से लौटने पर जब आपने भोजन के लिये कहातो कह दिया, "आज मेरी तबियत खराब है, मैं भोजन नहीं करूँगा।' दूसरे भी दिन ऐसा ही कोई बहाना बना दिया। तीसरे दिन आपस्वयं ही मुझसे कहने लगे, "बेटा ! जो मानसिक पाप बन गया है उसकी चिन्ता मत कर। वह सब समाप्त हो गया। अब मैं आज्ञा देता हूँ तू प्रसाद पाले।" यह आपकी अन्तर्यामिता का मैंने प्रत्यक्ष चमत्कार देखा। तब आपके अभयदान से मैंने भोजन कर लिया।

साधन संकेत

एक बार मैंने प्रार्थना की, "श्रीमहाराजजी ! मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दे दीजिये।" आप बोले जब पाँच सौ रुपये जोड़कर मेरे पास लायेगा तब देखूँगा।" मैंने पाँच-सौ के स्थान पर बारह सौ रुपयेजोड़े तब आज्ञा माँगीं। उस समय आप बोले, "जब पांच हजार रुपये जोड़ लेगा तब बताऊँगा। मैंने हट करके पूछा कि आप इस प्रकार बह-काते क्यों हैं ? तब कहा, "समय बड़ा विपरीत है। तेरे लिये तो पाँच हजार रुपये कहीं जमा करके भोजन से निवृत होकर भजन करना ही अच्छा है।" मैं चुप हो गया।

आपका दर्शन होने से पूर्व मैं कई बार वृन्दावन गया था। परन्तु वहां कोई आनन्द नहीं मिला। एक दिन कर्णवास में मैंने आपसे

यह बात कही तो आप बोले, "वृन्दावन में जाकर यमुनाजी का स्नान श्रीबाँकेबिहारीजी का दर्शन, गिरिराजकी परिक्रमा और रासलीलाका दर्शन करने से आनन्द मिल सकता है, अन्यथा नहीं।"

एकबार कर्णवास में मैंने आपसे पूछा, "आप सवारीपर क्यों नहीं बैठते?" आप बोले, "अरे! इसमें आशा-निराशा का सुख-दुःख होता है। यह बन्धन का कारण है, स्वतन्त्रता का बाधक है; इसलिये नहीं बैठता।"

अपना अनुभव

श्रीमहाराजजी के विषय में ऐसा तो कई बार अनुभव हुआ कि मैं जब कभी दुःखी होकर दिल्ली से आपके पास जाता तो ज्यों ही आपका दर्शन करता और आप 'बेटा' कहकर पुकारते कि मेरा सारा दुःख दूर हो जाता, मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाता। पुत्र को जैसे माता-पिता का सहारा होता है, उन्हें पाकर वह निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार वे मेरे माता-पिता और सर्वस्व थे। उनके 'बेटा' सम्बोधन में ही न जाने कितना प्रेम का जादू भरा था कि उससे सारी चिन्तायें दूर होकर मन सुखी हो जाता था। इस प्रकार सोलह-सत्रह वर्ष तक आपके सम्पर्क का दुर्लभ सुख प्राप्त हुआ। इससे दिल्ली में प्रेमियों की एक गोष्ठी-सी पैदा हो गयी। उसमें सभी के हृदयों पर आपने एक ऐसी छाप लगा दी, जो इस जीवन में कभी भूली नहीं जा सकती।

अपनी लौकिक लीला के अन्तिम वर्ष में आप बसन्तपञ्चमी के अवसर पर श्रीहरिबाबाजी और माँ श्रीआनन्दमयीजी के साथ पंजाब जाते हुए दिल्ली पधारे थे। तब दिल्ली वालों की प्रार्थना से लौटते समय भी आप दर्शन देते हुए वृन्दावन गये थे। उस समय

आपका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था। अतः हम लोग वृन्दावन भी गये वहाँ से बुधवार को आपकी आज्ञा लेकर दिल्ली लौट आये। वह बुधवार का दिन ऐसा अबुध-विछोहा निकला कि उसने फिर आपकी मधुर मुस्कान के दर्शन नहीं होने दिये। वे हमें अनाथ करके चले गये।

उनके देहावसान के चार दिन पश्चात् मैंने स्वप्न में देखा कि श्री महाराजजी श्वेत वस्त्र धारण किये एक ब्रह्मचारी के साथ खड़े हैं। मैंने पूछा, महराजजी ! आप का शरीर तो शान्त हो गया था, यह मैं क्या देख रहा हूँ ?" वे बोले, "बेटा ! मैं कहाँ गया हूँ ? मैं तो तेरे सामने खड़ा हूँ।" मैं चरण स्पर्श करने के लिये बढ़ा। किन्तु स्पर्श कर भी न पाया कि वे अन्तर्धान हो गये। मैं मन मसोस कर रह गया।

प्रायः दो वर्ष पूर्व की बात है। मुझे नौकरी से अलग किये जाने की सम्भावना थी। इस आशंका से मैं बहुत दुःखी था और घबरारहा था। मेरा धैर्य छूटा जाता था। मैं सत्य कहता हूँ उन्हीं दिनों स्वप्न में श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। बे बोले, तू बावला है, तेरी चिन्ता तो मुझे है।" फिर भी मेरा हृदय शान्त न हुआ। आखिर एक दिन मुझे डिसमिस हो जाने का हुक्म मिल गया। मैं बहुत रोया और रात्रि को रोते-रोते ही सो गया। स्वप्न में बाबा बोले, "बेटा ! तू घर में क्यों पड़ा है,सुन्दरकाण्ड का पाठ करके सीधा नौकरा पर चला जा।" दूसरे दिन प्रातःकाल ही दफ्तर से एक आदमी आया और बोला कि तुम्हें ड्यूटी पर बुलाया है। बस मैं पूर्ववत् अपने काम पर जाने लगा। यह कृपा उन्होंने किस प्रकार की—इसे जानना मेरी शक्ति से बाहर है, इसे तो वे ही जानें।

यह तो उनकी लौकिक कृपा की बात है। परमार्थ में भी उनकी ऐसी कृपा थी कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। उन्हीं की कृपा से इस ओर मेरी प्रवृत्ति हुई और प्रभु में विश्वास हुआ। उनसे नेत्र मिलाते ही मेरी सारी शंकायें निवृत्त हो जाती थीं। एक बार उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि रामायण में सुन्दरकाण्ड सुन्दर है। जो इसका पाठ करता है उसकी रक्षा हनुमानजी को करनी पड़ती है। बस, उसी दिन से मैंने सुन्दरकाण्ड का पाठ आरम्भ कर दिया, जो अब तक चालू है।

श्रीमहाराजजी में अनन्त गुण थे। उनका किसी से भी राग या द्वेष नहीं था। उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा। वे सर्वथा सत्य और मधुर भाषण करते थे तथा सभी को प्रसन्न रखते थे। स्वयं तो वे प्रसन्नता की मूर्ति ही थे। उनकी आज्ञा का अनुसरण करने से भगवत्पथ में प्रत्यक्ष सहायता मिलती दिखायी देती थी।

इस प्रकार उन्होंने सर्वदा हमारी लौकिक और पारमार्थिक जीवन-में सहायता की और आजभी हमें अपने सिरपर उनका वह वरद हस्त दिखायी देता है।



श्री गौरीशंकर जी खन्ना, दिल्ली

प्रथम दर्शन

सन् १९३१ में श्रीमहाराजजी दिल्ली के कुदसिया घाट पर पधारे थे। उस समय शहर की श्रद्धालु जनता नित्यप्रति उनके दर्शन और सत्संग के लिये जाती थी। एक दिन पं० ज्योतिप्रसादजी मुझसे बोले, "उड़िया बाबा नामके एक प्रसिद्ध महात्मा आये हैं, वे सवारी पर नहीं बैठते। तुम भी उनके दर्शन करो।" उनकी आज्ञानुसार मैं गया और श्रीमहाराजजी को प्रणाम करके बैठ गया। उस समय मेरे मन में यह भाव था कि जो संत होते हैं वे भगवान् के समान ही समदर्शी होते हैं। मैंने देखा कि महाराजजी के पास जो धनी-मानी लोग आते थे वे तो स्वयं ही यथायोग्य स्थान पर बैठ जाते थे, पर गरीब आदमी आगे आने में सकुचाते थे। एक गरीब आदमी आया। वह समीप आने में डरता था। उससे श्रीमहाराजजी बोले, "भैया! इधर आकर बैठ जाओ।" इस प्रकार उन्होंने उसका भय और संकोच दूर कर दिया। प्रथम दिन ही महाराजजी का ऐसा स्वभाव देखकर मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा का भाव उदय हुआ और मैं नित्तप्रति नियमानुसार उनके सत्संग में जाने लगा। एक दिन मैंने सुना कि घाट से एक मील दूर जगल में सूर्योदय से पूर्व श्रीमहाराजजी का सत्संग होता है, उसमें पर्याप्त संख्या में व्यापारी-वर्ग जाता है। तब मैं भी उस प्रातःकालीन सत्संग में जाने लगा। इससे पहले मैं महात्माओं से विशेष संसर्ग नहीं रखता था।

भय से त्राण

उन दिनों में मुसलमान गुण्डे कहीं किसा को अकेला-दुकेलादेखकर रुपये-पैसे छीन लिया करते थे। ऐसी घटनायें प्रायः सुनने में आती थीं। कहीं किसी रास्ते के आस-पास कोई गुण्डा रोने कराहने अथवा चीखने-चिल्लाने का ढोंग करता। यदि उसे बचाने या देखनेके उद्देश्य से कोई पहुँच जाता तो दो-तीन गुण्डे मिलकर उसके पास जो कुछ होता उसे छीन लेते। इस कारण मैं अंधेरे में अकेला जाते हुए डरता था। जाड़े की ऋतु थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। एक दिन की बात है मैं साढ़े चार बजे उठ कर चल पड़ा। काश्मीरी दरवाजे को पार करते ही किसी के कराहने की आवाज सुनायीदी। मैं डरा। यदि पीछे मुड़कर जाता हूँ तो स्वयं लुटने का डर था, और यदि दौड़कर आगे जाता हूँ तो मुझे डरा जान कर गुन्डे दौड़कर न पकड़ लें—यह डर था तथापि मैं तेज चाल से चलने लगा। हृदय भयभीत था। मैं मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा कि महाराज ! मैं भयभीत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। सच्चे सत तो भगवान् के समान ही अन्तर्यामी होते हैं।

बस, एक मोड़ पर पहुंचते ही श्रीमहाराजजी हाथ मैं कमन्डलु लिये मेरे पास आ पहुंचे। उस समय उनके पास कोई दूसरा नहीं था। उन्हें देखते ही मैंने साष्टाँग प्रणाम किया और वे बोले, "अरे बेटा ! यदि तुझे इतना डर लगता है तो तू इतना सवेरे क्यों आता है अब मेरा भय दूर हो गया। मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया और मैं श्रीमहाराजजीके साथ ही सत्सङ्ग-स्थल पर पहुँच गया। इसके आठ दिन बाद फिर ऐसी ही घटना हुई। उस समय श्रीमहाराजजी झाड़ी से निकल आये और मुझसे बोले, "भैया ! मैंने तुझसे कहा

था न, कि इतना सबेरे क्यों आता है? प्रकाश होने पर आया कर।"

इन दो घटनाओं से मुझे यह निश्चय हो गया कि श्रीमहाराजजी उच्चकोटि के महात्मा हैं और अन्तर्यामी हैं। वे मेरे भयभीत हृदय की पुकार को तुरन्त सुन लेते या जान लेते और ठीक मौके पर पहुँच जाते थे। इससे मेरा हृदय उनकी ओर आकर्षित हुआ और उनमें मेरी श्रद्धा हो गयी।

मन्त्रोपदेश और दोषनिरसन

एक दिन मैंने श्रीमहाराजजी से अपने लिये उपदेश देने कीप्रार्थना की तब उन्होंने मुझे ध्यान की विधि और जपने के लिये मन्त्र बताकर कहा—

'कपट गांठ मन में नहीं, सबसों सरल सुभाव।
नारायण ता भगत की, लगी किनारे नाव॥'

श्रीमहाराजजी की कृपा और सत्संगति से मेरे जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। मेरे दोषों का सुधार हुआ और भजन में मेरी प्रवृत्ति हुई। उन सब बातों को कैसे वर्णन किया जाय। मुझे सिगरेट पीने की बुरी आदत पड़ गयी थी। पन्द्रह-बीस सिगरेट रोज फूँक देता था। जब मैंने सुना कि श्रीमहाराजजी तम्बाकू-बीड़ी आदि पीने वालों से घृणा करते हैं तो मेरे मन में यह भाव आया कि जब तक तुम सिगरेट पीना नहीं छोड़ोगे तब तक वे तुम पर प्रसन्न नहीं होंगे। अतः मैंने सदा के लिये सिगरेट पीना छोड़ दिया। एक दिन स्वप्न में पीने चला परन्तु प्रतिज्ञा याद आ गयी और सिगरेट फेंक दी।

स्वप्न द्वारा स्वास्थ्यदान

(१)

सन् १९३६ में मैं सख्त बीमार पड़ा। इन्फ्लुऐंजा हो गया। बुखार बहुत तेज था और सब जोड़ों में दर्द होता था। उपवास करने के कारण शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। इस बीमारी में मैं एक महीने तक पड़ा रहा। एक दिन मैं चार बजे चारपाई पर पड़ा था। उस समय जरा नेत्र झपके और कछ तन्द्रा सी आ गयी। उस अवस्था में मैंने देखा कि श्रीधूमीमलजी वृन्दावन में उस स्थान पर खड़े हैं जहां सड़क पर से श्रीबांकेबिहारीजी को गली गयी है। वहाँ श्रीमहाराजजी कुटी की ओर से भक्तों सहित आ रहे हैं। समीप आते ही श्रीधूमीमल जी ने उनसे कहा, "महाराजजी ! जल्दी प्रसाद दीजिये, गौरीशंकर की तबियत बहुत खराब है, वह बड़े कष्ट में हैं।" महाराजजी बोले, "अरे ! मैं अभी प्रसाद लाता हूँ।" इतना कह कर वे श्रीबाँकेबिहारी जी के मन्दिर में चले गये और लौट कर एक कचरी का टुकड़ा प्रसाद स्वरूप लाये। वह उन्होंने धूमीमल को दे दिया और उन्होंने मुझे देकर कहा, "यह प्रसाद श्रीमहाराजजी ने दिया है, इसे अभी खालो।" मैंने तुरन्त खा लिया। इसके पश्चात् मेरी तन्द्रा टूट गयी। उसी समय से मेरी अवस्था में परिवर्तन होने लगा। मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और दस-पाँच दिन में मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराजजी की कृपा से वह संकट टला।

(२)

सन् १९४६ के अक्टूबर मासमें तो मेरा नया जन्मही हुआ समझिये। २६ अगस्त को पिताजी का देहान्त हुआ। उस समय मुझे ज्वर था। उसी हालत में उनका क्रिया-कर्म तथा स्नानादि करने के कारण मेरा

ज्वर बिगड़ गया। अँतड़ियों में गर्मी बैठ जानेसे रक्तातिसार हो गया। बढ़ते-बढ़ते एक डेढ़ महीनेमें यह हालत हुई कि बीस-पच्चीस खूनीदस्त नित्यप्रति होने लगे। चिकित्सासे कोई लाभ न हुआ। हालत दिन-पर दिन बिगड़ती गयी। अब करबट बदलने की भी शक्ति न रही। रक्त-स्राव जारी हो गया। गुदा द्वारा स्वयं ही रक्त बहता रहता था। एक दिन सायकाल में शौच की हाजत हुई। जब मुझे उठाकर बैठाया गया तो शौच के स्थान पर खून की एक लुगदी निकली, जिसे प्राणान्त समय का मल टूटना भी कह सकते हैं। फिर सारा शरीर पसीने में डूब गया। बिस्तर पर लिटाने पर शरीर ठण्डा पड़ने लगा। हाथ-पैर स्थिर पड़ गये उन्हें मैं इच्छानुसार हिला भी नहीं सकता था। निर्बलता अधिक बढ़ जाने के कारण नेत्र बन्द हो गये। इसी हालात में मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। उन्होंने अपने कटिवस्त्रसे मेरे सीनेपर एक झटका सा दिया। इससे मैं चौकन्ना हो गया। इस समय मुझे ठीक-ठीक चेत था। श्रीमहाराजजी बोले, "अब मैं आ गया हूँ, तू कोई चिन्ता न कर, ठीक हो जायगा। मैं कहाँ⋯⋯? अर्थात् कहाँ बैठूँ ?" इस वाक्य में उन्होंने 'मैं कहाँ' इतना तो स्पष्ट कहा और बैठूँ" का संकेत किया, जिसे मैं समझ गया। मैंने हाथ और नेत्रों के संकेत से कहा, "आले में।"श्रीमहाराजजी के जिस चित्रपट स्वरूप की मैं पूजा करता था वह आले में रखा था। मेरा अभिप्राय था वहीं विराजमान हो जाइये।

बस, उसी क्षण शरीर में चेतना जाग्रत हुई और मैं सचेष्ट हो गया। केवल पन्द्रह मिनट में ही शक्ति और स्फूर्ति मालूम हुई। दूसरे दिन से डाक्टरी इलाज शुरू हुआ। उससे भी लाभ होने लगा। धीरे-धीरे प्रायः दो महीने में मैं ठीक हो गया। इस बीमारी से

उठना मेरी दृष्टि में तो मेरा नया जन्म ही है, जो एक मात्र श्रीमहाराजजी का ही प्रसाद था।

(३)

इसी प्रकार सन् १६५२ के शीतकाल में भी पन्द्रह दिनों तक ऐसा हुआ कि सो कर उठने के पश्चात् मेरे शरीर का ऊपरी भाग सुन्न पड़ जाता था। उससे कोई चेष्टा नहीं हो पाती थी। काफी देर तक इधर-उधर करवट बदलने के पश्चात् उठने की शक्ति आती थी। मैं डरा कि इसी प्रकार यदि लकवा मार गया तो सारा जीवन ही बेकार हो जायगा। इस रोग की निवृत्ति के लिये मैं अपनी ही औषधि ले रहा था। एक दिन स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और बोले कि जो औषधि तू ले रहा है उसके साथ मकरध्वज मिलाकर सेवन किया कर। प्रातःकाल उठकर मैंने वैसा ही प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। बस, तीन दिन के औषधि सेवन से ही वह रोग जाता रहा।

इन घटनाओं से श्रीमहाराजजी की औषधि सम्बन्धी ज्ञान, उनकी योगशक्ति और कृपालुता आदि का परिचय मिलता है। इनसे यह पता लगता है कि वे किस प्रकार अपने शरणागतों की रक्षा करते थे। हम दीनजनों पर उनकी कितनी कृपा थी और अब भी है—इसका मैं बर्णन नहीं कर सकता।



पं० श्री देशराजजी, मौजपुर (एटा)

प्रथम दर्शन

श्री १००८ स्वामी श्री उड़िया बाबाजी महाराज नवम्बर सन् १६१६ ई० में पूर्व की ओर से श्री गंगाजी के किनारे बिचरते ब्रह्मचारी श्रीमोतीरामजी का नाम सुनकर पधारे थे। ब्रह्मचारी जी की गढ़ी रामपुर (एटा) में एक पाठशाला थी। बाबा गाँव के पूर्व की ओर एक बाग में पीपल वृक्ष के नीचे गाँवकी ओर पीठ और उत्तर की ओर मुख किये खड़े दिखायी दिये। पतिराम नामका विद्यार्थी उस बाग की ओर गया था। उसने स्वामीजी को देखकर हम सब विद्यार्थियों से आकर कहा कि पीपल के नीचे कोई महात्मा खड़े हैं। हम सब श्री-ब्रह्मचारीजी की आज्ञा से गये और स्वामीजी से मन्दिर पधारने के लिये प्रार्थना की। आप बोले, "मैंने तो सुना था कि जहाँ ब्रह्मचारीजी पढ़ाते हैं वह मन्दिर बस्ती से बाहर है, परन्तु यह तो बस्ती में है। मैं नहीं जाऊँगा।" उस समय स्वामीजी एकान्तप्रिय थे। बस्ती में कभी नहीं ठहरते थे। हम लोगों ने कहा, "स्वामीजी! मन्दिर तो बस्ती से बाहर पश्चिम की ओर है।"

तब आप मन्दिर पर आये। श्रीमहाराजजी ने आपको आसन दिया। हम सब विद्यार्थीगण भी आपको चारों ओर से घेरकर बैठ गये। उस समय आपके पास एक तूँबी, एक गेरुआ चादर और लँगोटी के सिवा और कुछ नहीं था। आयु भी अधिक-से-अधिक

पच्चीस वर्ष की होगी।* वहां कई महात्माओं का आपस में विवाद चला कि इतनी छोटी आयु में संन्यास नहीं लेना चाहिये। परन्तु आपने शास्त्रों के अनेकों प्रमाण देकर उनका समाधान कर दिया। उस समय हम लोग सारस्वतचन्द्रिका पढ़ते थे। श्री स्वामी जी वहां दो वर्ष तक विराजे और हमें सारस्वत चन्द्रिका तथा अन्यान्य कईग्रन्थ पढ़ाते रहे।

आप की दिनचर्या

आप रात्रि को बारह बजे तक पढ़ाते रहते थे। जब आप आज्ञा देते तब हम सो जाते और आप आसन लगाकर बैठ जाते। जब दो-तीन बजे हमारी आँख खुलती तो हम आपको बैठे पाते। तब हम आपको पकड़कर लिटा देते। आप कहते, "नहीं, नहीं रे।" फिर लेट जाते और थोड़ी ही देर बाद फिर बैठे दिखायी देते। हम लोग दिन-रात में किसी भी समय लेटते नहीं देखते थे। सम्भवत: आसन पर ही आप थोड़ा विश्राम कर लेते थे।

गंगाजी वहाँ से ढाई-तीन मील दूर थीं। आप प्रात: काल चार बजे वहाँ से चल देते थे और सूर्योदय तक स्नान करके लौट आते थे। उस समय पाले से आपके हाथ-पैर नीले पड़ जाते थे। वहाँ से लौटते ही आप पुन: आसन लगाकर बैठ जाते थे। हम लोग जब आपको गोदी में उठाकर आगके पास बिठाते तोआप कहते, "नहीं, नहीं धूपमें ठीक हो जायेंगे।" इस प्रकार अग्नि की कोई अपेक्षा न रखकर आप हम लोगों को पढ़ाने लगते थे।

---

*पण्डितजी ने अनुमान से पच्चीस वर्ष की आयु लिखी है। परन्तु हमें श्रीमहाराज जी द्वारा ही उनका जो जीवन वृत्त विदित हुआ था। उसके अनुसार उनकी आयु पैंतीस वर्ष के लगभग थी। —सम्पादक

जब मैं रोटी बनाकर आपको परोसता तो आप हल्की-हल्की केवल दो रोटियाँ और थोड़ी-सी दाल ही परसवाते। पहले खाली रोटी खा लेते और दाल बच जाती तो कहते, "अरे देशराज! दाल तो रह गयी।" मैं कहता, "एक रोटी और ले लीजिये।" तब आप दाल पी जाते। जल पीने की आपको याद नहीं रहती थी। जब पढ़ाते-पढ़ाते कण्ठ सूखने लगता तब कहते, "अरे! कण्ठ सूख रहा है, क्या करूँ?" तब मैं जल लाकर आपकी तूँबी में भर देता। आपजल पीकर हँसते और कहते, "इसी से कण्ठ काम नहीं देता था।" ऐसा बहुत बार होता था।

मार्ग में जब आप श्लोक बोलते हुए चलते तो हम लोग समझते कि स्वामी जी धीरे-धीरे चल रहे हैं। परन्तु जब हम भागते-भागते थक जाते तब आप ही को पकड़कर खड़े हो जाते और पाँव सहलाने लगते थे। हम आपसे जौ और गेहूँ के खेतों की पहचान कराते तो आप बड़े आश्चर्य से कहते, "अरे! हमारे देश में तो ये होते ही नहीं हैं, वहाँ तो केवल धान होता है।" हम लोग कहते, "स्वामी जी! अपने देश की बोली सुनाओ।" तब आप हँसते-हँसते अपने देश की बोली सुनाते और खूब हँसते-हँसाते। ऐसे ही खिलवाड़ में समय बीत जाता था।

आपकी सिद्धीया

उस समय श्रीस्वामीजी में हमें अनेकों सिद्धियाँ दिखायी देती थीं। जब हम लोगों पर कोई दुःख आता तो हम स्वामीजी से कहते। आप कहते, 'तुमने मेरा नाम क्यों नहीं लिया?" जब हम ऐसे अवसरों पर आप का नाम लेते तो न जाने कैसे वह दुःख दूर हो जाता था।

एक बार श्रीब्रह्मचारी जी ने बिल्ववृक्ष के नीचे बैठ कर सवा लक्ष गायत्री का अनुष्ठान किया। जब अनुष्ठान की समाप्ति का समय समीप आया तो विचार करने लगे कि पैसा तो पास नहीं हैं, कैसे अनुष्ठान पूर्ण होगा ? उसी समय आप हाथ में तूंबी लिए चादर ओढ़े आकर हमारे पास खड़े हो गये और कहने लगे, "आज गुरु-चेला क्या विचार कर रहे हो ?" मैंने तुरन्त उठ कर चरणस्पर्श किया और आसन दिया। ब्रह्मचारीजी ने कहा, महाराज ! गायत्री-अनुष्ठान समाप्त होने वाला है और सामग्री है नहीं।" आप बोले, "इतनी सामग्री इकट्ठी होगी कि तुम उसे समाप्त नहीं कर सकोगे।" ब्रह्मचारीजी ने कहा, "महाराज ! यज्ञ के समय तो आप विराजेगे ही। देखा जायगा कितनी सामग्री आती है।" आप बोले, "नहीं, उस समय मैं दूर चला जाऊँगा। यहां नहीं रहूँगा।"

न जाने उनकी क्या विचित्र महिमा थी, जब यज्ञ का समय आया तो सात मन हवन-सामग्री और पचास मन से अधिक भण्डारे-का समान हो गया। यज्ञ के बाद इतना समान बचा कि सात दिन-तक समाप्त नहीं हुआ। ब्रह्मचारीजी कहते थे, " यह सब उड़िया बाबाजी का प्रभाव है।" उस समय आप कहीं दूर चले गये थे। न तो आप ही वहाँ थे और न किसी धनी-मानी सेठ-साहूकार से ही कहा गया था। केवल आस-पास के गांवों से ही इतना समान इकट्ठा हो गया था।

इनके सिवा उनमें और अनेकों भी सिद्धियाँ देखी गयी थीं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय ?

पं० श्रीदातारामजी, वृन्दावन

(१)

उन दिनों मेरी आयु कुल सात-आठ वर्ष की ही थी। मैं अपनी ननिहाल मौजमपुर (एटा) में रहता था। बाबा मेरे गाँव से छः मील दूर शहवाजपुर में रहते थे। मेरे बड़े भाई श्रीदेशराजजी व्याकरण पढ़ने के लिए बाबा के पास जाया करते थे। उन दिनों वे विद्यार्थियों को सारस्वतचन्द्रिका पढ़ा दिया करते थे। एक दिन भाई साहब के साथ मैं भी बाबा के पास गया। भाई साहब ने उनकी भेंट के लिए बढ़िया बेर खरीद लिए थे। जिस समय हम पहुँचे बाबा व्याकरण पढ़ा रहे थे। भाई साहब ने बेर सामने रखे। बाबा ने पढ़ाना बन्द कर दिया और बेर बाँटने लगे। कदाचित् उन्होंने समझ लिया कि अब विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ने की अपेक्षा बेर खाना अधिक प्रिय होगा। वे बेर बांटते समय हँसते जाते थे। उनके हँसमुख स्वभाव ने मेरे मन को आकर्षित कर लिया।

भाई साहब की प्रार्थना से बाबा कभी-कभी हमारे गाँव भी आते थे। जिन दिनों वे आते सारे गाँव में सबेरे चार बजे चक्कियाँ बन्द रहती थी, क्योंकि उस समय बाबा ध्यान करते थे। दिन चढ़ आने पर जब वे गंगास्नान के लिए जाते तब चक्कियाँ चलने लगती थीं। मेरे गाँव में संस्कृत कोई नहीं जानता था। बाबा ने भाईसाहबसे कह कर वहाँ संस्कृत का प्रचार कराया।

इसके पश्चात् बहुत वर्षों तक मुझे बाबा के दर्शन नहीं मिले। कारण यह था कि फिर बाबा मोहनपुर आदि अन्य स्थानों में रहने लगे और मैं पढ़ने के लिए काशी चला गया।

(२)

प्राय: बीस वर्ष बाद वृन्दावन की दतियावाली कुञ्ज में मैंनेबाबा का दर्शन किया। अब मेरी आयु तीस वर्ष के लगभग हो गयी थी। इतने दीर्घकाल में मनुष्य की आकृति में पर्याप्त अन्तर हो जाता है। परन्तु बाबा ने मुझे देखते ही पहचान लिया और मेरे बिना बतलाये ही कहने लगे, "अब तो यह शास्त्री हो गया है।" उनकी यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

इसके बाद बाबा के वृन्दावनस्थ आश्रम पर शतचण्डी का पाठ हुआ उसमें मैं भी सम्मिलित हुआ था। तब से बाबा की कृपा से मुझे श्रीवृन्दावन धाम में निवास करने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके सिवा उनके कृपा प्रसाद से मुझे और भी अनेकों लाभ हुए हैं।

(३)

अन्तिम समय में पूज्य बाबा कुटिया में विराजमान थे। एक रात्रि को मैंने स्वप्न देखा—कुटिया का फाटक वृन्दावन शहर को और है। फाटक पर मास्टर राधाबल्लभ हैं। एकाएक शहर से भीड़ घुस आयी है और उसने आश्रम में लूट-पाट मचा दी है। मैं सोचने लगा अकेला राधाबल्लभ क्या कर लेगा। इतने में कुछ आदमी आये और मेरा सामान भी लूट ले गये। थोड़ी देरमें आश्रम के एक भाग में मेरा सब समान रखा मिल गया। उसी समय एक अपरिचित व्यक्ति आया और मुझे दो अँगुलिया दिखाकर बोला, "यहाँ दो मृत्यु होंगी।" इसके बाद स्वप्न भंग हो गया। इस स्वप्न का कुछ भी रहस्य मेरी समझ में नहीं आया। परन्तु इसके पन्द्रह-बीस दिन बाद ही पूज्य बाबाका देहान्त हुआ और उसी समय उस हत्यारे का भी।*

पं० श्रीकृष्णगोपालजी वृन्दावन

प्रथम दर्शन

सन् १९३५ ई० की बात है, पूज्य बाबा श्री वृन्दावन पधारे थे और शाहजहाँपुर वालों के बगीचे में ठहरे थे। मैंने अभी तक आपके दर्शन नहीं किये थे। एक दिन आपने लोगों से कहा, "यहाँ एक कृष्णगोपाल पण्डित रहता है, उससे मिलना है।" भक्तों ने वहाँ से ले जाकर आपको लक्ष्मीरानी की कुञ्ज में ठहरा दिया। उसके दूसरे दिन आप अकेले शाहजहाँपुर वाले मन्दिर में आये और मेरे सामने आकर खड़े हो गये। इस प्रकार यह अकारण अपने-आप आपने कृपा की।

मैं उस समय आँखे बन्द करके ध्यान कर रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई मेरा ध्यान खींच रहा है। मैंने आँखे खोल दीं और सामने ही साधुवेश में दिव्यमूर्त्ति बाबा के दर्शन हुए। मैं तुरन्त खड़ा हो गया और बाबा से आसन पर विराजने के लिये निवेदन किया। मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई; आप आसन पर विराज गये। अब तक मैंने आपका कभी दर्शन तो किया नही था, इसलिये मैं पहचान बिल्कुल न सका। तथापि मैंने पूछा, "कहिये महाराज ! आपने कैसे कृपा की ?

बाबा—मैं कृष्णगोपाल से मिलने आया हूँ।

मैं—अभी थोड़ी देर में मैं उसे बुला दूँगा।

बाबा—अच्छा बुलाओ।

मैं—आप थोड़ी देर विराजिये। मैं बुला दूँगा।

बाबा के दर्शन और बातचीत से, न जाने क्यों, मुझे ऐसा सुख प्रतीत हो रहा था कि आपका वहाँ से जाना मुझे सुहाता नहीं था। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। मैं बुलाता किसे ? स्वयं ही सामने बैठा था। इतने में भगवद्दास आदि आप के कुछ शिष्य आगये और आप को प्रणाम कर के बैठ गये। एक दरवार-सा लग गया।

बाबा फिर बोले, "मुझे जाना है देर हो रही है, उसे बुला दो। अब मुझे हँसी आ गयी। भगवद्दास जी ने हाथ जोड़ कर पूछा, "महाराजजी ! किसे बुलवा रहे हैं ?" आपने कहा, "मैं इसे कृष्णगोपाल को बुलाने को कह रहा हूँ। यह बुलाता नहीं, देर हो रही है।" भगवद्दासजी ने कहा, "महाराजजी ! कृष्णगोपाल तो ये ही हैं।" तब आप कहने लगे, "भैया ! तू ने मुझे खूब छकाया।" और मेरे सिर पर अपना हाथ रखा। फिर भगबद्दास-जी ने ही मुझे आपका परिचय दिया कि ये श्री उड़िया बाबा महा-राज हैं।

अब मैंने बाबा के दोनों चरण पकड़ लिये। मुझे बड़ा सुख मिला। बाबा कहने लगे, "अरे ! तुम तो राधाबल्लभीय हो, मैं संन्यासी हूँ। मेरे चरण क्यों छूते हो ? मैंने उत्तर दिया, "महा-राज ! मेरा हित धर्म है। आप ने मेरे ऊपर इतना बड़ा हित किया कि हित के नाते ही कृपापूर्वक स्वयं पधार कर दर्शन दिये। मैं तो अपने हित नाते ही अपने हितदेवके चरण पकड़े बैठा हूँ।" बाबा बोले "मैं भी जिसमे हित करता हूँ उसे छोड़ता नहीं हूँ।"

इसके बाद आपने कमण्डु उठाया और चल दिये। साथ ही भक्तगण भी चले गये।

बाबा को भिक्षा

दूसरे दिन प्रातःकाल ही मैं लक्ष्मी रानी कुञ्ज में पहुंचा। वहाँ

देखा कि बाबा समाधिस्थ की भाँति बैठे हैं और विभिन्न भावों की उपासना करने वाले भक्तजन अपने-अपने भावानुसार बाबा की पूजा कर रहे हैं। मेरे मन में प्रेरणा हुई कि बाबा से भिक्षा के लिए प्रार्थना करूँ। परन्तु साहस न हुआ। दूसरे दिन फिर विचार हुआ और सोचा कि संत तो दयालु होते हैं, उनसे डरने की क्या बात है ? मैं श्रीबाँकेबिहारीजी के मन्दिर में दर्शन करने गया तो देखा कि बाबा भी वहाँ दर्शनार्थ पधारे हैं। मैंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि बाबा ! कल हमारे ठाकुरजी आप को प्रसाद पाने के लिए बुला रहे हैं। आपने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। दुसरे दिन प्रायः दस बजे आप सत्तर-अस्सी भक्तों सहित आ विराजे। मैंने तो केवल दस-पन्द्रह मूर्त्तियों के लिए सामग्री तैयार कराकर श्रीठाकुरजी को भोग लगाया था। बाबा ने आते ही कहा, ' कितना सामान है ? सब मेरे सामने ले आओ।" मेंने सब सामान लाकर सामने रख दिया। आप बोले, "तुम्हारी स्त्री कहाँ है ? बच्चे कहाँ है ?" सबके लिए मिलने-जुलने वालों के लिए भी पत्तल परसबा कर अलग रख दी। फिर सब भक्तोंको पत्तलें डलवायीं और स्वयं परोसने लगे। सब से कह दिया, "भैया ! खूब खाओ, कोई रह न जाय।" बस, उतने ही प्रसाद में आपने सबको डटकर प्रसाद पवा दिया ।

मेरे लिए उपदेश

दूसरे वर्ष भी बाबा वृन्दावन में पधारे थे। परन्तु मैं काशमीर और श्रीबद्रीनारायण का यात्रा को चला गया था। आपने मेरे छोटे भाई से पत्र लिखवाया कि कहाँ भटकता है ? तेरे इष्टदेव तो वृन्दावन में हैं। वह पत्र मुझे श्रीबद्रीनारायण के मार्ग में मिला। अतः मैं शीघ्र दर्शन कर के लौट आया।

बाबा ने व्यक्तिगत रूप से मुझसे कहा था कि तुम कभी अपने चित्त को मत गिराना तुम्हारा काम नहीं रुकेगा। किसी से मांगना भी मत और नौकरी भी मत करना।

हिततत्त्व निरूपण

एक दिन की बात है, बाबा एकान्त में बैठे हुए थे। कहने लगे कि मुझे हिततत्त्व बड़ा प्रिय है। देखो, तुम्हारे हितरस के आचार्य जी का मन्तव्य कितना विशाल है? जिस परमतत्त्व का वेद, उपनिषद्, पुराण और सभी शास्त्र साक्षात् रूप से वर्णन नहीं कर पाये और इसी से वह तत्त्व सबके लिये अगोचर रहा, वेद भी जिसका 'रसो वै सः' कहकर केवल संकेत ही करते हैं, वही श्रुति संवेद्य परमतत्त्व इनके ठाकुर की राधाबल्लभलालजी हैं। यही हिततत्त्व नित्य, सत्य सच्चिदानन्दघन है और यही स्वरूप प्रेम, सौंदर्य, माधुर्य, रस, सुख आनन्द और भाव की परावधि है। उस हित या प्रेम के सम्बन्ध से ही सब अवतार हुआ करते हैं, जैसे कि अग्नि से चिनगारियाँ। वास्तव में इसी से हिततत्त्व को सबका मूल बताया है। रसस्वरूप श्रीराधाबल्लभ लाल को सृष्टि, पालन और सहार की व्यवस्था से कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें तो इनकी स्मृति भी नहीं होती। वे तो अपने ही नित्य रस में निमग्न रहते हैं। श्रीराधारस इन्हीं का निजस्वरूप है। ये इस निज रस में निमग्न हो निरन्तर आनन्द बिहार करते हैं। ये राधा-कृष्ण दो नहीं, एक ही हित रस के दो स्वरूप हैं। यदि नहीं, इनका तो नित्य-विहार-परिकर ही एक मात्र हितस्वरूप है। इन (राधा-बल्लभीयों) के वाणी ग्रन्थों में प्रेमामृतरस का प्रवाह बहता है। इनके यहां अनेक रूपों में केवल प्रेमतत्त्व ही विद्यमान है। हित ही ब्रह्म है और प्रेम ही परमात्मा है। यह व्यापक प्रेम ही नित्य विहार के लिये

हरिवंशस्वरूप चार रूपों में अभिव्यक्त है—युगलस्वरूप, श्रीवृन्दावन और सखीपरिकर। इनके सिद्धान्त में यावन्मात्र स्थावर-जंगम प्रेम की ही स्थूल अभिव्यक्ति है। यहाँ प्रेम ही चराचर रूप जड़ता-संचारी भाव को प्राप्त हो गया है। कृष्णगोपाल ! तूने जो यह दोहा सुनाया था उसमें इस चराचर व्यापी प्रेम का अच्छा प्रदर्शन किया है—

'सबै चित्र हित मित्र के, जहँ लों धामी धाम।
काहि तजों काकों भजों, नाम गिरा हित सार।"

इस दोहे में बताया गया है कि जहां तक धामी और धाम हैं सब उस हित मित्र के ही चित्र हैं। इनका नित्यविहार प्रेमकेलि के सिवा और कुछ थोड़े ही है। नित्यविहार या निकुञ्जरस जो कुछ भी है इस हित-प्रेम रस का ही विलास है, क्योंकि प्रेमरस एक अनिवर्चनीय तत्व है। यह एक होकर भी अनेक है और सबसे परे भी है। लोग इसे जानना चाहते हैं, परन्तु जान नहीं पाते, क्योंकि इस रस ने सभी के चित्त को हरण कर लिया है। देखो, भगवान् कृष्ण ने सर्वज्ञ होकर भी किस प्रकार लीला की। उस दिव्य प्रेम के परिचय में कोई क्या कहेगा।

फिर बाबा के साथ यह प्रश्नोत्तर होने लगा—

प्रश्न—ब्रह्म तो अव्यक्त है। उस अव्यक्त को व्यक्त कैसे किया जाय ?

उत्तर—इसी लिये श्रुति अतर्क्य, अचिन्त्य, अवाङ मानसगोचर आदि विशेषण देकर उस तत्व को लक्षित कराती है, उसका साक्षात् निरूपण नहीं करती।

प्रश्न—यह सब ठीक है। पर उसे जानना तो होगा ही, चाहे जैसे और चाहे जितने रूप में भी वह जाना जाय, क्योंकि उसे जाने

बिना जीव को अपने स्वरूप का बोध भी तो नहीं हो सकता।

उत्तर—इसीलिये तो शास्त्रों एवं शास्त्रियों ने उस एक ही अव्यक्त तत्व के अनेक नाम और रूप प्रगट किये हैं। उनमें मुख्य दो हैं—एक निर्गुण निराकार और दूसरा सगुण साकार। जो पहला है वास्तव में वही दूसरा भी है। जो लाग इन दोनों में तारतम्यबुद्धि करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो निर्गुण निराकर भगवान् हैं वे ही भक्तों और प्रेमियों के लिये सर्वदा सगुण साकार भी हैं। वे ही विष्णु होकर प्रेमियों के लिये सर्वदा सगुण साकार भी हैं। वे ही विष्णु होकर विश्व का पालन करते हैं, नारायण होकर निरीक्षण करते हैं, साकेत-बासी राम बनकर दास्यसुख प्रदान करते हैं और श्रीकृष्ण-रूप से अनेकों लीलायें करते हैं। सम्पूर्ण रूपों में एक श्रीकृष्ण ही तो क्रीड़ा कर रहे हैं, जो निर्गुण सगुण और निर्गुण-सगुण से परे भी हैं, सबके लिये अलक्ष्य हैं और जिनकी गति योगियों के लिये भी अगम्य है। गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते समय वे स्पष्ट कहते हैं कि इस सम्पूर्ण जगत् को मैंने अपने एक अंश में धारण कर रखा है। उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि मेरे बिना ब्रह्म की भी कोई सत्ता नहीं है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

अर्थात् मैं कृष्ण ही अविनाशी परब्रह्म, नित्य धर्म और एक-रस आनन्द का भी एकमात्र आश्रय हूँ। श्रीमद्भागवत् भी कहती है—'एते चांशकला: पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' अर्थात् भगवान् के अन्य अवतार तो परमात्मा के अंश और कलामात्र ही हैं, परन्तु श्रीकृष्ण तो स्वयं परिपूर्णतम भगवान् हैं। ये आदि पुरुष और श्रीनारायण के भी कारण है। महाविष्णु और नारायण भी उनकी

कलामात्र हैं। अतः श्रीकृष्ण ही तत्त्वस्वरूप और सब अवतारों के मूल हैं। श्रुति 'रसो वै सः' अर्थात् वह परमतत्त्व रसस्वरूप ही है— ऐसा कहकर इन्हीं को लक्षित कराती है। श्रीवृन्दावन में यह रस ही मूर्तिमान् शृङ्गार कहा जाता है। रसोपासक साधक का ध्येयरूप वह शृङ्गार माधुर्यनिधान श्रीकृष्ण-विग्रह ही हैं। भगवत्तत्त्व वास्तवमें एक ही है, किन्तु लीला एवं क्रियाओं के अनुसार उसके नामरूपात्मक अनेक भेद हैं।

इस प्रकार पूज्य बाबा के साथ हिततत्व सम्बन्धी जो परम रस-मयी गूढ़ वार्ता हुई वह रसिकजनों के आस्वादन के लिये यहाँ उद्धृत कर दी है।



गोस्वामी श्रीहरिचरणजी पुजारी, वृन्दावन

आज से प्राय: बीस वर्ष पूर्व मैंने अपने मित्र श्रीनाथ के साथ पहली बार श्रीकृष्णाश्रम में महाराजजी के दर्शन किये थे। इस प्रथम दर्शन में मेरे चित्त पर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मैं उस समय मथुरा की एक पाठशालामें पढ़ता था। दैवयोग से इसके पश्चात् मुझे कई बार आश्रम में आने और आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने जितनी बार श्रीमहाराजजी के दर्शन किये उतना ही उत्तरोत्तर मैं उनकी ओर खिचता गया। जिस दिन उन्होंने मेरा परिचय पूछा उस दिन तो ऐसा लगा मानो वे मेरे हो गये और मैं उनका हो गया।

अध्ययन समाप्त होने पर मैं कुछ दिनों खाली रहा। फिर मेरे परिचित एक महात्मा ने कानपुर वाली मांजी के यहां मुझे श्रीठाकुरजी की पूजा पर नियुक्त कर दिया। उस समय मांजी का श्रीमहाराजजी से विशेष सम्पर्क नहीं था। जब उनका सम्पर्क बढ़ा और श्रीमहाराजजी के चरणों में उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया तो मेरे लिये यह निगम हो गया कि मैं नित्यप्रति एक चाँदी के लोटे में आपके लिये दूध ले जाया करूँ। यह सेवा प्राप्त होने पर मेरे चित्त की जो दशा हुई उसका वाणी द्वारा वर्णन करना सम्भव नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो मुझे साक्षात् श्रीभगवान् की सेवा प्राप्त हो गयी और मेरा मानव-जीवन सफल हो गया। मैं श्रीमहाराजजी के आश्रम की ओर जो एक-एक कदम उठाता था उससे मुझे बड़ा ही अपूर्व आनन्द अनुभव होता था। उसके परिणाम स्वरूप मुझे किसी फल की

इच्छा नहीं थी। वे मेरे इष्टदेव के तुल्य थे। उनकी सेवा प्राप्त हो जाना ही मेरे लिये सबसे बड़ा सौभाग्य था। अँधेरी रात हो अथवा वर्षा या ओले पड़ रहे हों, तथापि किसी भी प्रकार की बाधा मेरे उत्साह को ढीला नहीं कर पाती थी। जब मैं जाता तो श्रीमहाराजजी बड़े प्रेम से मुझे बिठाते, प्रसाद देते, घण्टों मुझसे बात करते रहते और मैं उनकी चरणसेवा करता। मैं अपने इस सौभाग्य पर इठलाता था। और अपनेको श्रीमहाराजजीका पुत्र समझता था। उनका जैसा अद्भुत वात्सल्य था उसकी समानता कहीं ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकती। उनमें स्वार्थ की गन्ध भी नहीं थी। केवल देना-ही-देना था, त्याग-ही-त्याग था। इस दूषित जगत् में ऐसा प्रेम कहाँ ? मैं जैसे ही आश्रम-में पैर रखता मुझे प्रतीत होता कि मैं जगत् से बाहर किसी दिव्य लोक में आ गया हूँ, जहाँ पाप-ताप का कहीं लेश भी नहीं है।

वैष्णव सम्प्रदाय और गोस्वामियों में खान-पान का बहुत विचार होता है। पहले मैं भी श्रीमहाराजजी के दिए प्रसाद को खाने में सङ्कोच करता था। श्रीमहाराजजी मेरे पीछे माँजी से कहते, "तेरा पुजारी बहुत अच्छा है।" माँजी कहतीं, "सब थारो ही छै।" एक दिन आपने कहा, "तेरा पुजारी मेरा प्रसाद नहीं खाता।" जिस प्रकार माता का हृदय अपने बच्चे को कुछ खिलाये बिना ठंडा नहीं होता उसी प्रकार श्रीमहाराजजी भी जब तक अपने प्यारे बच्चों को सुन्दर-सुन्दर प्रसाद खिलाकर तृप्त नहीं कर लेते थे तब तक उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। माँजी ने कहा, "महाराजजी! यह गुसाईं है, इनमें खान-पान का बहुत विचार होता है।" फिर मुझसे कहा, "अरे! महाराज के प्रसाद में के हर्जो छं, यह तो बड़े भाग्य से प्राप्त होवे छै।" मेरी तो पहिले से इच्छा थी ही, जरा सा सहारा मिलते ही

महाराजजी के दिव्य कर कमलों द्वारा प्राप्त हुए प्रसाद का आनन्द रोम-रोम से लेने लगा। उससे केवल रसना का परितोष और शरीर-का पोषण ही नहीं होता था, प्रत्युत हृदय और मन भी किसी दिव्य एवं अलौकिक प्रदेश में पहुँच जाते थे। सचमुच यह आत्मा का पुष्टि कारक भोजन था।

एक दिन मैं दूध लेकर गया। उस दिन सुखरामजी ने कहा, "श्रीमहाराजजी का स्वास्थ्य ठाक नहीं है, आज दूध रखकर चले जाओ।" मैं दूध रखकर चला आया। थोड़ी देर पश्चात् आपने सुख-रामजी से पूछा, "पुजारी दूध लेकर नहीं आया?" सुखराम जी बोले, "महाराज! वह दूध रखकर चला गया है।" आप सुखराम पर बहुत बिगड़े और कहा, "तूने जाने क्यों दिया? मेरे पास क्यों नहीं भेजा?" श्री महाराजजी का भाव था कि वह इतने परिश्रम से दूध लेकर आया और यहां से बिना सम्मान-सत्कार पाये चला गया— यह ठीक नहीं। उनका प्रेम निभाने का स्वभाव कहां तक वर्णन करें? जो दण्डवत् मात्र कर देता उसके हाथ मानो वे विक जाते। परन्तु इतने प्रेम परवश होने पर भी थे सर्वदा स्वतन्त्र। मैं जो दूध लेकर जाता था उसे भी वे स्वयं कभी नहीं पीते थे। तुरन्त पल्टू बाबा अथवा किसी दूसरे को बुलाकर दे देते थे।

अपने महानिर्वाण के दो-तीन दिन पूर्व उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में पकड़ लिया। कैसी रेशम के समान कोमल उन हाथों की गदोली थी? उस स्पर्श को मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। वे मुझे नये बन रहे मन्दिर के कमरों में, गुफाओं में और छत पर ले गये और बोले, "जानता है, यह तेरी माँजी का शंकरजी का मन्दिर है और यह बहूजी का श्रीराधा-कृष्ण का मन्दिर है।" मुझसे पूछा, "तुझे कोई कष्ट

तो नहीं है ? खूब प्रसन्न रहा कर।" मैंने कहा, "श्रीमहाराजजी ! दस आदमियों के अधीन रहना पड़ता है, सबकी अलग-अलग प्रकृति है। मन्दिर की प्रतिष्ठा होने पर मुझे यहाँ की सेवा के लिये रखकर अपने पास बुला लीजिये, तो बड़ा अच्छा हो।" आप बोले, "अरे ! मेरे सामने तो इसकी प्रतिष्ठा होगी नहीं।" मैंने कहा, "क्यों महाराजजी ! आपके सामने इसकी प्रतिष्ठा क्यों नहीं होगी ?" आपने झट प्रसंग बदल दिया और कहा, "देख, तेरी माँजी तो आती ही नहीं, कब तक आने को लिखा है ?" मैंने कहा, ' महाराजजी ! दस दिन में आने की बात है।" आप बोले, "दस दिन बाद आने से क्या होता है ? मुझसे मुलाकात तो होगी नहीं। मुझे सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसा श्रीमहाराजजी क्यों कह रहे हैं ? फिर सोचा, सम्भव है, कहीं बाहर जाने वाले हों। इसके पश्चात् आपने पुनः पूछा, "तेरी प्रीति शंकरजी में है या श्री राधाकृष्ण में ?" मैंने कहा, "महाराजजी! मेरे तो दोनों ही इष्ट हैं, मैं तो दोनों की ही उपासना करता हूँ।" फिर बोले, "मुझसे शिवपुराण ले जाना और उसका पाठ करना।" बस, आपने मुझे शिवपुराण देकर विदा कर दिया। इस घटना के चार पांच दिन पश्चात् आपने अपनी लौकिकी लीला समाप्त कर दी। अब मुझे आपकी उन बातों का रहस्य समझ पड़ा।

मन्दिर बनकर तैयार हुआ। प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त आया। कितने ही सुयोग्य व्यक्ति पुजारी का पद पाने के लिये उत्सुक थे। मुझे तो स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि मुझे यह सेवा मिलेगी। प्रतिष्ठा के अन्तिम समय पर मैं रमण रेती से यहाँ आया। उस समय माँ जी के मुख से यह सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि अभिषेक की आरती थाने करनी छै। मेरी आंखों में आँसू छलछला आये और

श्रीमहाराजजी की मूर्त्ति सामने खड़ी हो गयी। इसके पश्चात् कई पुजारी रखे गये, परन्तु माँजी किसी से संतुष्ट न हुई। अन्त में मुझे ही यह सेवा प्राप्त हुई। अब मुझे इहलौकिक और पारलौकिक किसी भी बात की चिन्ता नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराजजी ने मेरा हाथ पकड़ा हुआ है। वे सर्व समर्थ हैं, जिसमें मेरा हित होगा वही करेंगे। जब मैं ध्यान करने बैठता हूँ तो जिस प्रकार श्रीशंकरजी और श्रीराधाकृष्ण मेरे ध्यान में आते हैं उसी प्रकार श्रीमहाराजजी आ जाते हैं। मुझे तो उनसे उनका कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।



पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी शास्त्री, सुनामई

प्रथम दर्शन

मैं खुरजा में सेठ गौरीशंकरजी की पाठशाला में पढ़ाता था। एक दिन सायं काल में एन०आर० संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल पं० चण्डीप्रसाद के साथ बाहर ठहलने के लिए गया। मार्ग में सुना कि उड़िया बाबा नाम के एक महात्मा आये हैं, जो बड़े ही त्यागी हैं। मैं उक्त पण्डितजी के साथ उनके दर्शनार्थ गया। स्वामीजी एक चटाई पर सिद्धासन पर बैठे थे। पास में मिट्टी का एक पात्र रखा हुआ था। कुछ बातचीत प्रारम्भ ही हुई थीं कि गौरीशंकरजी आ गये और स्वामीजी से घर पर भिक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगे। स्वामी जी ने कहा, "मैं इसके लिए वचनबद्ध नहीं हूँ। भिक्षा के लिए जाते समय जहाँ भिक्षा मिल जायगी वहाँ कर लूँगा।" सेठ जी ने बग्घी भेजने के लिए कहा तो मना कर दिया और बोले, "साधुओं को इस प्रकार भिक्षा के लिए प्रलोभित नहीं करना चाहिए।" मैं उनके इस व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ और उनके त्याग की दृढ़ता देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन जहाँ संस्कृत के विद्यार्थी भोजन बना रहे थे वहाँ जाकर भिक्षा करली और कहीं अन्यत्र विचरने के लिए चले गये।

पुत्रदान

कुछ दिनों के पश्चात् मैं वहाँ से अलीगढ़ के धर्मसमाज कालेज में पढ़ाने आ गया। एक दिन श्रीस्वामीजो वहाँ आये और छात्रों से

पूछने लगे, "तुम्हारे गुरूजी कहाँ हैं?" छात्रों ने बतलाया कि उन्होंने शहर में एक मकान ले रखा है, वहीं गये हैं। आप कुछ देर बैठकर वहाँ से चले गये। जब मैं वहाँ पहुंचा तो छात्रों द्वारा मालूम हुआ कि श्रीस्वामीजी आये थे और आपको याद करते थे। सुन कर मुझे बहुत दुःख हुआ और मैं अपने को धिक्कारने लगा कि स्वामीजी यहाँ आये और मैं उनके दर्शन न कर सका। अब क्या करूं? इतने में श्रीमहाराजजी के प्रेमी पं० गोपीरामजी से मालूम हुआ कि अभी बाबा धनीपुर के बाग में, जो अलीगढ़ से दो कोस की दूरी परहै, ठहरे हैं। में प्रातःकाल ही वहां पहुंच गया। पं० शिवरामजीने बताया कि स्वामीजी तो मानो तुम्हारी ही प्रतीक्षा में बड़ी देर से टहल रहे हैं, जल्दी मिल लो। मैं जल्दीसे दौड़ कर गया और स्वामीजीके चरण स्पर्श किये।

"अच्छा, पण्डितजी! तुम आ गये" यह कहते हुए आप चल दिये। मानो मुझे किसी एकान्त स्थान को ले जा रहे हों। मैं तो ऐसा चाहता ही था। कुछ दूर चल कर सड़क के किनारे बैठ गये। मैंने अपना दुपट्टा बिछाना चाहा, परन्तु मना कर दिया। फिर छात्रों की संख्या और प्रबन्ध आदि के विषय में पूछा। इस प्रकार कुछ देर बातचीत हो लेने पर मेरे बिना पूछे ही आप बोले, "कोई पुत्र है?" मैंने कहा, 'नहीं' तो कहने लगे, 'एक पुत्र तो होना चाहिए।' ऐसा दो-तीन बार कहा। मैंने इसे बाबा का आशीर्वाद समझा और ध्यान में रख लिया। घर लौटने पर गृहणी से भी कहा। उसके ठीक एक वर्ष पश्चात् मेरे एक लड़का हुआ। वह अभी तीन-चार महीनेका ही था कि स्वामीजी पुनः अलीगढ़ पधारे। मैं बौहरे के बगीचे में दर्शनार्थ गया और चरणस्पर्श करते ही आप बोले, "पण्डितजी! बच्चा

अच्छा है ?" मैं 'हाँ' कहकर बैठ गया और सोचने लगा कि स्वामी जी से बच्चा होने की बात किसने कह दी ? अभी तो वह तीन-चार महीने का ही हुआ है। और इस बीच में मेरा मिलना भी नहीं हुआ। इत्यादि।

इसके तीन-चार वर्ष बाद श्रीस्वामीजी मानिक चौक में आये। वहां मेरी लड़की लड़के को लेकर गयी। लड़के के चरणस्पर्श करने पर आप बोले, "क्यों भाई ? पण्डितजी अच्छे हैं ? कहाँ गये हैं ?" गोपीलाल ने पूछा कि आपने इस बच्चे को कैसे पहचाना, तो बोले, "इसके चरण छूने के तरीके से मैंने जान लिया कि यह पण्डितजी का लड़का है।"

मेरी शिथिलता और पुत्रशोक

अब लड़का चौदह वर्ष का हो चुका था। मैं एक बार महाराज-जी के दर्शनार्थ बाँध पर गया। आप एक वृक्ष के पास खड़े थे। मुझे चरणस्पर्श करते देखकर कहने लगे, "अरे ! पण्डित आलसी हो गया।" इसका और कोई तात्पर्य तो मैं समझ नहीं सका, केवल यह समझकर सन्तोष कर लिया कि पहले मैं गायत्री का जाप करता था वह अब छोड़ दिया हैं, इसी से स्वामीजी ने ऐसा कहा है।

इसके छः महीने बाद लड़के का देहान्त हो गया। उस दुःखित अवस्था में मैंने कर्णवास में जाकर स्वामीजी का दर्शन किया। मुझे शोकाकुल देखकर आप बोले, "पण्डितजी ! तुमको पुत्र का बड़ा शोक है।" यह वाक्य आपने दो बार कहा। मैं बोला महाराज ! ऐसा तो मुझसे बहुतों ने कहा है। अब मुझे पुनः शोक न हो—ऐसा कोई उपाय हो तो बतलाइये।" यह सुनकर आप कुछ देर चुप रहे। फिर बोले, "कठिन है।" मैंने आग्रहपूर्वक कहा, कितना ही कठिन

हो, मैं अवश्य करूँगा। आप परीक्षा कर लीजिये।" तब आपने मुझे वृन्दावन आने की आज्ञा दी।

साधन और शान्ति

कुछ दिनों बाद मैं वृन्दावन पहुँचा। महाराजजी ने मुझे गुफा में ले जाकर सिद्धान्त बतलाया और आज्ञा दी कि तीन महीने तक इसका अभ्यास करो। जब तीन घण्टे का आसन सिद्ध हो जाय तब फिर आना। मैं लौट आया और पूरे तीन घण्टे का आसन प्राप्त करके फिर पहुँचा। अबकी बार श्रीमहाराजजी ने मेरी पसली में अँगुली से परीक्षा करके मुझे प्राणायाम बतलाया और तीन महीने बाद पुनः आने को कहा। इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने से मुझे खुश्की बढ़ गयी और हाथ सूजे हुए से प्रतीत होने लगे। मैं फिर स्वामीजी के पास पहुँचा। अबकी बार आपने उसकी औषधि बतलायी और आश्वासन प्रदान करते हुए केवल कुम्भक का अभ्यास करने की आज्ञा दी। अभ्यास करते-करते जब दस मिनट से ऊँचा कुम्भक हो गया तो भी मुझे शान्ति के दर्शन न हुए। तब तक श्रीमहाराजजी ने अपनी ऐहिक लीला संवरण करली। इस घटना से मैं दुःख से व्याकुल हो गया। अब मैं कहां जाऊँ? एक दिन जब मैं बहुत व्याकुल हो रहा था। मुझे स्वप्न में महाराज के दर्शन हुए। आपने आज्ञा की कि शरीर से पृथकता का अनुभव करते हुए अभ्यास करो। इससे शान्ति प्राप्त होगी। मैंने इस आज्ञा का पालन किया और उससे मुझे शान्ति एवं प्रसन्नता प्राप्त हुई।

पं० श्रीभगवद्दासजी मेहता, (आगरा)

प्रथम दर्शन

पं० श्रीशिवदयालुजी कभी-कभी हमारे गाँव की ओर आया करते थे। वे स्कूलों में प्रायः ब्रह्मचर्य पर भाषण किया करते थे। इससे उनके साथ मेरा परिचय हो गया। बचपन से ही सन्त-महात्माओं में मेरी प्रीति सदा से रही है। बाग में वैष्णव संत प्रायः आया ही करते थे। पं० शिवदयालुजी कभी-कभी कहा करते थे कि मैं तुम्हें एक ऐसे महात्मा के दर्शन कराऊँगा जैसा तुमने कभी न देखा होगा। उनके इन वाक्यों से मेरे मन में श्रीमहाराजजी के दर्शनों की उत्कण्ठा जागृत हुई।

जाड़े की ऋतु थी। पं० शिवदयालु के साथ गजाधरसिंह और मैं श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट गये। परन्तु वे हमारे पहुँचने से पूर्व ही दबतरा चले गये थे। अतः हम लोग बिहारीलाल को साथ ले वहां से दबतरा चले गये। वहां एक आम के बगीचे में आम्र वृक्ष के नीचे मूर्तिमान् शान्तरस के समान मैंने श्रीमहाराजजी के दर्शन किये। वे समाधिस्थ योगिराज के समान निश्चल आसन से विराजमान थे। भाषण बहुत कम करते थे। किसी ने कोई प्रश्न किया तो संक्षेप में सारगर्भित उत्तर देकर मौन हो जाते थे। मेरे सामने ही किसी विभाग के एक अफसर ने आपसे कुछ प्रश्न किया। उसका उत्तर श्रीमहाराजजी ने थोड़े ही में उनके घरकी अप्रकट बातें बताते हुए इस ढंग से दिया कि वे चकित रह गये और मेरे चित्त पर भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

जिस समय वहाँ पहुँचकर हम लोगों ने श्रीमहाराजजी को साष्टांग प्रणाम किया उसी समय मुझे देखकर वे बोले, "यह लड़का कौन है ?" पं० शिवदयालु ने उत्तर दिया, "श्री भगवन् ! यह वही लड़का है जिसके यहां मैं जाया करता हूँ।" तब श्रीमहाराजजी बोले, इसको पहले क्यों नहीं मिलाया ?" रात्रि को शयन के समय मैंने प्रार्थना की, "महाराजजी ! कभी हमारे यहाँ पधारने की कृपा करें।' तब आप बोले, "अरे ! मुझे तो वह स्थान बहुत अच्छा लगता है मैं वहां अवश्य चलूँगा।" मुझे उस समय ऐसा भान हुआ मानो वहीं से आप उस स्थान को देख रहे हैं, जो सर्वथा सत्य ही था। दूसरे दिन जब आप दबतरा से नरवर को चले तो मैंने देखा कि सैकड़ों स्त्री-पुरुष रोते हुए आपके साथ चल रहे हैं- लौटाने पर भी कोई लौटना नहीं चाहता इस दृश्य का मेरे चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

दबतरा में ही मुझे श्रीमहाराजजी ने आज्ञा दी कि तुम समर्थ गुरु रामदासजी का दासबोध अवश्य पढ़ना। पर पता भूल जाने के कारण मैं उसे न मँगा सका। ठीक एक वर्ष पश्चात् जब मैंने हाथरस में आपके दर्शन किये तो मुझसे यह पूछे बिना ही कि तुमने दास बोध मंगाया या नहीं आप निश्चयात्मक शब्दों में बोले, "अरे ! तुमने दास-बोध नहीं देखा ?" मैंने कहा, "महाराजजी ! मैं उसका पता भूल गया।" बोले, 'अरे ! उसका पता क्या है—चित्रशाला प्रेस, पूना।" मैंने वहीं से पत्र लिखा और पुस्तक आ गयी। उसका स्वाध्याय करने से मेरे जीवन की अनेक ग्रन्थियाँ खुल गयीं।

इसके कुछ वर्ष पीछे की बात है, मेरे यहाँ वर्षा नहीं हुई, दुर्भिक्ष पड़ गया। आर्थिक संकट के कारण मेरा चित्त चिन्तित रहता था। एक दिन मैंने दासबोध उठाया और स्वाभाविक ही उसे खोला। जो

सामने आया उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—'जो भविष्य में आने वाली विपत्ति को याद करके दुःखी होता है, वह भी एक मूर्ख है। उसका भगवान् में विश्वास नहीं है।' इस प्रसङ्ग को पढ़कर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मेरी चिन्ता जाती रही और संकट के दिन निश्चिन्त अवस्था में बीत गये।

सेहता में

दुर्दैव से मेरे पिताजी का पहले कुछ ऐसे साधकों से सम्पर्क होगया था जिनके कारण साधुओं के प्रति उनकी अश्रद्धा हो गयी था। इसके अतिरिक्त उन्हें तम्बाकू का अत्यन्त व्यसन था। दालान में तीन-चार हुक्के सदैव टँगे रहते थे। ब्राह्मणों का अलग, ठाकुरोंका अलग, अहीरों का अलग और अपना अलग। प्रतिदिन सब मिलाकर प्रायः एक सेर तम्बाकू का खर्च था। उनका दालान क्या था मानो तम्बाकू का अड्डा था। इधर श्रीमहाराजजी तम्बाकू पीने वालों से इतनी घृणा करते थे कि उनसे अपने चरण भी स्पर्श नहीं कराते थे। रात्रि के समय अन्धकार में भी यदि कोई तम्बाकू पीने वाला आ जाता तो वे कह देते, "अरे कौन तम्बाकू पीने वाला आ गया, मेरा जी घबराता है।" श्रीमहाराजजी को मैं अपने यहाँ लाने के लिए अत्यन्त लालायित था, परन्तु पिताजी की दशा देखकर डरता था।

आखिर दिस० सन् १९२५ को दवतरा वाली प्रार्थना के अनुसार सन् १९२७ ई० में आप मेरे यहाँ सेहता पधारे। आपके आगमन से मुझे जो हर्ष हुआ उसका क्या वर्णन करूँ? विचित्र बात तो यह हुई कि मेरे पिताजी भी, जो सन्तों में बहुत अश्रद्धा करने लगे थे, आपसे बड़ा प्रेम करने लगे। उनका तम्बाकू का गढ़ भी टूट गया। पिताजी की आयु इस समय प्रायः ६५ वर्ष की थी। किन्तु श्रीमहाराज

जी के दर्शन, भाषण और सत्संग का उन पर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि इस अत्यन्त वृद्धावस्था में भी उन्होंने तम्बाकू को ऐसा त्यागा कि बाद में यदि उनके पास बैठकर कोई तम्बाकू पीने लगता तो वे यह कहकर उसे हटा देते कि मुझे इसकी गन्ध नहीं सुहाती। इस घटना से मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु के वचन याद आते हैं कि जिसके दर्शन और भाषण मात्र से दुर्गुण छूट जायँ वह उत्तम भगवद्-भक्त है।

इन्हीं दिनों मास्टर चिरञ्जीलाल भी अपनी मास्टरमण्डली के साथ आये। पहले ये आर्यसमाजी थे, सनातन धर्म से इनका कट्टर विरोध था। किन्तु श्रीमहाराज जी ने प्रथम मिलन में ही उन पर ऐसी कृपा की कि वे सदा के लिये आपके ही हो गये और उसके परिणाम-स्वरूप आज हम उन्हें सन्त रूप में देखते हैं।

सेहता में श्रीमहाराज जी ने रामायण मण्डल और संकीर्तन मण्डल की स्थापना की। सब बालकों को नित्यप्रति रामायण का पाठ तथा संकीर्तन करने की आज्ञा दी। विशेष व्यक्तियों को गीतापाठ भी बतलाया। इससे सत्संगादि में हम लोगों की अच्छी रुचि बढ़ी। उन दिनों लड़ने-लड़ाने में विशेष रुचि लेने के कारण हम लोग घी-दूध का सेवन अधिक करते थे। पाव-डेढ़पाव घी और सेर-डेढ़सेर दूध नित्य के भोजन में रहता था। श्रीमहाराजजी ने यह घी-दूध का सेवन कम करा दिया। यहाँ की संकीर्तनमण्डली कर्णवास-रामघाट आदि स्थानों में भी, जहां-कहीं उत्सव होता था, जाती थी। एक बाल-मण्डली की भी स्थापना की गयी, जिसमें डालचन्द और बंगाली आदि बालक थे।

एक बार श्री महाराजजी ने हमसे श्रीरामायणजी के एक-सौ आठ

पाठों का नियम कराया और आज्ञा दी कि जिसकी जिस वस्तु में सबसे अधिक रुचि हो एक वर्ष के लिए वह उसी वस्तुको छोड़ दे। उन दिनों हमें मीठा अधिक प्रिय था। अतः एक वर्ष के लिए मीठा खाना छुड़वा दिया। इसके सिवा गद्दे पर सोना और रजाई ओढ़ना भी छुड़वाया।

सेहता में दूसरी बार

दूसरी बार सन् १९३१ के चैत्र मास में श्री महाराजजी सेहता पधारे और यहां प्रथम बार रामनवमी का उत्सव मनाया गया। इससे पूर्व एक पण्डित जी के साथ रामायण के विषय में कुछ विवाद हुआ करता था। पण्डितजी कहते थे कि रामायण एक उत्कृष्ट काव्य है और मेरा पक्ष था, रामायण मन्त्ररूप है। उसकी चौपाइयों का जप करके अनेकों भक्तों ने फल प्राप्त किये हैं, वह काव्य नहीं है। एक बार कुछ भावुक भक्तों के समक्ष यह विवाद हुआ। उन्होंने भी मेरे ही मत का समर्थन किया। इससे पण्डित जी कुछ संकुचित हो गये। जब श्री महाराज जी पधारे तो उन्होंने उनसे भी यही प्रश्न किया। उत्तर में श्री महाराजजी ने दोनों ही बातों का समर्थन किया। वे बोले, "साहित्यिकों के लिये रामायण एक उच्चकोटि का काव्य है और भक्तों के लिये वह मन्त्ररूप है।" पण्डितजी ने पूछा, "सच्ची बात क्या है?" महाराजजी ने कहा, "दोनों ही बात सच हैं।" तब पंडितजी ने हम दोनों के विवाद की बात स्पष्ट कह दी। उनके चले जाने पर श्रीमहाराज जी ने मुझ से एकान्त में जो वचन कहे वे स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। मेरे चित्त पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बोले, "तू भक्त बनता है और जीत चाहता है। भक्त का स्वभाव तो ऐसा होता है कि उसके पास जो कोई जिस अभिलाषा से आता है

उसकी वही कामना वह पूरी कर देता है। तुमसे पण्डित जी विवाद में जीत ही तो चाहते थे। उनकी इच्छा के विपरीत तुमने उन्हें जीतने की इच्छा क्यों की ? विवाद में जीतने पर तुन्हें अभिमान होगा और उन्हें दुःख। यह क्या भक्त का लक्षण है ?" मेरे हृदय ने स्वीकार किया कि श्रीमहाराज जी ने एक बहुत ऊँची बात कही है ।

इस द्वितीय आगमन में श्री महाराज जी ने नये बगीचे की नींव डाली। इस बाग को लगाने की आज्ञा आपने मुझे अनूपशहर में दी थी। मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु घर की स्थिति ऐसी नहीं थी। बाग लगाने के लिए पैसे की आवश्यकता थी और पैसा मेरे पास था नहीं। यह बात मैंने वहाँ प्यारेलाल जी से कही थी वे बोले, "जब महाराजजी ने आज्ञा दी है तो बाग लगा हुआ ही समझो, पैसे की चिन्ता छोड़ो।" हुआ भी ऐसा ही। घर आने पर मुझे अप्रत्याशित रूप से दो हजार रुपये प्राप्त हो गये। जिस कुयें का श्रीमहाराज जी ने मुहूर्त्त किया उसका जल अत्यन्त मीठा निकला। वह एक सप्ताह में ही तैयार हो गया और बाग के सब वृक्ष भी थोड़े ही दिनों में फल देने लगे ।

जिस दिन श्रीमहाराजजी जाने लगे पिताजी ने उन्हें आत्म-समर्पण किया और फिर हम तीनों भाइयों को भी उन्हें समर्पित कर दिया। हम सबके सिर पर हाथ फिरवाया और कहा, "महाराजजी ! अब मैं अधिक दिन नहीं जीऊँगा। ये सब बालक आपके हैं, आपको समर्पित हैं।" इसके दो महीने पश्चात् पिताजी का देहान्त हो गया। श्रीमहाराज जी के विदा होने के पश्चात् उन्होंने सांसारिक चर्चा एक-दम छोड़ दी और अन्त में श्रीमहाराजजी तथा भगवान् का चिन्तन करते हुए ही प्राण-परित्याग किया।

इस बार श्रीमहाराजजी ने लगातार पैंतालीस दिन तक मेरे ही घर भिक्षा की। यह उनकी अपार अनुकम्पा थी। सामान्यतः वे एक-दो दिन से अधिक किसी के घर भिक्षा नहीं करते थे। इस बार सेहता में लगातार डेढ़ मास तक सत्सङ्ग एवं कथा-कीर्तन का क्रम रहा। लोगों ने श्रीमहाराजजी के दर्शन और सम्भाषण का अनुपम लाभ उठाया और उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों नर-नारी भजन-ध्यानादि में प्रवृत्त हुए। अब जब वे जाने लगे तो विदाई का अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। विशारदजी आपको मिढ़ाकुर ले जा रहे थे, साथ में १५-२० साधु-सन्त और भक्तजन थे। उस समय ठीक वैसा ही दृश्य बन गया जैसा श्रीवृन्दावन से अक्रूर द्वारा श्याम और बलराम को मथुरा ले जाते समय बना था। अनेकों व्यक्ति रुदन कर रहे थे और अनेकों मूर्छित पड़े थे। सारा गाँव घरों को सूना छोड़कर आपके पीछे लग गया, किसी को घर लौटने की सुधि नहीं थी। गांव से एक मील तक सभी लोग रुदन करते आपके पीछे चले गये। यह दृश्य देखकर पथिक लोग स्तम्भित रह जाते। आखिर, सबको विलाप करता छोड़ कर आप मिढ़ाकुर चले गये।

लोग अपने-अपने घरों को लौटे। सबका हृदय सूना-सूना हो गया और चित्त व्याकुल। जैसे-तैसे रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल हम लोग मिढ़ाकुर पहुँचे। वहाँ श्रीमहाराजजी का पूजन किया और दिन भर ठहर कर सायंकाल को पुनः सेहता लौटे। इसके पश्चात् सन्१९३९ में तीसरी बार श्रीमहाराजजी सेहता पधारे थे। उस समय प्रायः एक मास तक आप वहाँ विराजे।

कुछ स्मरणीय प्रसंग

(१)

एक बार हम लोग बांध के उत्सव में गये। वहां श्रीमहाराजजी ने मुझे तथा गजाधरसिंह आदि कुछ साथियों को श्रीगंगाजी में खड़ा करके 'मङ्गलभवन अमङ्गलहारी द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी' इस सम्पुट के साथ श्रीरामचरितमानस के एक सौ आठ पाठ करने का संकल्प कराया। इस पाठके फलस्वरूप मुझे स्वप्न में श्रीहनुमानजी और श्री विश्वनाथजी के दर्शन हुए। इसके पश्चात् मेरी माताजी बीमार हो गयीं। तब श्रीमहाराज जी ने मुझे सूचना भेजी कि माता की सेवा सुश्रुषा खूब करना, परन्तु चिन्ता न करना। अब उसका शरीर नहीं रहेगा। ठीक वैसा ही हुआ। माताजी स्वर्ग सिधार गयीं। इस प्रकार की अनेक घटनाओं से मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीमहाराज जी को भविष्य की घटनाओं का ज्ञान हो जाता था।

(२)

एक बार श्रीमहाराज जी बुलन्दशहर से खुरजा जा रहे थे। अनेकों भक्त साथ थे, मैं भी था। रास्ते में नहर के किनारे बैठे थे। मैंने कुछ प्रश्न किये। आपने उनके उत्तर दिये और फिर बोले, "जो गुरु से प्रश्न करता है वह गुरु को जीव समझता है। भक्त को प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं। इष्टदेव स्वयं उसके हृदय में उत्तर देकर समाधान कर देते हैं। उसी समय मैंने निश्चय किया कि अब आगे मैं श्रीमहाराज जी से प्रश्न नहीं किया करूँगा। उसके बाद वे ऐसी लीला करते कि जब मेरे मन में कोई प्रश्न उठता और मैं उनके पास जाता, पर पूछता कुछ नहीं, तो उसी समय उपस्थित समाज में से कोई व्यक्ति मेरे मनके प्रश्नको ही पूछ बैठता और श्रीमहाराजजी

उसका उत्तर देकर मुझसे पूछते, "क्यों भगवद्दास ! ठीक है न ?" मेरे मन का समाधान हो जाता, अब उन्हें क्या उत्तर देता। उनकी योग शक्ति की महिमा समझकर मुसका देता और चकित हो जाता। ऐसी घटनाएँ दस-बीस बार नहीं सैकड़ों बार हुई है। ऐसी योगशक्ति अन्यत्र मिलनी कठिन ही है।

(३)

एक बार मुझे संग्रहिणी की बीमारी हुई। दवा बहुत की, परन्तु अच्छा न हो सका। उसके कारण कई महीने तक श्रीमहाराज जी के पास भी न जा सका। सोचता रहा—'अच्छा होने पर ही दर्शन करूँगा। रुग्णावस्था में वहां जाने से तो सेवा करने के स्थान में सेवा लेनी ही पड़ेगी।' अन्त में मेरे गांव के एक भक्त द्वारा श्रीमहाराज जी ने कहलाया, "वह दवा करके अच्छा होना चाहता है, दवा करके क्या आज तक कोई अच्छा हुआ है ?" इसे श्रीमहाराज जी की आज्ञा समझकर मैं उसी अवस्था में बृन्दावन पहुँचा। वहां मुझे भण्डार के निरीक्षण की सेवा मिली। श्रीमहाराज जी अपने हाथ से मुझे जो प्रसाद दे देते थे वही मैं पा लेता था। बस, तभी से धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गया।

(४)

अनूपशहर में श्रीमहाराज जी के एक प्रेमी भक्त थे। उनका अन्तिम समय समीप आया। श्रीमहाराज जी ने उनसे पूछा, "तुम्हारे मन में कोई संकल्प तो नहीं है?" भक्त ने कहा, "महाराज जी ! अमुक व्यक्ति के इतने रुपये मेरे ऊपर ऋण हैं, इसी बात का ख्याल है।' श्रीमहाराजजी ने उस ऋणदाता को वहीं बुलाया और बोले, "तू आज अपना ऋण मुझे दे दे। इसका भार मुझ पर है।" और फिर ऋण-

दाता से कहा, "तुम्हारे इतने रुपये का ऋण आज से मुझ पर है इसे मैं दूँगा।" इसके कुछ दिनों बाद उस भक्त का देहान्त हो गया। इस प्रकार स्वयं कष्ट उठाकर भी आप भक्तों का दुःख दूर कर देते थे।

(५)

पहले मैं मुकदमों में बहुत उलझा रहता था। श्री महाराज जी खुरजा में विराजमान थे। मैं उनके दर्शनार्थ गया। आप बोले, "भगवद्दास ! तुमने बहुत मुकदमे जीते हैं, दो एक हारा भी ? अब कब तक मुकदमे लड़ता रहेगा ? यह मानव जीवन दूसरों से लड़ते रहने के लिए ही थोड़े हैं ?" मैंने कहा, "महाराज जी ! मैं किसी से मुकदमा लड़ने की नीयत नहीं रखता। पर लोग लड़ा-भिड़ा देते हैं। गांव में एक पटवारी ऐसा है कि उसने घर-घर में फूट डाल रखी है। यदि वह बदल जाय तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाय।" तब आप बोले, "अरे ! वह तो बदल जायेगा।" फिर मैंने सोचा यदि श्रीमहाराज जी की ऐसी ही आज्ञा है तो आज से ही मुकदमेबाजी क्यों न छोड़ दी जाय। श्री महाराज जी की बात सच हुई। वह पटवारी मेरी अनुपस्थिति में ही बदल गया। तब से सामान्य बातों के सिवा मुकदमेबाजी की नौबत कभी नहीं आयी।

(६)

एक बार श्रीमहाराज जी बोले, "भगवद्दास ! मुझे खिलानै वाले बहुत तंग करते हैं। मैंने कहा, आपको आग्रह कराकर खाने की आदत पड़ गयी है। आप हरेक चीज को मना कर देते हैं। जो चीज अनुकूल हो, पसन्द हो उसे बता दिया करें तो खिलाने वाले जान जायँगे कि अमुक चीज अनुकूल है और अमुक चीज प्रतिकूल। फिर वे

आग्रह नहीं करेंगे।" तब आप बोले, "तुम विश्वास नहीं करोगे। मैं भगवान को साक्षी करके कहता हूँ कि मुझे किसी भी पदार्थ को खाने की रुचि नहीं होती। पहले साग खाने की रुचि अवश्य हुआ करती थी। तब मैंने भगवान् से प्रार्थना की और वह रुचि भी जाती रही।" तात्पर्य यह कि आपका खान-पान का व्यवहार परेच्छा से ही होता था।

लीला संवरण के बाद

सं० २००५ वि० की चैत्र कृष्णा १४ को श्रीमहाराज जी ने लीला संवरण की। उसके पांच वर्ष पीछे की बात है। बाग में जल की कमी रहती थी। इसीलिये कुँए में जल के लिए इञ्जिन लगाने का संकल्प हुआ। फाल्गुन सं० २०१० की शिवत्रयोदशी को इञ्जिन लगाने का कार्य पूरा हुआ ओर प्रथम जल निकला। मैंने उस जल को श्रीमहाराजजी के भाव से शिवजी पर चढ़ाया। उसी रात्रि को स्वप्न में श्रीमहाराज जी ने दर्शन दिया और बोले, "भगवद्दास ! अब तू क्या चाहता है ?" उस समय आप बड़े प्रसन्न थे और रोमाञ्चित हो रहे थे। उन्हें प्रसन्न देखकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई और रोमाञ्च हो आया। मैंने कहा, "भगवान् ! मैं तो केवल आपके श्रीचरणों का आश्रय चाहता हूँ। और किसी लौकिक वस्तु की मुझे इच्छा नहीं है।"

इससे भी पहले की एक घटना है। श्रीमहाराज जी को लीला-संवरण किये साढ़े तीन वर्ष बीत चुके थे। सन् १९५२ के आश्विन मास में मेरा लड़का प्रेमचन्द बीमार पड़ा। उसे तीन बीमारियाँ एक साथ घेरे हुए थीं—(१) हर समय बुखार बना रहता था, (२) दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर दस्त आते थे और (३) बार-बार मूर्छा

हो जाती थी। मैं डाक्टरी चिकित्सा करा रहा था, परन्तु उस पर दवा का कोई प्रभाव नहीं होता था। देखते-देखते दस-बारह दिन के भीतर प्रेमचन्द एक दम चारपाई से लग गया। शौचादि भी उसे चारपाई पर ही कराना पड़ता था। घरके सभी लोग अत्यन्त चिन्तित थे। होते-होते एक दिन हालत बहुत बिगड़ गयी। आधी रात तक सारा परिवार उसकी चारपाई को घेरे बैठा रहा। सबको यही आशंका थी कि प्रेमचन्द के लिए आज की रात निकलनी कठिन ही है।

जब हम एक बार भी श्रीभगवान् या किसी संत को आत्म-समर्पण कर देते हैं तो फिर यह आवश्यक नहीं होता कि उनसे प्रार्थना करने पर ही रक्षा हो। वे बिना प्रार्थना किये भी रक्षा करते ही हैं। और जब प्रार्थना करने पर भी रक्षा न हो तब उसे अपना कर्मफल भोग ही समझना चाहिए श्रीभगवान् या संत की कृपा पर अविश्वास नहीं करना चाहिए।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की वह काली रात्रि हमारे परिवार के लिए कालरात्रि बनी हुई थी। ऐसे विकट अवसर पर दयामय प्रभु ने स्वयं ही कृपा की। 'प्रणतारतिहर विरद सँभारा।' यह किस प्रकार सो सुनिये। रात्रि के चार बजे का समय था प्रेमचन्द को श्रीमहाराजजी ने स्वप्न में दर्शन दिया। वे आकर आपके सिरहाने खड़े हो गये और उसके सिर पर कर कमल फिराते और स्वाभाविक मधुर वाणी में बोले' "बेटा प्रेम ! तू घबड़ा गया। देख घबड़ा मत। दरवाजे पर मुखिया* वैद्य खड़ा है। इसका इलाज करा। उससे तू

*ये आगरे के प्रसिद्ध वैद्य हैं। कभी-कभी श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ आया करते थे।

अच्छा हो जायगा।" यह सुनकर प्रेमचन्द गद्‌गद् हो गया और उसे रोमाञ्च हो आया। उसने दरवाजे की ओर देखा तो उसे मुखियाजी खड़े दिखायी दिये। इतना कहकर श्रीमहाराजजी अन्तर्धान हो गये और प्रेमचन्द का ध्यान टूट गया। उसने स्वप्न का सारा वृत्तान्त मुझे सुनाया। प्रातःकाल होते ही मैंने एक आदमी आगरे भेजा और उनसे स्वप्न की बात सुनाकर तुरन्त पधार ने को प्रार्थना की।

मुखियाजी कुछ औषधियां लेकर तुरन्त आये ओर मुझसे पूछा आज किस रोग की दवा दूँ। मैंने कहा, "सबसे पहले मूर्छा रोकने की दवा कीजिये। इससे सब घबड़ाते हैं।" उन्होंने दवा दी और चौबीस घण्टे के अन्दर उसे मूर्छा आना बन्द हो गयी। दूसरे दिन मुझसे उसी प्रकार पूछकर उन्होंने दस्त बन्द करने की दवा दी ओर चौबीस घण्टेमें उसे दस्त आने बन्दहो गये। इसी प्रकार तीसरे दिन बुखारकी दवा दी गयी और केवल एक दिन में उसका ज्वर निःशेष हो गया। इस तरह तीन दिन में ही एक-एक दवा से क्रमशः उसके तीनों रोग निवृत्त हो गये। तीसरे दिन की रात को प्रातः चार बजे स्वप्न में श्रीमहाराजजी ने मुझे दर्शन दिये और कहा, "अरे भगवद्दास! आज मुझे यहाँ तीन दिन हो गये हैं, अब मैं जाता हूँ।" मैंने पूछा "महाराजजी! कहाँ जायेगे?" बोले, "मैं पुष्कर जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गये और मेरा स्वप्न भंग हो गया।

श्री महाराजजी की यह अपार अनुकम्पा और उनकी कृपामयी मूर्ति आज आंखों में आंसू लानें का ही काम करती है। जगत् मेंअनेकों सन्त-महात्मा हैं। वे सभी पूज्यनीय हैं। परअपने हृदयकी तो दशाऐसी

है कि कहीं भी जाने को मन नहीं होता और जाता हूँ तो मन नहीं लगता। लोग न जाने क्या सोचते होंगे, परन्तु अपने हृदय की तो बार-बार यही ध्वनि निकलती है।

"देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आंखतर आवत कोऊ।।
अस सुभाव कहुं सुनहुं न देखौं। केहि खगेश रघुपति सम लेखौं।।



पं० श्रीकृष्णवल्लभजीवैद्य (श्रीलल्लूजी), अनूपशहर

प्रथम दर्शन

सन् १९२४ की बात है। मुझे अभी श्रीमहाराजजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। वे कर्णवास में ज्वर और मुर्छा में ग्रस्त थे। उनके परमभक्त श्रीप्यारेलालजी यहाँ वैद्य मोतीदत्तजी को लिवाने के लिए आये। साथ ही उन्होंने मुझसे भी कहा कि आपको कल प्रातःकाल कर्णवास बाबा के पास चलना होगा। मैं पहले से बाबा का नाम तो सुना ही करता था। सोचा चलो, इसी निमित से उनका दर्शन भी हो जायगा। मैं दूसरे दिन प्यारेलालजीके साथ कर्णवास गया और बाबा के दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। प्यारेलाल ने मेरा परिचय दिया। बाबा ने केवल इतना कहा कि मुझे इनके खानदान का पता है और इनके पिताजी को मैंने देखा है। इसके पश्चात् मैंने बाबा की नाड़ी देखी। उस समय उन्हें ज्वर था। और मुर्छा का भी दौरा होता था। मैं औषधि अपने साथ नहीं ले गया था, अतः यह निश्चय हुआ कि कल प्रातःकाल कोई अनूपशहर जाकर मेरे यहाँ से औषधि लायेगा। दूसरे दिन आदमी आया और मैंने उसे औषधि दे दी। तीन-चार दिन बाद आप स्वस्थ हो गये। उसके पश्चात् मेरे चित्त का उनकी ओर ऐसा आकर्षण हो गया कि मैं हर महीने चाहे कैसी भी ऋतु हो, उनके दर्शनार्थ जाने लगा। एक बार श्रीमहाराजजी के पूछने पर मैंने बताया कि मेरे घरमें भगवतीकी उपासना हुआ करती है। तब उन्होंने कहा कि तुम भगवती की ही उपासना किया करो।

पूर्णेश्वर की स्थापना

मेरे यहाँ पूर्वजों का बनाया हुआ प्रायः ढाई सौ वर्ष का एक प्राचीन शिवमन्दिर था, जिसका शिवलिंग खण्डित हो गया था। यह मन्दिर सौ वर्ष के लगभग तो खण्डित अवस्था में ही पड़ा रहा। मेरे पूज्य बाबा ने इसका जीर्णोद्धार कराना चाहा। परन्तु इस संकल्प के पूर्ण होने से पहले ही वे परलोक सिधार गये। इसके पश्चात् पिता जी की इच्छा भी इसका जीर्णोद्धार कराने की रही, परन्तु वे भी यह कार्य न करा सके। अन्तिम अवस्था में हम सब भाइयों को पिताजी ने आदेश दिया कि इस मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए इतना रुपया है, यदि कमी पड़े तो तुम लोग और लगा देना। सन् १९३५ में बाबा से प्रार्थना की कि यदि आपके करकमलों द्वारा इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाय तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि इस कार्य में विघ्न बहुत आते हैं। बाबा ने स्वीकार कर लिया और उसका सारा भार अपने ऊपर ले लिया। उनकी आज्ञानुसार मुहूर्त्त भी निश्चित हो गया—वैशाख कृष्णा त्रयोदशी। किन्तु कार्य आरम्भ होने के एक दिन पहले ही मेरी चाची की मृत्यु का समाचार आ गया। बाबा ने कार्यारम्भ स्थगित कर दिया और कहा कि अब इसके लिए दूसरा मुहूर्त्त निश्चय किया जायगा। मैं कल रामघाट जाऊँगा। मैंने प्रार्थना की, "आप अवश्य जाइये, परन्तु इस मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य आपके ही सामने प्रारम्भ होगा।" बाबा बोले, "इस मन्दिर के जीर्णोद्धार में विघ्न आ ही जाते हैं। यदि इस बार विघ्न आया तो हमारी शङ्करजी से लड़ाई होगी और स्थान पर गदहे लोटेंगे।" इसके पश्चात् बाबा रामघाट चले गये।

लगभग एक वर्ष पश्चात् वैशाख कृष्णा ३ को पूज्य बाबा की

हो उपस्थिति में मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ हुआ। उसके पश्चात् बाबा तो अन्यत्र चले गये। प्रायः आठ महीने में मन्दिर तैयार हो गया। अब श्रीमहाराजजी के करकमलों द्वारा शिवलिंग की स्थापना का मुहूर्त्त फाल्गुन कृष्णा शिवरात्रि निश्ति् हुई। आपकी ही अनुमति से मथुरा से देवस्थापन-विधि के ज्ञाता दक्ष पण्डित बुलाये गये स्थापना का सम्पूर्ण कार्यभार मैंने श्रीमहाराजजी को ही सोंप दिया। आपने पं० सुबोधचन्द्रजी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया मैंने श्रीमहाराजजी को उज्ज्वल रेशमी वस्त्र धारण कराया, जिसे देख कर आप कह उठे, "आज तो मैं पण्डित हो गया हूँ।" प्राणप्रतिष्ठा के दिन मन्दिर वेदध्वनि से गूँज उठा। श्रीमहाराजजीके करकमलों द्वारा विधिपूर्वक लिंग की स्पाना हुई और उनके नामानुसार ये श्रीपूर्णेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीपूर्णेश्वर के निकट अन्य मूर्त्तियों की भी स्थापना हुई। उस समय शङ्करजी का सुन्दर श्रृङ्गार किया गया था। रुद्री पाठ तथा सहस्रधारा के जल से निरन्तर अभिषेक होता रहता था। श्रीपूर्णेश्वर जी के सम्सुख आपका भी एक सुन्दर चित्रपट सुशोभित है। प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् श्रीमहाराजजी ने अपना रेशमी वस्त्र प्रसाद रूप से मुझे ही दे दिया। शिवरात्रि को सारी रात जागरण होता रहा। कीर्तन और पदगायन होते रहे तथा कविरत्न पं० अखिलानन्दजी का प्रतिभाशाली भाषण हुआ। श्रीमहाराजजी सारी रात एक आसन से बैठे रहे। इस प्रकार आपकी कृपा से बड़ी धूमधाम से यह कार्यसंपन्न हुआ।

सकट में सहायता

(१)

सन् १९३० की बात है। श्रीमहाराजजी वृन्दावन में श्रीजी की

छोटी कुन्ज में विराजते थे। उस समय मेरे बड़े दामाद पाण्डे जी सहारनपुर में अत्यन्त रुग्णावस्था में थे। डाक्टर जोशी की किकित्सा चल रही थी। मैं श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ वृन्दावन जाने का निश्चय कर चुका था। उसके एक दिन पूर्व सहारनपुर से तार मिला—कि 'शीघ्र आओ, हालत खराब है।' सगे-सम्बन्धियों का कहना था कि पहले सहारनपुर जाओ, पीछे वृन्दावन जाना। परन्तु मैंने पहले वृन्दावन जाने का ही निश्चय रखा और श्रीमहाराजजी से मिलने पर उन्हें पाण्डेजी का समाचार सुनाया। बाबा बोले, "कोई चिन्ता मत करो, कल चले जाना।" अतः रात्रि को श्रीमहाराजजी की सेवा में रहकर दूसरे दिन सहारनपुर पहुँचा।

वहाँ पाण्डेजी की दशा बहुत खराब देखा। शौच बड़े कष्टसे राद और खुन से मिला होता था। अफरा (पेट फूलना) इतना अधिक था कि डाक्टरों ने पेट पर पट्टियां चढ़ा रखी थीं। बार-बार एनिमा द्वारा शौच कराना पड़ता था। तीन-तीन चार-चार घण्टे के अन्तर से दारुण उदरशूल का आक्रमण होता था। डेढ़ महीने से अन्न सर्वथा बन्द था, केवल फलों के रस और दूध से ही निर्वाह हो रहा था। वहां पहुँचकर जब रात्रि को मैं सोया तो स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया और बोले, "अफीम और शुद्ध कुचला का प्रयोग करो, इससे अच्छा हो जायगा।" सौभाग्य से यह दोनों औषधियां मेरे पास मौजूद थीं। प्रातः काल मैंने इन दोनों औषधियों की एक-एक चावल बराबर मात्रा निश्चत करके दवा तैयार तो कर ली, पर रोगी को देने में मेरी बुद्धि सहमत नहीं हुई। मेरी बुद्धि के अनुसार तो ये दोनों चीजें रोग के सर्वथा प्रतिकूल थीं। इसी सोच-विचार में सारा दिन बीत गया, परन्तु मैं दवा न दे सका। रात्रि के नौ बजे पाण्डेजी ने मुझसे पूछा कि आप दवा क्यों नहीं दे रहे हैं? मैंने उनसे सब बात स्पष्ट कह

दी। पाण्डे जी महात्माओं में श्रद्धा रखते हैं। वे बोले, "यदि किन्हीं महात्मा ने कहा है तो मुझे विष भी दे दीजिये।" अब मुझे चिन्ता करने का कोई कारण नहीं रहा। रात्रि को नौ बजे मैंने एक मात्रा औषधि दी। उसके आधा घण्टे बाद उन्हें पांच बार ऐसी अपानवायु खुली कि उनका पेट बिल्कुल हल्का हो गया। तत्पश्चात् वे सो गये और उन्हें बड़ी गहरी नींद आयी। प्रातःकाल जगने पर जहाँ और दिन एनिमा के द्वारा शौच उतारा जाता था वहाँ स्वयं ही हाजत हुई और एक मोटी सी गांठ निकली। उससे शरीर एकदम हल्का हो गया तथा चित्त प्रसन्न और शरीर स्वस्थ होने लगा। प्रतिदिन केवल एक बार वही औषधि देता रहा और उसी से वे सात-आठ दिन में पूर्णतया स्वस्थ हो गये। जब मेरे सामने वे सब कुछ खाने पीने लगे तो मैं चला आया।

इस घटना से यह बात जानी जाती है कि श्रीमहाराजजी को औषधियों का बहुत अच्छा ज्ञान था, जिसे देखकर अच्छे-अच्छे वैद्य और डाक्टर चकित हो जाते थे। परन्तु वे इस बात को किसी पर प्रकट नहीं करते थे और न उन्हें इसका अभिमान ही था।

(२)

सन् १९३५ की घटना है। मेरे छोटे भाई लक्ष्मणवल्लभ मेरठ में चिकित्सा कार्य करते थे। एक दिन उनकी स्त्री समस्त कार्योंसे निवृत्त होकर रात्रि को अपने कमरे में सोई और प्रातःकाल अचेतन अवस्थामें मिली। माताजी ने उसे बहुत जगाया, किन्तु वह कुछ न बोली। आठ-दस दिन तक खाना-पीना आदि समस्त कार्य बन्द रहा। भाईने बहुत कुछ अपनी चिकित्सा की। परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। उसके निमित्त दुर्गापाठ और महामृत्युञ्जयका जपभी कराया,सयानों-

से अनेकों उपाय कराये, परन्तु किसी का कोई प्रभाव न पड़ा। वह दिन-रात चुप पड़ी रहती थी, कुछ भी नहीं बोलती थी। न जाने किस आधार पर उसके प्राण टिके हुए थे ।

एक महीने बाद माताजी उसे यहां घर पर ले आयीं। मैंने भी शिरोवस्ति आदि जितने उपाय हो सकते थे वे सभी किये तथा भूतोन्मादादि की चिकित्सा भी की। किन्तु सभी व्यर्थ हुआ। उन दिनों श्री महाराज जी कर्णवास में विराजमान थे। एक दिन जब मैं उनके दर्शनार्थ जाने लगा तो माताजी ने उन्हें बहू की हालत निवेदन करने के लिए कहा। मैंने कर्णवास पहुँचकर उन्हें सब हाल सुनाया। सुनकर आप शांत स्वर में बोले, 'तुम चिकित्सा करो।" मैंने प्रार्थना की, "मैंने तो जो उत्तम से उत्तम चिकित्सा हो सकती थी सब कर ली, पर सब निष्फल हुई।" इस पर थोड़ी देर के लिये आप ध्यानमग्न हो गये और फिर कुछ भी उत्तर न देकर चुप रह गये। मैंने शाम को घर लौटकर सब समाचार सुनाया। उससे सबको यह निश्चय हो गया कि अब इसका जीवन समाप्त होने वाला है।

दस-बारह दिन पश्चात् श्रीमहाराज जी अनूपशहर पधारे और सीधे मेरे घर चले आये। रोगिणी खाट पर अचेत पड़ी थी। श्रीमहाराजजी ने अपने हाथ के अँगूठे और अँगुलियों से उसके सिर और गर्दन के पिछले भाग को दबाकर कहा, "खड़ी हो जा।" और वह तुरन्त चारपाई से उठकर खड़ी हो गयी तथा कहने लगी, "मैं इस जीवन से अत्यन्त दुःखी हूँ, मेरा उद्धार करो।" श्रीमहाराज जी बोले, "तेरे सामने चतुर्भुजमूर्ति भगवान श्रीकृष्ण खड़े हैं, क्या तुझे उनके दर्शन नहीं हो रहे ? वह तुरन्त बोली, "हां, महाराज ! दीख रहे हैं।" उसी समय उसका कान्तिहीन चेहरा श्रीयुक्त होकर खिल उठा।

वह श्रीमहाराज के चरणों में गिर पड़ी। महाराज जी ने पूछा, "क्या भोजन करेगी ?" वह बोली, "जो आप देंगे।" तब महाराज जी ने कहा, "जा, पहले गङ्गा स्नान करके पूर्णेश्वर महादेव के दर्शन कर आ।" जब वह स्नान और दर्शन करके लौटी तो श्रीमहाराज जी ने उसे अपने हाथ से कटोरे में दाल-चावल खाने को दिये और उसने उन्हें पा लिया।

इसके पश्चात् जब महाराज जी भिक्षा करने के लिये दूसरी जगह चले गये तो मैंने माताजी से पुछवाया कि उस समय तुझे क्या मालूम हुआ। उसने बताया कि जब मुझे किसी ने खड़ा किया तो मुझे आग लगता हुआ धूआं का पहाड़-सा दिखायी दिया। फिर उसके भीतर एक प्रकाशमय मण्डल में चतुर्भुज मूर्त्ति के दर्शन हुए और फिर वही मूर्त्ति मुझे श्रीमहाराजजी के रूप में दिखायी दी। उसके बाद मैं होश में आ गयी।

(३)

सन् १९४१ के कार्तिक मास की बात है। मेरे नितम्ब के सन्धि-स्थल के दोनों पार्श्वों में दो ग्रन्थियाँ उत्पन्न हुई। प्रारम्भ में पाँच-छः दिन तो कोई कष्ट नहीं हुआ, पर पीछे वेदना आरम्भ हुई और उसका भयङ्कर रूप हो गया। डाक्टरों को दिखाने पर मालूम हुआ कि फोड़ा बन गया है, ओपरेशन कराना होगा। मेरी बहिन ने अपने लड़के को श्रीमहाराज जी के पास भेजकर पुछवाया कि ऐसी दशा में क्या किया जाय। उनसे यह भी कहलाया कि इस समय भैया का दुर्गापाठ भी छूट गया है। श्री महाराज जी ने उसे तुरन्त वापिस भेजकर कहलाया कि वहाँ (अनूपशहर) के डाक्टरों से चिकित्सा न कराकर दिल्ली चले जायँ और वहीं ओपरेशन करावें। दुर्गासप्तशती का

पाठ छोड़ें नहीं। चौथे अध्याय में देवताओं ने जो भगवती की स्तुति की है वह उन्हें याद ही है। चारपाई पर लेटे-लेटे उसी का पाठ कर लिया करें। ओपरेशन अमुक दिन अमुक समय पर करावें।

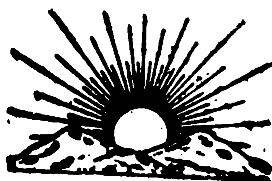
श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार मैं तुरन्त कार द्वारा दिल्ली गया वहां डाक्टर पाण्डे ने देखकर कहा कि फोड़ा गुदा से केवल आधा इञ्च अलग रह गया है। यदि दो दिन की भी देरी हो जाती तो फिर मेरे हाथ की बात न रहती। आज ही ओपरेशन होना चाहिये। पर मैंने श्रीमहाराजजी के बतलाये समय पर दूसरे दिन के लिये सहमत कर लिया। नियत समय पर जब मुझे मेज पर लिटाया गया तो मैं जीवन से निराश हो चुका था, अतः मन ही मन श्रीभगवती की स्तुति का पाठ करने लगा। सात श्लोकों का पाठ कर चुकने पर मैं ईथर के प्रभाव से अचेत हो गया। अचेत होने के पूर्व एक अलौकिक प्रकाश के अन्दर किसी द्रव्य मूर्त्ति ने, जिसे मैं ठीक-ठीक पहचान नहीं सका, मुझे गोद में ले लिया। ओपरेशन में ३५ मिनट लगे। उसके पश्चात् जब मुझे स्ट्रेचर पर कमरे में ले जाया जा रहा था अचेतावस्था में ही मैंने पुनः पाठ आरम्भ कर दिया और दस मिनट तक वह पाठ होता रहा। ज्यों ही अध्याय की समाप्ति हुई कि मुझे चेत हो गया और मैं सबको पहचानने लगा।

इसके चार-पांच दिन बाद मेरी पत्नी महाराज जी को सब समाचार सुनाने के लिये वृन्दावन गयीं। वहां बहिनजी आदि से उन्हें मालूम हुआ कि ओपरेशन के दिन ११ बजे के पश्चात् श्रीमहाराजजी ने कुटिया के किवाड़ बन्द कर लिये और भिक्षा के लिये कह दिया कि आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। उस दिन प्रायः ढाई घण्टे बाद आपने पट खोले थे। हम लोगों ने जब बहुत आग्रह किया तब आपने

बतलाया कि आज वैद्यजी पर महान् संकट था। मैंने बहुत सोचा, पर कोई संकल्प उदय नहीं हुआ। आखिर मैंने उन्हें भगवती की गोद में समर्पित कर दिया।

अभी मैं अस्पताल ही में था कि वृन्दावन के गीता जयन्ती उत्सव में सम्मिलित होने के लिये मां श्री आनन्दमयी दिल्ली पधारीं। मेरी लड़की उनकी परम भक्ता हैं और वे भी उस पर कृपा करती हैं। उसने दिल्ली में माताजी का दर्शन किया और अपने आने का कारण मेरी अस्वस्थता का सब समाचार मां को सुनाया। साथ ही प्रार्थना की कि इस समय वे तो उठ नहीं सकते, परन्तु आपका दर्शन चाहते हैं। मां ने कहा, 'उनका तो दूसरा जन्म हुआ है। मां भगवती ने ही उनके प्राण बचाये हैं। मैं अभी तो वृन्दावन जा रही हूँ, लौटती बार आऊँगी।" लौटती बार माँ कृपा करके अस्पताल में ही पधारीं और मुझे दर्शन भी दिये।

इन घटनाओं से श्रीमहाराजजी की योगशक्ति तथा उनकी कृपालुता का पता चलता है कि वे समय-समय पर किस प्रकार अपने शरणागतों की रक्षा करते थे।



पं० श्रीलालजी याज्ञिक, अनूपशहर

प्रथम दर्शन

मैं एक दिन भरिया (भृगुक्षेत्र) में पूज्यपाद श्री अच्युत मुनिजी के पास आचार्यकृत शतश्लोकी पढ़ रहा था। उसी समय श्रीउड़िया बाबाजी महाराज वहां आये और बैठ गये। पाठ समाप्त होने पर श्रीअच्युतमुनिजी ने मुझसे गङ्गाजी से कमण्डलु भर लाने के लिये कहा और पांच-सात मिनट में ही मैं गङ्गाजल भर लाया। उतनी देर में बाबा से उनकी बातें हो गयीं। महाराज ने मुझसे कमण्डलु लेकर एकान्त में कहा, "ये ब्रह्मनिष्ठ हैं, तू इनसे बात कर ले।" इसके सिवा पाँच-सात मिनट में बाबा से उनकी जो बातें हुई थीं वे भी मुझे बतायीं।

श्री अच्युत मुनिजी कहा करते थे कि मुझे सगुण-साक्षात्कार नहीं हुआ। परन्तु बोधवान् पुरुष की पहचान मुझे है। मैं पाँच-सात मिनट की बात से ही जान लेता हूँ कि यह पुरुष बोधवान् है या नहीं। उन्होंने इसी प्रकार और दो पुरुषों को भी बोधवान् बताकर मुझे उनके पास भेजा था। उनमें से एक थे श्रीज्ञानीजी, जो काशी में श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर के समीप मठाधीश थे और दूसरे थे हरिबिट्ठलजी, जो काशी में ही वरुणा के पास आदि केशव के समीप बटवृक्ष के ऊपर कुटी बनाकर रहते थे।

तभी से महाराज श्रीउड़ियाबाबाजी के प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा हो गयी और वह अन्त तक वैसी ही बनी रही। पूज्य बाबा ज्ञानी

थे—यह तो श्री अच्युत मुनिजी से ही सुना था। इसके अतिरिक्त वे ध्यानी, उपासक और मन्त्रशास्त्र के भी ज्ञाता थे। वे कहा करते थे, "भैया, इस समय जो अपने को ज्ञानी समझते हैं वे ध्यान की आवश्यकता नहीं मानते, परन्तु प्राचीन महात्मा तो ध्यान का बहुत आग्रह रखते थे और मैं भी वैसा ही मानता हूँ।" उनके ध्यान की पद्धति भी विलक्षण थी। मुझे बहुत से महात्माओं के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अजपा जाप, नाद अथवा साक्षीभाव के चिन्तन का उपाय बताते हैं, किन्तु पूज्य बाबा चित्तवृत्तियों के साक्षी रहने के उपाय की अपेक्षा भी देह को दृश्यरूप से देखने के साधन को विशेष महत्व देते थे और यही उनके साधन की पद्धति थी। 'नल्याण' में शाम्भवी मुद्रा को ही उन्होंने ध्यान का सर्वोत्तम उपाय बताया है, जिस के विषय में उन्होंने यह श्लोक उद्धत किया है—

अन्तर्लक्ष्यबहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेषवर्जिता।
सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥*

पूज्य बाबा कहीं भी बैठे हों, अधिकतर ध्यान की स्थिति में ही रहा करते थे। मेरा विश्वास है उनकी पद्धति के अनुसार जो साधन करेगा उसे अवश्य लाभ होगा। मैंने उनमें आसन की सिद्धि देखी। उन्हें ध्यानावस्था में भी देखा। उनकी ध्यानमुद्रा से उनके समीप बैठने वाले पुरुषों पर भी प्रभाव पड़ता था। अतः बाबा ध्याननिष्ठ ज्ञानी थे और उनका कथन था कि बिना ध्याननिष्ठा हुए ज्ञाननिष्ठा नहीं बनती।

वे देवी के उपासक भी थे। बहुत लोग तो थोड़ी-सी ज्ञानचर्चा

---

*जिसमें लक्ष्य भीतर की ओर रहता है, परन्तु निमेषोन्मेष से रहित दृष्टि बाहर की ओर रहती है और वह सम्पूर्ण शास्त्रों में गुप्त शाम्भवी मुद्रा है।

सुनकर ही सगुण उपासना छोड़ देते हैं, परन्तु वे तो प्रायः अन्तिम समय तक दुर्गासप्तशती का पाठ करते थे। सांसारिक कष्ट पड़ने पर वे लोगों को दुर्गा के विविध मन्त्रों का जाप बतलाया करते थे। बम नोई (जिला अलीगढ़) के ठाकुर साहब के आदमियों पर एक बार एक पुरुष को मारडालने का अभियोग लगा। ठकुरानीजी की श्रीमहाराज में बहुत श्रद्धा थी। उन्होंने आपसे प्रार्थना की। तब आपने श्रीदुर्गाका अनुष्ठान कराया। फलस्वरूप ठाकुरसाहब के आदमी छूट गये और विपक्षियों को सजा हो गयी। मेरे बच्चों को भी एक प्राचीन मन्त्र का प्रयोग और दुर्गापाठ करते रहने का आदेश दे गये हैं। श्रीबाबा के लीलासंवरण के तीन दिन पूर्व मैं वृन्दावन में ही था। जब विदा होने लगा तब मैंने पूछा कि उस मन्त्र का कितना जाप करना चाहिये ? आपने कहा, "जितने अक्षर हैं उतने लक्ष जाप होना चाहिये।" यही उनकी अन्तिम बात थी। वे प्रायः सोलह नामों वाले महामन्त्र, द्वादशाक्षर मन्त्र और पञ्चाक्षर शिवमन्त्र का उपदेश दिया करते थे। इस प्रकार वे उपासक और अच्छे मन्त्रशास्त्रज्ञ भी थे। वे कहते थे कि हमारे कुल में दो सौ वर्ष से दुर्गा की उपासना चली आ रही है।

अनूपशहर में जब श्रीमहाराज जी पधारते तो प्रातःकाल मेरे मकान पर ही वेदान्त सम्बन्धी प्रश्नोत्तर होते थे। उस समय मकान का दरवाजा बन्द कर दिया जाता था। वहां जिज्ञासुओं के सिवा और किसी को नहीं बैठने देते थे। उस समय का सा सत्संग का सुख मुझे कभी नहीं मिला। एक दो बार श्रीअच्युतमुनि जी की नौका में रात के तीन चार बजे जब वे वेदान्त पढ़ाते होते, तो उस समय नाव में केवल तीन ही व्यक्ति होते—श्री अच्युत मुनिजी, श्री उड़िया बाबाजी और मैं

शान्त निशा, श्रीगंगाजीकी अद्भुत शोभा और उज्ज्वल चाँदनी छिटकी होती ! वे दिन मुझ को आज भी याद आते हैं। पञ्चदशी, योगवासिष्ठ, जीवन्मुक्तिविवेक और श्रीभद्भागवत के बहुत से श्लोक बाबा को कण्ठस्थ थे। परमार्थ का सूक्ष्मप्रतिपादन करते हुए कभी-कभी वे उन श्लोकों को कहा करते थे। इस श्लोक को वह बहुत बार कहा करते थे, यह जीवन्मुक्तिविवेक में आया है—

"संशान्तदुःखमजडात्मकमेकरूपमानन्दमन्थरमपेतरजस्तमोयत् ।
आकाशकोशतनवोऽतनवोमहान्तस्तस्मिन्पदेगलितचित्तलवाबसन्ति ॥

अर्थात् जिसमें दुःख का अत्यन्ताभाव है, जो चिन्मात्र एकरस, और आनन्दघनस्वरूप है तथा जिसमें रजोगुण और तमोगुण का लेश भी नहीं है उस पद में वे देहातीत महापुरुष निवास करते हैं, जिनका आकाशकोश ही देह है और जिनकी चित्त कणिका विलीन हो गयी है अर्थात् जो अमनीभाव को प्राप्त हो गये हैं।

श्री बाबा ने मुझे सुनाया कि ब्रह्मचर्यावस्था में मैं एक सहस्र गायत्री नित्य प्रति जपता था। एक लोटे में अरहर की दाल चढ़ा देता और चार-पाँच बाटियां बना लेता। यही मेरा भोजन था। उसके पश्चात् सन्यास लेकर मैंने तत्त्वदर्शी एवं समाधिनिष्ठ गुरु की बहुत खोज की। एक वार मैं गंगातट पर विचर रहा था। बरुआ घाट के समोप मेरे मन में विचार आया कि घर छोड़ा, सिर भी मुड़ाया किन्तु वस्तु की प्राप्ति न हुई। ऐसा सोचते-सोचते मैंने निश्चय किया कि गंगाजी में कूद पड़ूँ। मैंने तूम्बा गंगाजी में फेंक दिया और स्वयं भी कूदने को तैयार हुआ। परन्तु फिर हिचक हुई। विचार आया कि यों मरने से क्या लाभ ? विचार करते-करते सम्भव है अनुभव भी हो जाय। ऐसा सोचकर पास ही एक शिवमन्दिर में जाकर लेट गया।

तन्द्रा-सी आ गयी। उसी अवस्था में मैंने देखा कि दो विरक्त परमहंस पधारे हैं। उनसे मेरा प्रश्नोत्तर होने लगा। वे मेरे प्रत्येक प्रश्न का बड़ा ही समाधान कारक उत्तर देते थे। अन्त में उन्होंने मुझे दो श्लोक याद रखने को कहा—

'नेति नेतीति नेतीति शेषितं यत्परं पदम्।
निराकर्त्तुमशक्यत्वात्तदस्मीति सुखी भव ॥१॥
जड़तां वर्जयित्वैतां शिलाया हृदयं च यत्।
अमनस्कं महाबाहो तन्मयो भव सर्वदा ॥२॥*

वहाँ बरुआघाट में ही श्रीज्ञानाश्रमजी से आपकी भेंट हुई। उसके पास रहकर आपने योग साधन और ध्यान का अभ्यास किया। श्री-ज्ञानाश्रमस्वामी में आपका गुरुभाव था। वे अद्‌भुत संयमी थे। बाबा कहते थे कि उनकी गति निर्विकल्प समाधि तक थी। पूज्य करपात्री जी महाराज से भी मैंने उनकी प्रशंशा सुनी थी। इस प्रकार बाबा को योग का भी अच्छा ज्ञान था।

अद्‌भुत क्षमाशीलता

एक बार रामघाट में सत्संग हो रहा था। दो-तीन सौ आदमी बैठे हुए थे। मैंने अपनी पत्नी से कहा, "तुम बाबा से प्रश्न करो कि गीता में स्त्रियों को पाप योनि क्यों लिखा है?" उसने प्रश्न किया। वहां पण्डित तृषारामजी भी बैठे थे। वे शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे ही मुझे उत्तर देने लगे। बीच-बीच में बाबा भी कुछ कह देते

*स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों देहों का निषेध करने पर जो परमपद निषेध के योग्य न होने के कारण बच रहता है वही मैं हूँ ऐसा जानकर सुखी हो जा ॥१॥ [निषेध करने पर] शिला की घटना के समान जो जड़ता प्राप्त होती है उसे त्यागकर हे महाबाहो अमनस्क (मनहीन) होकर सर्वदा उसी स्थित में स्थिति रहो ॥२॥

थे। मुझे उस समय ज्वर चढ़ा हुआ था। उसके वेग में मुझे ऐसा लगा कि पण्डितजी और बाबा जो उत्तर दे रहे हैं उसका पूज्यपाद भाष्यकार भगवान् शंकर के सिद्धान्त से विरोध है। वह मुझे सहन नहीं हुआ और मेरे मुख से निकल गया कि भाष्यकार के विरुद्ध मुझे किसी का मत प्रिय नहीं है, ऐसी बात मैं किसी भी पुरुष की मानने को तैयार नहीं हूँ। पं० तृषाराम भी आचार्य के परम भक्त थे। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं था। बाबा तो महापुरुष थे ही। सभा उठने पर मैंने श्रीमहाराजजी से क्षमा माँगी। तब आप बोले, "नहीं, भाष्यकार के प्रति तेरी श्रद्धा को देखकर हम प्रसन्न हैं। भाष्यकार के तर्क और युक्तियाँ अकाट्य हैं। हम लोग भी उन्हीं के वचनों में श्रद्धा रखते आये हैं।" बाबा के इन शब्दों से यह निश्चय होता है कि उनका चित्त कितना शान्त था। मैंने गीता के 'यस्मान्नोद्विजिते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः' इस श्लोक को बाबा के जीवन में ही चरितार्थ होते देखा है। वे एक अलौकिक महात्मा थे। उनमें मेरी और मेरे परिवार की बहुत श्रद्धा थी। महात्मा लोग अलौकिक गुणसम्पन्न हुआ करते हैं। उन्हें पहचानना बहुत कठिन है मुझे तो अभिमान-सा रहता था कि बाबा मुझसे बहुत प्रेम करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरु

एक दिन मेरे यहाँ श्रीमहाराजजी का पूजन हो रहा था। घर के तथा आस-पास के बच्चे बैठे हुए थे। मुझसे मेरे सबसे छोटे पुत्र मधुसूदन ने कहा कि मुझको बाबा से कुछ दिलवाओ। मैंने कहा कि तुम ही क्यों संकोच करते हो, स्वयं पूछ लो। उसने बाबा से कहा, महाराज! मुझे एक ऐसा मन्त्र दीजिए जिससे लक्ष्मी की प्राप्ति हो।" श्रीमहाराजजी ने कह दिया, "अच्छा, तुमको ऐसा ही मन्त्र देंगे।" सब सुनकर चकित रह गये। श्रीमहाराजजी सेठ गौरीशंकरकी

धर्मशाला में ठहरे हुए थे। मैं स्वयं मधु को लेकर पहुंचा और उससे कह दिया कि ये फल महाराज के सामने रखकर वे जो कुछ कहें ध्यान से सुन लेना। बाबा को बहुत आदमी घेरे रहते थे। उनसे एकान्त में बात करना कठिन था। पर किसी तरह मैं उन्हें एकान्त कमरे में ले आया। वहाँ वे, मैं और मधु तीन ही थे। मधु ने बाबा से कहा, "मैंने सहसा उस समय लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये मन्त्र माँगा था। मेरी वास्तविक इच्छा तो यह है कि मैं अच्छा लेखक बनूँ।" श्रीबाबा बोले, "मैं तुम्हें ऐसा मन्त्र देता हूँ जिससे तुम्हारी दोनों इच्छायें पूर्ण होंगी।" ऐसा कहकर उसे मन्त्र बता दिया।

अँग्रेजी पढ़ने वालों का मन्त्र पर विश्वास तो होता नहीं। फिर भी थोड़े दिन उसने उस मन्त्र का जप किया। इससे उसके एक दो लेखों पर शिक्षा विभाग की ओर से उसे पारितोषिक मिला। फिर उसने भारतवर्ष में सबसे बड़ी परीक्षा आई० ए० एस० पास की। आज वह पांच सौ रुपया मासिक पर बम्बई में इन्कमटैक्स आफीसर है। इसे बाबा की कृपा समझिये अथवा मन्त्र का प्रभाव।

बुद्धिसाम्य

मेरी बड़ी बहिन, जिसकी आयु प्रायः पचहत्तर वर्ष की है वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित है। वह बाबासे प्रायः मेरी शिकायत किया करती थी कि महाराज! यह न जाने घट, पट, मठ, रज्जु-सर्प और चाँदी-सीपी क्या करता रहता है। हमारे यहां तो लाला की सेवा, पूजा और कथा कीर्तन का महत्व है। इसमें कौन बात ठीक है? श्रीमहाराज उससे कहते, "यह तो मूर्ख है, तुम इसकी बात मत सुनना। लाला की ही बात ठीक है। तुम वही करती रहो।" इस प्रकार महाराज जिसकी जैसी श्रद्धा होती उसे उसी में दृढ़ कर देते थे उसे बदलने का प्रयत्न कभी नहीं करते थे।

पं० श्री बद्रीप्रसादजी, अनूपशहर

बाबा का प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहर में रामशंकरजी के बाग में किया था। एक दिन रामशंकर ने ही मुझे बाबा के आने की सूचना दी थी। मैं बाग में गया और उनका दर्शन किया। उस समय कोई बातचीत नहीं हुई। पीछे धीरे-धीरे आपके साथ मेरा सम्पर्क बढ़ता गया। फिर तो जब-जब बाबा अनूपशहर पधारते तो मैं उनके दर्शनों को जाता ही, वे भी कृपा करके मेरे यहाँ अवश्य पधारते। इस प्रकार प्राय: पैंतीस वर्ष बाबा के साथ मेरा प्रेम रहा।

बाबा सचमुच महान् पुरुष थे। उनमें नास्तिकों के हृदयों को भी आकर्षित कर लेना और दूसरे के चित्त को लय करके उन्हें बोलने से रोक देना आदि की सिद्धियां मैंने अनुभव की थीं। वे नास्तिकों के यहां भी चले जाते थे। उनके पास बैठते और बातचीत करते थे। एक दिन मैंने कहा, "बाबा ! आप ऐसे लोगों के यहाँ भी चले जाते हैं ?" आप बोले, "इसमें मेरी क्या हानि है ? क्या जाने उनका कैसे कल्याण हो जाय।" उनकी ऊँच-नीच पर दृष्टि नहीं थी। जीवों का कल्याण कैसे हो—इसी पर उनकी दृष्टि रहती थी। वे मुसलमानों से भी घण्टों बातें करते रहते थे। उनका चित्त कभी किसी पर बिगड़ता नहीं था।

एक बार चित्तौड़गढ़ किले में भगवत्कृपा से मुझे चालीस श्लोक स्फुरित हुए। वे श्लोक मैंने बाबा को सुनाये। उन्होंने आज्ञा दी कि इसकी भाषा टीका लिखो। चौदह वर्ष परिश्रम करके अनेक पुराण तन्त्र एवं शास्त्रादि अवलोकन करके उनकी टीका लिखी गयी। तब

बाबा ने चार महीने लगातार अनूपशहर में रहकर वह सम्पूर्ण ग्रन्थ सुना। और उस पर भक्तलक्षण-प्रतिपादक एक श्लोक लिख दिया।

इसी प्रकार एक बार आप मेरे यहाँ आये और श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्ध का एक श्लोक दिखाकर बोले, "पण्डितजी ! इस श्लोक का क्या अर्थ है ?" मैं समझ गया। उनका भाव था—भगवान् कहते हैं कि सूर्य, अग्नि, जल और गुरु आदि में मेरी पूजा करे।

एक बार मैंने बाबा को श्रीद्वारिकाधीशजी का प्रसाद दिया। जब वे पाने लगे—मुझे उनसे भय तो लगता नहीं था—मैंने सीधे कहा, "बाबा ! आपके मुख में भगवत्प्रसाद है सच-सच कहो, गोवर्धन में मेरी कुटिया पर कब चलोगे ?" वे बोले, "बस, यहाँ से उठते ही अवश्य चलूँगा।" उसके कुछ दिन पश्चात् आप अकस्मात् मेरी कुटिया पर पहुँच गये। साथ में एक सेवक था। पीछे से पचासों भक्त भी आ गये। आप बोले, "पण्डितजी ! आप तो केवल मेरे लिये मूँग की दाल और रोटी बनवा देना, ये सब अपना प्रबन्ध कर लेंगे।" वैसा ही हुआ। रात्रि में नत्थालाल मास्टर ने तीन कनस्तर दूध मँगा कर सबको पिलाया।

रिछपाल देवी नाम की एक भक्ता हैं। एक दिन उनके मन में संकल्प हुआ कि कल मैं भी बाबा को फूलमाला पहनाऊँगी। दूसरे दिन जब बाबा आये तो वैसे तो रोज सीधे मेरे पास चले आते थे, परन्तु आज मुड़कर रिछपाल देवी के पास चले गये और बोले, "ला, फूलमाला पहना।" संयोगवश उसे उस दिन फूल मिले नहीं थे, और बाबा पहुंच गये। आखिर उसने तुलसी की कण्ठीमाला

पहना दी। पास आने पर मैंने पूछा, "बाबा! आज यह क्या लीला है?" बोले, "यह फूलमाला पहनाना चाहती थी, सो इसके पास चले गये। इसने तुलसी की कण्ठी पहना दी।"

बाबा का स्वभाव अत्यन्त करुणामय और प्रेमपूर्ण था। एक बार मैं आपके दर्शनार्थ कर्णवास गया। पर आप कुटिया में नहीं मिले। मैंने किसी से पूछा, "बाबा कहां हैं?" उसने उत्तर दिया, "उस कोठरी में है।" मैंने जाकर देखा कि रामदास को १०३ डिग्री बुखार चढ़ा हुआ है और बाबा उसका सिर अपनी गोद में लेकर हाथ फेर रहे हैं। उनके इस आचरण का मन पर बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा।

रामशंकर मेरा शिष्य था। वह मुझसे पढ़ा था। परन्तु आगे चलकर उससे मेरी अनबन हो गयी। कई वर्षों तक आपस में हमारी बातचीत बन्द रही। अन्त में रामशकर बीमार पड़ा। एक दिन बाबा मेरे पास आये और बोले, "पण्डितजी! आज रामशंकर का शरीर नहीं रहेगा, चलो।" मैं उनके साथ हो लिया। उस समय ललिताप्रसाद और आनन्द ब्रह्मचारी आदि वहीं थे। मैंने श्रीमद्भागवत का पाठ रामशंकर को सुनाया और सचमुच थोड़ी ही देर में उसका शरीर छूट गया। इस प्रकार ठीक अन्तिम समय पर बाबा ने हमारे पारस्परिक मनोमालिन्य को निवृत्त करके रामशंकर की सद्गति का साधन उपस्थित कर दिया।



मास्टर श्री हरिदत्तजी जोशी, अनूपशहर

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा।
चन्द्राच्चन्दनाच्चैव शीतला साधुसङ्गतिः ॥

संसार में चन्दन शीतल है और चन्दन से भी अधिक शीतल चन्द्रमा है। परन्तु साधु-सन्तों की संगति चन्दन और चन्द्रमा से भी बढ़कर शीतल होती है।

यत्रापि तत्रापि गता भवन्ति हंसा महीमण्डलमण्डनाय।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥३॥

हंस तो भूमण्डल की शोभा बढ़ाने के लिये जहाँ-तहाँ जाते ही रहते हैं, (इससे उनकी कोई क्षति नहीं होती)। हानि तो उन सरोवरों की ही होती है जिनका हंसों से वियोग होता है। अर्थात् जिन्हें छोड़कर हंस अन्यत्र चले जाते हैं। तात्पर्य यह कि सतजन तो जहां जाते हैं वहीं शोभा बढ़ाते हैं, किन्तु जिन स्थानों को छोड़ कर वे जाते हैं वे तो श्रीहीन हो ही जाते हैं।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम्।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥३॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, और निष्कपट प्रेम करना—यह सत्पुरुषों का स्वभाव ही होता है। भला, बतलाओ तो, चन्द्रमा को किसने शीतल किया? (अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा स्वभाव से ही शीतल है उसी प्रकार संतजन स्वाभाविक ही दूसरों का उपकार करते हैं, प्रिय बोलते हैं और सबसे निष्कपट प्रेम करते हैं।)

प्रथम दर्शन

पूज्य श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहर में ही किया था। मैं प्यारेलाल के साथ दक्षिणी स्वामी के दर्शनार्थ उनकी कुटी-पर गया था। सौभाग्य से अकस्मात् श्रीमहाराजजी कहीं से विचरते वहाँ आ पहुँचे। यत्किञ्चित सेवा और सत्संग का सुअवसर मिला। उस दिन से जब तक आप वहाँ विराजे मैं नित्यप्रति आपके दर्शनार्थ जाता रहा। उस प्रथम दर्शन में ही मेरे हृदय में श्रीमहाराजजी के प्रति जो श्रद्धा-भक्ति का भाव उदित हुआ वह दिनों दिन बढ़ता ही गया। मैंने सद्गुरु रूप से वरण कर उन्हें अपनी जीवन नौका का कर्णधार माना और उन्होंने भी मुझे अपना एक दीन दास जानकर अहैतुकी कृपा की। जब आप अनूपशहर से चले गये तो मेरा हृदय उनके बिना बेचैन रहने लगा। सदैव एक अभाव-सा खटकता रहता। उसके कुछ काल पश्चात् आप सेठ रामशंकर जी के बाग में पधारे, तब मैंने दूसरी बार आपका दर्शन किया।

सेठ श्री रामशंकरजी बड़े ही साधुसेवी और सत्संगी पुरुष थे। उन्होंने सद्गुरु की प्राप्ति के लिए हरिद्वार-ऋषिकेश आदि कई तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। श्रीमहाराजजी के दर्शन तथा सत्संग से उन्हें बड़ा लाभ हुआ। उनकी प्रीति प्रसंशनीय थी। श्रीमहाराजजी के पास आने पर वे परम भक्तिनिष्ठ हो गये थे।

श्रीमहाराजजी जब तक सेठजी के बाग में विराजे उनके पास दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ रहती थी। वहाँ कथा-कीर्तन और सत्संग का बड़ा सुन्दर सुयोग रहता था। मैं सदैव सरकार क दर्शनार्थ सेवा में उपस्थित होता था। उस समय अनेकों प्रश्नकर्त्ताओं के प्रश्नों का उत्तर तो आप बिना प्रश्न किये ही दे देते थे। भक्त मुन्नालाल जी

जिस समय सितार पर विनयपत्रिका के पद गाते और रामशंकरजी उनकी व्याख्या करते तो बड़ा ही अपूर्व आनन्द उमड़ता था। इस प्रकार प्रात: एक महीना तक अनूपशहर वासियों को अपने दर्शन और सत्संग का आनन्द प्रदान कर श्रीमहाराजजी एक रात्रि को सबको सोते छोड़ कर चले गये। इससे सभी भक्तों को बड़ा दु:ख हुआ।

मेरी निष्ठा में व्यतिक्रम

मेरी श्रद्धा प्रारम्भ से ही भक्तियोग में थी। इसलिए श्रीमहाराजजी मुझे सदैव ही भक्ति सम्बन्धी उपदेश दिया करते। परन्तु एक बार इस निष्ठा में कुछ व्यतिक्रम उपस्थित होने का भी प्रसंग आ गया। उस समय श्रीमहाराज जी की ही कृपा से मेरी रक्षा हुई। वह प्रसंग इस प्रकार है—

अनूपशहर में एक मौनी महाराज रहा करते थे। मैं प्यारेलालजी के साथ उनके दर्शनार्थ जाया करता था। उनकी निष्ठा ज्ञानमार्ग में थी। उनके साथ सत्संग होते समय हम दोनों को ऐसा अनुभवहोता था कि श्रीमहाराज जी वहाँ उपस्थित हैं। एक रात को मुझे श्रीमहाराजजी ने दर्शन दिया और निष्ठा सम्बन्धी कुछ बातें भी की। परन्तु पीछे मुझे स्मरण नहीं रहा कि उन्होंने क्या निश्चय किया। मौनी महाराज जानते थे कि प्यारेलालजी तो बाबा के अनन्य भक्त हैं, अत: उनसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। परन्तु मुझे नया समझकर उन्होंने ज्ञाननिष्ठा पर जोर दिया। और मेरे हृदय पर उसका प्रभाव भी पड़ गया। मैंने अपनी निष्ठा के विषय में श्रीप्यारेलालजी से परामर्शकिया तो उन्होंने भी कहा कि महाराज जी के सिद्धान्त में भी ज्ञान में ही साधना का पर्यवसान होता है। अत: मैं श्रीमौनी महाराज के आदेशा-

नुसार पारसभाग, विचारमाला एवं विचार सागर आदि ज्ञानमार्गीय प्रक्रिया ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगा।

इस प्रकार मैं ज्ञानगङ्गा में गोते लगा ही रहा था कि एक दिन प्यारेलालजी ने यह शुभ सम्वाद सुनाया कि श्री सरकार ने तुम्हें याद किया है। बस, फिर क्या था? सुनते ही मेरा मुरझाया हृदय हरा हो गया। उसमें सरकार के दर्शनों की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी। सौभाग्य से ग्रीष्मकाल की छुट्टियां थीं। मैं सीधा रामघाट को चल दिया। निष्ठा में परिवर्तन होने के कारण मेरे हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी। रामघाट पहुँचकर मैंने सत्संग मण्डल में श्रीसरकार का दर्शन किया। भक्तगण चारों ओर वृत्ताकार बैठे हुए थे, सरकार कुछ प्रवचन कर रहे थे, इसलिए मैंने दूर से ही साष्टांग प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। सत्संग का विषय गम्भीर था, मैंशान्तिपूर्वक सुनता रहा।

सत्संग समाप्त होने पर सरकार ने सबको भोजन कराया और स्वयं भी भिक्षा करके लेट गये। मैं बहिष्कृत-सा एक ओर बैठा मनोराज्य करता रहा—'न जाने ऐसा कौन अपराध हो गया जिससेअब तक सरकार से बातचीत करने का अवसर नहीं मिला?' सब लोग सरकार से अपने-अपने मन की बातें कर रहे थे, परन्तु मैं चुपचापबैठा था। धीरे-धीरे रात के बारह बज गये, परन्तु सरकार मुझ सेएकशब्द भी नहीं बोले। सब लोग श्रीचरणों में प्रणाम करके विश्राम के लिए चले गये। मैं भी प्रणाम करके अपने स्थान पर चला आया, परन्तु नींद नहीं आयी। मन चिन्ता में संलग्न था—'सरकार इतने रुष्ट क्यों हो गये, जो अभी तक बातें नहीं की?'

प्रातःकाल तीन बजे ही सरकार उठ बैठे। अन्य भक्त भी जहां-

तहाँ बैठकर ध्यान करने लगे। पाँच बजे ज्ञानमार्गीय सत्संगी सरकार के पास जुट गये और ज्ञाननिष्ठापरक सत्सङ्ग होने लगा। मैंमन मारे चुपचाप सब सुनता रहा। सूर्योदय होने पर सरकार भक्त-मण्डली सहित गङ्गास्नान को गये और स्नान करके एक वटवृक्ष की छाया में ऊँची वेदी पर विराज गये। मैं उद्विग्न हृदय से गङ्गातीरपर सन्ध्योपासन कर रहा था। इतने में एक सेवकने आकर सूचना दी कि सरकार तुम्हें याद करते हैं। बस, मैं तुरन्त अपने भाग्य की सराहना करता चल दिया और सरकार के आगे साष्टाँग प्रणाम कर चरणों में गिर पड़ा। सामने बैठने की आज्ञा हुई और मैंने आज्ञा का पालन किया।

तब सरकार मन्द मुस्कान सहित बोले, "अब तो तुम ब्रह्म हो गये हो ?" मैं निरुत्तर होकर चुपचाप बैठा रहा। फिर बोले, "क्या तुमने विचारसागर अवलोकन कर जगत् को मिथ्या समझ लिया ? क्या तुम तर्क-वितर्क में प्रवीण हो गये ? क्या तुम्हारा हृदय बज्र से भी कठोर हो गया ? क्या रामायण और भागवत के स्तुतिप्रकरणों का संग्रह व्यर्थ हो गया ? इस प्रकार अनेकों प्रश्न सरकार ने एक साथ ही किये ? मुझसे इनका कुछ भी उत्तर देते न बना। मेरा हृदय करुण-क्रन्दन कर रहा था। बड़ा ही साहस करके बोला, "भगवान आप सर्वज्ञ हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। मैंने आपकी स्वप्नाज्ञा की भ्रान्ति से ही ऐसा किया था। अब दीनदयालु की जैसी इच्छा हो वैसा ही करने के लिये यह दीन बाट जोह रहा है। यह आपकी शरण है। आपको छोड़कर इसका कोई अन्य आश्रय नहीं है।" श्रीसरकार तुरन्त बोले, "नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे लिये ज्ञानमार्ग कभी उपयुक्त नहीं समझता। छठी कक्षा के विद्यार्थी को

एम०ए० में कैसे भर्ती किया जा सकता है ? कोमल हृदय वालों के लिये तो भक्तिमार्ग ही उपयुक्त है।" अब मेरे हृदय का बोझ हल्का हो गया और चित्त का समाधान भी। इसके बाद कभी-कभी हास्य-विनोद में पूछा करते थे, "जोशीजी ! तुम ज्ञानी हो या भक्त ?" इसका उत्तर भला मैं क्या देता। मैं तो इसी में अपना सौभाग्य समझता था कि इसी बहाने सरकार को इस दीन दास की स्मृति आजाती है।

श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि अपने स्वाध्याय ग्रन्थों में से एक-दो पद अथवा दस-पांच श्लोक ऐसे अवश्य कण्ठस्थ कर लेनेचाहिए जिनका पाठ नित्यप्रति अनिवार्य रूप से कर लिया जाय। यदि घर में शव भी पड़ा हो तो भी उस श्लोक या पदों का मानसिक पाठ अवश्य कर ले।

भक्त प्यारेलाल पर कृपा

श्रीमहाराजजी के भक्तों में प्यारेलाल जी की श्रद्धा-भक्ति सराहनीय थी। श्रीमहाराजजीके प्रति उनके जैसा प्रेम क्वचित् ही दिखाई देता है। मेरे साथ उनकी घनिष्ट मित्रता थी। हम दोनों सायंकाल में साथ-साथ वायुसेवन के लिए जाया करते थे। उस समय आपस में सत्संग सम्बन्धी वार्तालाप अथवा साधु-महात्माओं की चर्चा ही हुआ करती थी। उन्हें जिस प्रकार पूज्यपाद श्रीमहाराज जी के चरणों की प्राप्ति हुई वह प्रसंग भी उल्लेखनीय है। अतः यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है —

एक बार अनूपशहर में बाबा मस्तराम की समाधि पर विरक्त महात्मा श्रीउग्रानन्दजी पधारे। संयोगवश हम भ्रमण करते हुए उधर जा निकले। हमने जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया।

थोड़ी देर सत्संग होता रहा। उससे हम दोनों ही बहुत प्रभावित हुए। प्यारेलालजी तो नित्यप्रति ही उनके पास जाते और उनकी सेवा-सुश्रूषा तथा सत्संग करते। फलतः उनके हृदय में उन्हें गुरु-रूप से वरण करने का निश्चय करने का संकल्प जाग्रत हुआ। एकदिन इसके लिए उन्होंने उनसे प्रार्थना भी की। तब स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "भैया! तुम्हारे गुरु तो श्रीउड़ियाबाबा हैं, उन्हीं के द्वारा कल्याण होगा।" मालूम होता है कि उच्चकोटिके महात्माओं को इस बात का पता चल जाता है कि किसका कौन गुरु है, अतः समय आने पर वे अधिकारी शिष्य को उसके वास्तविक गुरु के पास जानेकी सलाह देते हैं।

अब प्यारेलालजी महाराजजी के दर्शनों के लिए छटपटाने लगे। दैवयोग से सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीदक्षिणी स्वामी अनूपशहर पधारे। हम दोनों उनके दर्शन के लिए गये और सौभाग्यवश वहां पूज्य श्रीमहाराज जी भी पधारे। दक्षिणी स्वामीजी ने आगन्तुक महाराज जी की भिक्षा और सेवा सुश्रूषा के लिए प्यारेलालजी को आज्ञा दी। यद्यपि रात्रि बहुत बीत चुकी थी, तो भी प्यारेलाल ने कोई परवाह न करके उसी समय मधुर पक्वान्न तैयार कराकर श्रीमहाराज जी को भिक्षा करायी। पीछे जब उन्हें यह मालूम हुआ कि रात्रि को उन्होंने जिन आगन्तुक महात्मा को भिक्षा करायी है वे स्वामी श्री उग्रानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट मेरे गुरुदेव श्रीउड़ियाबाबाजी ही हैं तब तो उनके आनन्द की सीमा न रही। प्यारेलालजी ने सद्गुरु भाव से श्रीमहाराजजीके चरण पकड़ लिये और ऐसे पकड़े कि जीवनपर्यन्त उन्ही चरणकमलों के चञ्चरीक बने रहे।

अनूपशहर निवासियों में श्रीमहाराजजी का प्रथम भक्त होने का

सौभाग्य सम्भवतः प्यारेलाल जी को ही है। वे सामान्य स्थिति के व्यक्ति थे, परन्तु भक्ति-प्रेम में वे बहुतों से बढ़कर थे। श्रीमहाराज जी को बारम्बार आग्रह करके अनूपशहर में लाना उन्हीं का काम था। वे महाराज जी के भक्तों की भी सेवा करना अपना अहोभाग्य समझते थे। अच्छे-अच्छे लोगों के मुख से सुना है कि अनूपशहर में महाराज जी का सच्चा प्रेमी तो प्यारेलाल ही था।

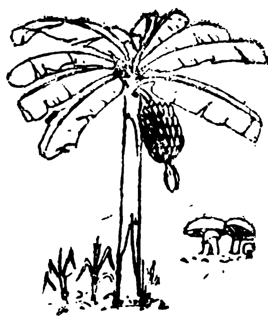
जिस समय प्यारेलाल का अन्तिम समय आया श्रीमहाराज जी हरिद्वार में थे। वे भला ऐसे समय अपने एकनिष्ठ भक्त को कैसे भूल सकते थे! प्रभु की प्रतिज्ञा है कि कफ, बात और पित्त के दोष से अंत समय में यदि मेरा भक्त भूल भी जाय तो मैं ही उसे स्मरण कर लेता हूँ और उसे परमगति प्रदान करता हूँ।*प्यारेलाल का श्रीमहाराज में पूर्णतया भगवद्‌भाव था उन्होंने जीवन भर भगवान् मासकर की उनकी सेवा की थी अतः श्री महाराजजी ने उनके अन्त समय पर अपने कर्त्तव्यका निर्वाह किया। उन्होंने हरिद्वारसे मास्टर मुंशीलाल के द्वारा सन्देश भेजा–'प्यारेलाल से कहना कि अब सम्पूर्ण आसक्तियों को त्यागकर रामायण के सुन्दरकाण्ड का पाठ करावें।' बस, पाठ आरम्भ हुआ और उसकी पूर्ति होते ही प्यारेलाल का शरीर शान्त हो गया।

इससे कुछ दिन पूर्व जब प्यारेलाल बीमार थे श्रीमहाराजजी ने पूछा था, "प्यारेलाल! तुम्हें कोई चिन्ता है?" प्यारेलाल ने कहा "महाराजजी! मेरे ऊपर ऋण हो गया है, उसी की चिन्ता है।" इसपर श्री महाराजजी ने उत्तर दिया, "तुम्हारा ऋण मैं चुकाऊँगा।

*कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

उसका भार मुझ पर है, तुम चिन्ता छोड़ दो।" इस प्रकार श्रीमहाराजजी ने अन्त समय पर उन्हें सब चिन्ताओं से मुक्त कर दिया था।

प्यारेलाल को श्रीमहाराजजी के विषय के विषय में बड़े-बड़े अनुभव हुए थे। उन्होंने अपने इष्टमित्रों को वे अनुभव सुनाये भी थे। यदि हमें वे ज्ञात हो सके तो फिर किसी समय उन्हें व्यक्त करने का प्रयत्न करेंगे।



पं० श्रीबद्रीशंकरजी मेहता, अनूपशहर

पूज्य श्रीमहाराज जी का प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहर में अपने बाग में किया था। मेरे बड़े भाई श्रीरमाशंकरजी बड़े सत्संगी और बाबा के प्रधान भक्त थे। उन्हीं की प्रार्थना से बाबा बाग में पधारे थे। पीछे तो हमारा सारा ही परिवार बाबा का भक्त हो गया था। जिस समय मैंने प्रथम दर्शन किया महाराज जी सत्संग में बैठे हुए थे। दर्शन करते ही उनके प्रति मेरे हृदयमें श्रद्धा और महत्व के भाव की जागृति हुई। तब से वह भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरे लिए बाबा प्रायः यही उपदेश देते थे कि यथासम्भव मन को सदैव वश में रखो और जिस साधना या साध्य में अपनी श्रद्धा हो उसी में दृढ़ निष्ठा रखो। जो कुछ सुनो उसे आचरण में लाने की चेष्टा करो, ऐसा नहीं कि सारा जीवन सुनते-सुनते ही बीत जाय। इसमें सन्देह नहीं, बाबा को अन्न-पूर्णा सिद्ध थी। कैसी भी महँगी हो, कितना भी कन्ट्रोल हो, उनके यहाँ अन्न की कमी नहीं होती थी।

एक बार बांध के उत्सव पर बाबा पधारे थे। हम लोग भी वहां गये थे। मेरा नियम था कि जब उनके पास रहता नित्य-प्रति प्रातः-काल उनका पूजन करता था। पूजन में कुछ भोग भी अवश्य रहता था। संयोगवश एक दिन जब हम पूजन के लिए चले तो भोग नहीं था। मैंने पत्नी से कहा कि कुछ भोग ले आओ। वे भीतर गयीं, पर कुछ भी न मिलने से खाली लौट आयीं। हम बिना भोग पूजा करना नहीं चाहते थे। इस फेर में वे तीन-चार बार भीतर गयीं और लौट

आयीं। बाबा समझ गये कि आज ये किसी असमंजस में हैं। बोले, "जाओ, जो कुछ हो वही ले आओ।" पर जब कुछ था ही नहीं तो वे लातीं क्या? जब बाबा ने बार-बार वही बात दुहरायी तो वे फिर गयीं। उन्हें एक हांडी मिली। उनकी जानकारी के अनुसार उसमें था कुछ नहीं, परन्तु उसका मुँह कपड़े से बँधा था। उसे खोला तो एक दोने में कुछ मक्खन और मिश्री रखा मिला। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस समय माखन मिश्री कहाँ से आ गया, परन्तु बाबा की लीला समझकर चुप ही रहे।

बाबा का स्वरूप और स्वभाव ऐसा था कि उन्हें जो जिस भाव से देखता था उसे वे वही दीख पड़ते थे। रामोपासक उन्हें रामरूप में, कृष्णोपासक कृष्णरूप में और शिवोपासक शिवरूप में देखते थे। हम शिवोपासक थे, इसलिये उन्हें शिवरूप में ही देखते थे। जब उनका शिवरूप से शृङ्गार किया जाता था तो वे साक्षात् शंकरजी ही जान पड़ते थे। उनके सम्बन्ध में यह चौपाई चरितार्थ होती थी—

'निज निज रुचि सब रामहिं देखा। कोई न जान कछु मरम बिशेषा।।'

बाबा में मैंने यह विशेष गुण देखा कि वे गरीब-अमीर का भेद न करके दोनों को समान रूप से प्रेम करते थे। उनके ऐसे-ऐसे भी भक्त थे कि जो हजारों रुपये खर्च कर उनकी सेवा करते थे। परन्तु मेरे मनमें तो इस बात का दुःख रहता था कि हम लोग बिना कुछ खर्च करके भी बाबा की कोई सेवा नहीं कर पाते। तथापि वे हम पर भी उतनी ही कृपा करते थे जितनी हजारों रुपये खर्च करने वालों पर। उनमें यह भी विलक्षण बात थी कि वे किसी के मन को, किसी के भी भाव को ठुकराते नहीं थे। यथासम्भव सभीके मनको रखने का प्रयत्न करते थे। हम लोग गुजराती हैं और प्रातःसायं चाय पीने का अभ्यास

रखते हैं। उसके सिवा और भी जो वस्तु हमें खानी-पानी होती है उसका पहले श्रीभगवान् या गुरुदेव को भोग लगाना आवश्यक समझते हैं। सर्दी हो या गर्मी जबभी हम बाबाके पास जातेतो जो प्रातःकाल चाय तैयार होने पर हम उनके लिये भी अवश्य ले जाते और वे उसे तत्काल पी लेते। उधर ठण्डाई पीने वाले उन्हें ठण्डाई भी पिला जाते। वे लोग हमें चाय पिलाने को मना करते। कहते कि चाय और ठण्डाई दोनों पीने से बाबा को सर्दी-गर्मी का विकार हो जायगा। अतः आप चाय न पिलाया करें। मैं कह देता कि यदि वे मना करेंगे तो मैं नहीं पिलाऊँगा। इसी बात को लेकर एक भक्त एक दिन गङ्गातट पर मुझ से लड़ पड़े। मैंने बाबा से इस विषय में कुछ नहीं कहा। परन्तु उन्होंने स्वयं ही जब वह ठण्डाई लेकर गये तो उन्हें फटकारा और कहा कि तुम उनसे लड़े क्यों? मैं ठण्डाई नहीं पीऊँगा। ऐसी स्थिति में यदि लोगों के डर से मैं चाय ले जाने में झिझकता तो वे कहते, "आज चाय नहीं लाओगे क्या?" तब हम कैसे रुकते। कोई कुछ भी कहे ले ही जाते।

बाबा में संग्रह का स्वभाव बिलकुल नहीं था। चाहे जितना सामान आता वे उसे तुरन्त बांट देते थे। फल, मिष्ठान्न एवं वस्त्रादि कुछ भी हो, उन्हें जोड़कर रखने का संकल्प कभी नहीं होता था। उन्हें कभी किसी ने क्रोध करते नहीं देखा। मानापमान में वे सदैव समान रहते थे। जब आप पैदल विचरते थे अथवा किसी स्थान पर ठहरते थे तो आपके दर्शनों के लिये आस-पास के लोग अपने काम छोड़कर भी पहुँच जाते थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभु के विषय में भी ऐसा ही बात कही जाती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने भगवान् राम के विषय में भी ऐसा ही लिखा है—

धाये धाम काम सब त्यागे। मनहुं रंक निधि लूटन लागे॥'

मेरा तो ऐसा भी विश्वास है कि बाबा दूर के दृश्यों को भी एक स्थान पर बैठे-बैठे देख लेते थे। एक बार मैं कर्णवास में आपके पास था। उस दिन प्रातःकाल घर में (अनूपशहर में) मेरा एक बच्चा मर गया। उधर जब उसका जल-प्रवाह किया जा रहा था मैं कर्णवास में उसी समय गङ्गाजी में दूध चढ़ा रहा था। वहाँ से आते ही बाबा मुझ से बोले, "जा, घर जा।" मैंने सोचा कि अभी तो कोई बात नहीं, न घर से ही कोई आदमी आया है, फिर घर जाने के लिये क्यों कह रहे हैं? पर आप फिर कहने लगे, "ले टिकट ले, घर चला जा।" आखिर सायंकाल तक आदमी भी आ गया। जाने पर मालूम हुआ कि बच्चा जाता रहा।

एक बार मुझे कुछ मानसिक क्लेश था। मैंने इस विषय में बाबा से कोई चर्चा नहीं की। पर वे स्वयं ही कहने लगे, "ये सब तो नाशवान् पदार्थ हैं, इनसे चित्त हटा लो। मन अपने आप स्थिर हो जायगा। सुख-दुःख तो नदी की धारा के समान हैं। ये सदा एक-से नहीं रहते।" इन शब्दों से मेरा बहुत समाधान हो गया।

आपके लीलासंवरण से दस-बारह दिन पूर्व हम वृन्दावन में आपके पास गये थे। उस समय हमें भगवान् कृष्ण के बालरूप की एक प्रतिमा देते हुए आपने कहा, "जा, सब चिन्ता छोड़कर इनकी सेवा-पूजा किया कर।" वह श्रीविग्रह हमारे घर में विराजमान हैं। मुझे तो नहीं, पर एक अन्य व्यक्ति को उस प्रतिमा के विषय में एक बार ऐसा अनुभव हुआ था कि बैठी होने पर भी उन्हें वह अपने आसन पर खड़ी दिखाई दी।

पूज्य श्रीमहाराज जी ने हम लोगों के बीच में रहकर सब प्रकार हमारा संरक्षण किया, हमारे लौकिक और पारलौकिक हित के लिये निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन किया। वे जिस प्रकार उस समय हमारी देख-भाल करते थे उसी प्रकार अब भी करते हैं—ऐसा अनेक भक्तों का अनुभव है। उनका वरद हस्त सर्वदा हमारे सिर पर हैं।



सेठ श्रीकेशवदेव जी, अनूपशहर

मैं सुना करता था श्री उड़िया बाबा नाम के एक अच्छे महात्मा हैं। परन्तु उनका दर्शन नहीं हुआ था। महाराज का प्रथम दर्शन मुझे यहीं रामशंकर जी बाग में हुआ। जिस समय अन्य कई व्यक्तियों के साथ मैं वहां बैठा हुआ था, मुझे अकस्मात् सुगन्ध जान पड़ी। यद्यपि उस स्थान पर कोई सुगन्धित पदार्थ था नहीं। मैंने अनुमान किया यह सुगन्ध बाबाके ही शरीर की है। सन्त-महात्माओं के मुख से ऐसा सुन रखा था कि यों तो जीवन में अनेकों सन्त मिलते है, परन्तु जब सद्गुरु की भेंट होती है, जिनसे कि अपना कुछ कल्याण होती है, तो वहां सुगन्ध आना अथवा स्वतः ही चित्त का आकर्षित होना आदि लक्षण अनुभव में आते हैं। इससे श्रीमहाराज जी में मेरी श्रद्धा हो गयी। उसके पश्चात् जब-जब आप अनूपशहर में पधारते तब तब मैं सेवा में उपस्थित रहता।

वे मुझ पर बहुत कृपा करते थे। अन्य लोगों की भाँति मैं उनसे प्रश्न नहीं करता था। केवल उनकी सन्निधि में बैठते ही मेरी शंकाओं का समाधान हो जाता था। एक बार मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि आसन पर बैठने पर तो शरीर में कोमलता आनी चाहिये, मेरे शरीर में कड़ापन क्यों है? उसी दिन रात्रि में जब हम कई लोग बाबा के पास बैठे हुए थे वे एकाएक आसन लगाकर बैठ गये और बोले, "देखो, हमारे शरीर में कोई कड़ापन नहीं।" मैं समझ गया कि यह मेरे प्रश्न का ही उत्तर है। वास्तव में मेरे आसन में ही त्रुटि है। बाबा को आसन सिद्ध था। दूसरे लोग जितनी देर में कई बार

आसन बदलते हैं उतनी देर वे एक ही आसन से बैठे रहते थे। योग-सिद्धि के लिए जिस प्रकार के आसन का वर्णन सुना जाता है उसी आसन से वे बैठते थे। उस समय उनके नेत्र अर्द्धोन्मीलित रहते थे।

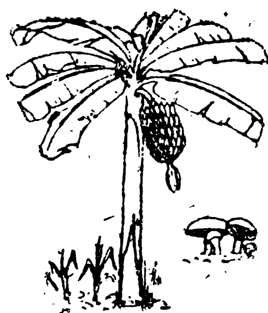
मेरा ऐसा विश्वास है कि बाबा को भविष्य का ज्ञान हो जाता था। मेरे एक कर्मचारी का लड़का पागल-सा हो गया था। एक दिन उसने साँप पकड़कर बाबा के आसन पर छोड़ दिया। वह दूसरे लोगों को बाबा के आगे फल, फूल, मिष्ठान्न आदि भेंट रखते देखता था, उसने साँप ही पकड़कर भेंट कर दिया। उस समय बाबा के मुख से निकल गया, "तेरी मृत्यु साँप काटने से होगी।" उसका यह वचन सत्य हुआ। एक दिन कोई व्यक्ति एक काला विषधर सर्प गंगाजी में छोड़ने के लिये लाया। उस बालक ने उसे सर्प छोड़ने नहीं दिया और स्वयं लेकर सबको दिखाता फिरा। उस सर्प ने ही उसे डस लिया। बहुत उपचार कराने पर भी उसकी मृत्यु हो गयी।

मैं प्रायः देखता था कि रात्रि में वे सबको हटाने के लिये कह देते थे, "सब जाओ, अब मैं सोऊँगा।" तथा नींद में खर्राटा भरने की सी लीला भी करने लगते थे, परन्तु थोड़ी ही देर बाद जाकर हम देखते तो आसन से बैठे दिखायी देते थे।

बाबा की कृपा और उनके सत्संग से मेरे जीवन में बहुत लाभ हुए हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हममें दोष नहीं है। दोष तो है ही, परन्तु हम जो पापों से डरते और अपराध हो जाने पर काँपते हैं—यह भी उनकी कृपा का ही फल है।

पीछे तो बाबा जब अनूपशहर पधारते तो अपने बाग में ही ठह-रते थे। कथा कीर्तन एवं सत्संग आदि का बड़ा सुअवसर

अनायास ही सबको प्राप्त हो जाता था। ऐसे ही अवसर पर मैंने उनका एक फोटो उतरवाया था। वह चित्र आज भी मेरे पास है। कोई चिन्ताजनक परिस्थिति उपस्थित होने पर जब मैं एकाग्र-चित्त से जिज्ञासापूर्वक उस चित्रपट-स्वरूप की ओर देखता हूँ तब यदि वे मुझे मुसकराते हुए और प्रसन्नमन जान पड़ते हैं तो हमारी वह चिन्ता दूर हो जाती है, और यदि उनका उदासीनता का भाव दिखायी देता है तो सफलता नहीं मिलती। ऐसा मेरा कई बार का अनुभव है।



पं० श्रीमोतीदत्त जी शर्मा, अनूपशहर

(१)

मेरे काका पं० गणेशदत्तजी एक सुप्रसिद्ध वैद्य थे। एक दिन उनके शिष्य अंगनलाल वैद्य ने सूचना दी कि रामघाट में उड़ियाबाबा नाम के एक सिद्ध महात्मा आये हुए हैं। परन्तु काकाजी रोगी होने के कारण वहाँ जाने में असमर्थ थे। अतः मुझसे बोले, "तुम उड़िया-बाबा को रामघाट जाकर ले आओ ?" मैंने कहा, "यदि आपकी आज्ञा होगी तो अवश्य जाऊँगा।" फिर बोले, "अच्छा, जाओ मत। यदि वे सिद्ध होंगे तो स्वयं ही दर्शन देंगे।" यह कहकर वे बाबा का चिन्तन करने लगे। मैं नहीं गया।

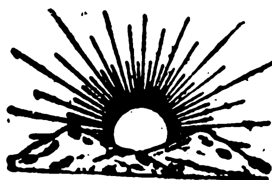
तीन दिन पश्चात् अकस्मात् मैंने देखा कि बाबा हाथ में एक साफी (रूमाल) घुमाते हमारे दरवाजे पर खड़े हैं। उन्हें मैंने प्रणाम किया और तुरन्त भीतर जाकर काकाजी को सूचना दी। वे बाहर आये और बाबा को प्रणाम एक एकान्त कोठरी में ले गये। मुझसे बोले, "तुम पहरा देना, कोई तीसरा आदमी भीतर न आवे।" घण्टेभर तक न जाने क्या-क्या बातें होती रहीं। उसी क्षण से काका-जी की बाबा में अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। बाबा भी जब कभी अनूपशहर पधारते उनसे अवश्य मिलते थे। जब काकाजी का अन्तिम समय आया तब उन्होंने अपने भाई और पुत्र दोनों से कहा कि देखो, तुम उड़िया बाबा जी का पीछा मत छोड़ना।

(२)

काकाजी की मृत्यु के प्रायः दस वर्ष पश्चात् उनके पुत्र भोलादत्त

जी बीमार पड़े । उनकी स्थिति देखकर पूज्य बाबा से दर्शन देने की प्रार्थना की गयी । वे अनूपशहर आये और उन्हें देखते ही पोले, "अब तुम्हारा शरीर रहेगा नहीं, परन्तु आगामी जन्म के कल्याणार्थ मैं अनुष्ठान करा सकता हूँ ।" भोलादत्तजी ने कहा, "आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करें ।" तब बाबा ने कई पण्डितों को बुलाकर पाठ आरम्भ करा दिया । पाठ सम्पूर्ण होने के एक दिन पूर्व आपने पण्डितों से कहा, "कल पाठ पूरा हो जायगा । कल चार बजे तकआप अपना सम्पूर्ण कृत्य समाप्त करके चले जाना, रुकना मत । अपनी दक्षिणा भी लेते जाना । यदि वह न दे तो केशवराम और धीरज-राम से अथवा लल्लूजी से ले जाना । कल रात्रि में उसका शरीर बचेगा नहीं ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही बाबा कहीं अन्यत्र चले गये । सायंकाल-में चार बजे तक भोलादत्तजी ने पण्डितोंको दक्षिणा दिलायी । पण्डित जहाँ-तहाँ चले गये और रात्रि में तीन बजे उनका शरीर पूरा हो गया । जान पड़ता है बाबा को भविष्य का ज्ञान हो जाता था । उनमें महान् गुण थे वे कभी की निन्दा नही करते थे और जिसकी जैसी श्रद्धा होती थी उसके साथ उसी के अनुसार बर्ताव करते थे ।



श्रीयुत श्रीरामजी भारती, अनूपशहर

(१)

बाबा ने कर्णवास से आदमी भेजकर मुझे बुलाया और मैंने वहाँ जाकर सर्वप्रथम उनका दर्शन किया। वैसे वे प्रायः किसी बुलाते नहीं थे, परन्तु मुझे उन्होंने बुलाया। इसका कुछ कारण था, उसे सुनिये।

यहाँ अनूपशहर में एक दण्डिस्वामी आये। वे पहले मुजफ्फर नगर में अध्यापक थे, इसलिये उन्हें पेंशन के कुछ रुपये मिलते थे। जिस समय मैंने उनके दर्शन किये उनकी छाती पर एक पोटली देखी। पूछने पर उन्होंने बताया कि ये पेंशन के पांच रुपये हैं। मैंने कहा "तुम संन्यासी होकर रुपये रखते हो?" बोले, "क्या हर्ज है?" उस समय मेरे पास एक साथी भी था। उससे मैंने कहा कि इस साधु की छाती पर से शिला हटा दो। साथी ने पाँचों रुपये उससे छीन लिये। मैंने उस साधु से कहा कि अभी जाना नहीं, और पांच रुपये का कला कन्द मँगाकर उसे भी खिलाया और दूसरों को बांट दिया। इस पर वह बहुत नाराज हुआ और थाने में रिर्पोट की तथा कप्तान को भी लिखा। जब अगले महीने फिर पेंशन आयी तो उसने उस रुपये से दस बल्लम खरीदे और कई साधुओं को बांट दिये। वह विचित्र साधु था। वह जब कर्णवास में श्रीउड़ियाबाबाजी के पास पहुँचा तो एक बल्लम उन्हें भी दिया और कहा कि एक दुष्ट पैदा हो गया है, उसे मारना है बाबा ने पूछा कि वह कौन है? तो बतलाया, "उसका नाम श्री राम हैं।" बाबा ने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया और मुझेआदमी

भेजकर बुलाया। मैंने कर्णवास जाकर उनका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके बैठ गया। बाबा ने मुझसे सारी बातें पूछीं और मैंने सब बता दिया। इस पर वे बहुत हँसे। उस समय मेरे मन पर उनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया। वैसे मैं थोड़ा विचित्र आदमी हूँ। हर किसी के पैर नहीं पकड़ता। जीवन में यदि किसी के पैर छुए हैं तो एकमात्र श्रीउड़िया बाबा के।

(२)

उसके कई महीने बाद मैं बाबा के दर्शन करने रामघाट गया। उन दिनों उनका नियम था कि दिन में चाहे जितने आदमी आ जायँ परन्तु रात में किसी को अपने पास नहीं ठहरने देते थे। रात के दस ग्यारह बजे तक उन्होंने सबको विदा कर दिया। केवल मैं ही शेष रह गया। मुझ से भी जाने को कहा। पर मैंने कहा कि मैं तो यहीं सोऊँगा। बोले, "यहाँ छप्पर के नीचे तो कोई सो नहीं सकता।" मैंने कहा, "मैं पेड़ के नीचे सो जाऊँगा।" तब बोले कि कुटी के पीछे उस आम के पेड़ के नीचे जो गङ्गाजी की रेत्ती पड़ी है वहां सो जा।'

बस, उन्होंने अपनी किवाड़ें बन्द कर लीं और मैं उस रेती पर जा लेटा। वहां झाड़ी में बघेरा आदि हिंसक जीव भी रहते थे। अतः मेरा मन उधेड़-बुन करने लगा और मैं सोचने लगा कि यह कितना निर्दयी साधु है। आप तो किवाड़ बन्द करके सो गया और मैं यहां अकेला पड़ा हूँ। यदि रात में कोई जानवर आकर मेरा पैर खींचने लगे तो यहाँ कौन बचायेगा? तभी बाबा ने किवाड़ें खोलीं और मेरे पास आकर बोले, "क्यों रे! क्या सोच रहा है पगला!" मैंने कहा, "कुछ नहीं, मैं तो लेटा हुआ हूँ।" तब बोले

"देख, इस गंगारज के भीतर कोई जानवर पैर नहीं रख सकता। इसका जिम्मा मैं लेता हूँ। तू निश्चिन्त सो जा।" मैं वहाँ दो दिन रहा और दोनों रात वही सोया, परन्तु राम में कोई जानवर मेरे पास नहीं फटका। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मैंने बाबा से कुछ भी नहीं कहा था तथापि उनका अकस्मात् कुटी से आना और गङ्गारज में कोई भी जानवर नहीं आ सकता—इसका जिम्मा लेना यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि वे दूसरे के मन की बात जान लेते थे।

(४)

मेरे एक मित्र थे ब्रह्मचारी सहस्रराम। वे मध्यप्रदेश के रहने वाले थे। ब्रह्मचारी प्रभुदत्त, ब्रह्मचारी इन्द्र और ब्रह्मचारी सहस्र राम ने अपना रक्त निकालकर लिखा था कि हम आजीवन देश की सेवा करेंगे। ये तीनों ही काशी से बदरीनारायण की पैदल यात्रा के लिये चले थे। इनमें से ब्रह्मचारी सहस्रराम यहाँ अनूपशहर में आकर रुक गये और काँग्रेस में काम करने लगे। इससे मेरी उनसे मित्रता हो गयी और धीरे-धीरे बाबा से भी उनका सम्बन्ध हो गया। ब्रह्मचारी सहस्रराम थे बड़े विचित्र पुरुष। एक दिन रात्रि के दस-ग्यारह बजे हम दोनों बाबा की चरणसेवा कर रहे थे। उस समय बाबा प्रसन्नचित बैठे थे। तभी ब्रह्मचारी जी ने उनसे प्रार्थना की, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यहां आर्शीर्वाद दीजिये कि मैं आ-जीवन दरिद्र और भूखा रहूँ।" बाबा ने कहा, "अरे भैया! ऐसीबात तुम क्यों करते हो?" ब्रह्मचारीजी ने कहा, "हम दरिद्रता और भूख में जितनी ईश्वरभक्ति और देशसेवा कर सकते हैं उतना धनवान और सुखी बनकर नहीं कर सकते। और हमें जीवन भर करना यही है।

इसलिए मैं तो यही आशीर्वाद मांगता हूँ।" बाबा ने कह दिया, अच्छा भैया जैसी तेरी इच्छा !" उसके बाद जब तक वे जीवित रहे तब तक उनकी ऐसी दशा रही कि महीने में चार-छः फाके अवश्य हो जाते थे। एक बार थोड़ा-सा सामान मैंने उनके यहां भेज दिया तो मुझ पर बहुत विगड़े थे। यों आदमी वे बड़े अच्छे थे।

(५)

जब सन् १९३० के कांग्रेस आन्दोलन में मैं जेल में था। वहां जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी के, जिन्हें काकोरी केस में फांसी की सजा हुई थी, बड़े भाई मेरे साथ रहते थे। एक दिन उन्होंने भोजन नहीं किया। मैं ने उसका कारण पूछा तब उन्होंने बतलाया कि आज के ही दिन मेरे छोटे भाई को फांसी को सजा हुई थी। इसलिये आज मैं भोजन नहीं करूँगा। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने बताया कि उड़िसा प्रान्त के एक ब्रह्मचारी, जिनके दांत आगे को निकले हुए थे, जो जटा बढ़ाये रखते और हाथ में त्रिशूल रखते थे, हमारे घर पर रहते थे। वे हमारे भाई के साथ देश के स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लेते थे। जब जेल से आकर मैंने बाबा से पूछा तो उन्होंने स्वीकार किया। बंग-विच्छेद के रास्ट्रीय संग्राम में देश सेवकों के दो दल बन गये थे—एक तो वे जिनका विश्वास हिंसा द्वारा अँग्रेजों को भगाने में था और दूसरे व जो भजन-साधन और अनुष्ठान द्वारा उन्हें भगाने के पक्ष में थे। बाबा इन दूसरे दलवालों में ही थे। एक बार उन्होंने मुझ से कहा था कि मैं कुछ दिन अरविन्द बाबू के साथ भी रहा था। इसी से सी० आई०डी० विभाग के उच्च आफिसर यह पता लगाने के लिए कि देश की स्वतन्त्रता के लिए वे कितना सक्रिय भाग लेते हैं उनके पास आया करते थे।

पं० नन्नामल मिश्र, अनूपशहर

मैंने सन् १९२०-२१ के लगभग प्यारेलाल के साथ सेठ बालूशंकरजी के बाग में सबसे पहले श्रीमहाराजजी का दर्शन किया। उन दिनों बाबा का शरीर बहुत हल्का था। वे एक साधारण सी चादर ओढ़े शान्त मुद्रा में विराजमान थे। आपकी सन्निधि में थोड़ी देर बैठने से ही मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और मुझे ऐसा लगा कि ये बहुत उच्चकोटि के सन्त हैं। मैंने प्यारेलाल से कहा, "भाई, ये महात्मा तो कोई महापुरुष जान पड़ते हैं, इन्हें अवश्य पकड़ना चाहिये।" फिर तो हम दोनों प्रत्येक महीने, वे जहां भी होते, उनके दर्शनों के लिये जाने लगे।

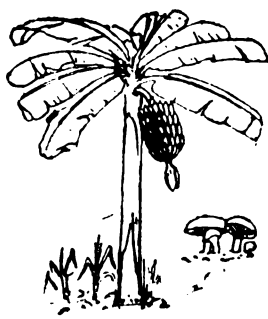
मेरा एक लड़का बहुत होनहार था। उससे हमें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। एक दिन अकस्मात् बिजली का करेण्ट लगने से उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी इस आकस्मिक मृत्यु का मेरे छोटे भाई गोपालप्रसाद एम०ए० पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और दस महीने के भीतर वे भी चल बसे। इन दो प्रियजनों की आकस्मिक मृत्यु का मेरे ऊपर बड़ा भयानक असर हुआ और मैं सख्त बीमार पड़ा। मुझे तोले भर अन्न भी नहीं पचता था। मरणासन्न अवस्था हो गयी। जब जीवन की आशा न रही तो वैद्य लल्लुजी और धीरजरामजी आदि ने सोचाकि इन्हें इस समय बाबाके दर्शन करानेचाहिये। बाबा उन दिनों बाँध के उत्सव में पधारे थे। अतः वह मुझे ताँगे में रखकर बाँध पर ले गये। मेरा छोटा लड़का बाबा को बुला लाया।

मैंने उनके चरण स्पर्श किये। बाबा बोले, "मुझे क्यों बुलाया है?" मैंने कहा, "महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरा शरीर रहेगा या नहीं? इस पर बाबा हँसे और बोले, "तुम्हारा शरीर जायगा नहीं। इस समय तुम्हें किसी महात्मा के सत्संग की आवश्यकता है।" मैंने कहा, "महाराज! मैं तो आपको छोड़कर और किसी महात्मा को नहीं जानता। जो कुछ करना हो आप ही कीजिये।" तब बाबा ने और सबको अलग कर दिया और प्रायः दस मिनट तक मुझे उपदेश देते रहे। उस समय मुझे प्रकाशपुञ्ज का दर्शन हुआ और ऐसा स्पष्ट अनुभव होने लगा कि स्त्री-पुत्रादि का ममत्व मिथ्या ही है। वास्तव में कोई किसी का नहीं है। उस समय मुझेऐसा जान पड़ा कि जैसे किसी के सिर पर भारी बोझा हो, उससे वह दबा जा रहा हो और कोई कृपालु उस बोझ को उतार दे। ऐसी स्थिति में जैसे उसका चित्त हल्का और प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार मेरे मनका भारी भार उतर गया और मुझे बड़े सुखका अनुभव होने लगा उसके पश्चात् धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ दिनों में मैं अच्छा हो गया।

बाबा में मैंने भारी सहिष्णुता देखी। वे प्रायः कहा करते थे कि महात्मा तो वह है जिसकी पूजा हो अथवा अपमान दोनों ही स्थितियों में समान रहे। उनका यह कथन उनमें पूर्णतया चरितार्थ होता था। उनसे कुछ न कहने पर वे हमारी छोटी से छोटी सुविधा का भी ध्यान रखते थे—ऐसी थी उनकी सहृदयता। कभी-कभी कह देते थे, "भैया यह पूर्व जन्म का संस्कार है–कहाँ मेरा जन्म हुआ और कहाँ तुम्हारा, फिर भी तुम लोगों से पूछता रहता हूँ कि भोजन किया या नहीं? कहां सोओगे? यह सब पूर्व जन्म के सम्बन्ध से ही होता है।" मेरा ऐसा भाव था कि जब वे अपने हाथ से देते तभी प्रसाद

लेता था। अतः वे स्वयं ही बुलाकर मुझे प्रसाद देते थे। उनको प्रसन्नता थी।

बाबा ने मुझे भगवान् शिव की आराधना का उपदेश दिया था तथा शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र और गायत्री के जप की आज्ञा दी थी। पीछे रामायणपाठ करने के लिए भी आज्ञा दी। मैं यथासाध्य उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। लीलासंवरण के पश्चात् भी स्वप्न में उनके दर्शन हुए हैं। उनकी कृपा से मुझे जीवन में अनेकों लाभ हुए है, उनका कहां तक वर्णन किया जाय ?



पं० श्रीरामप्रसादजी 'भाईसाहब' व्यायामविशारद अनूपशहर

आरम्भिक परिचय

अब से प्रायः छत्तीस वर्ष पहले श्रीगंगाजी के किनारे एक प्राचीन स्थान के मठ में मैंने श्रीमहाराजजी का दर्शन किया था। उस समय मैंने उनसे एक विलक्षण आनन्द की मस्ती का अनुभव किया। तभी से उनके चरणकमलों में मेरी श्रद्धा-भक्ति हो गयी। जब वे कर्णवास, रामघाट आदि स्थानों में पधारते मैं अवश्य उनके दर्शन करने के लिए जाता और उनके सत्संग से लाभ उठाता। श्रीमहाराज जी की कृपा और उनके सत्संग के प्रभाव से मेरे अन्दर युवावस्थाके वे दोष जो मनुष्यों में प्रायः आ जाते हैं, नहीं आये। उन विकारों से श्रीमहाराज जी ने ही मेरी रक्षा की थी। आप कहा करते थे—"लौकिक या परमार्थिक जो भी उन्नति करनी हो युवावस्था में कर लो। वृद्धावस्था में वह बात नहीं रहती।" यह बात अब मेरे अनुभव में भी आ रही है कि भजन-ध्यान में जो उत्साह और स्फूर्ति जवानी में थी वह अब नहीं रही। काम सब वही हो रहे हैं, पर अब वह आनन्द नहीं है।

पहले मेरी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। पैसा पास नहीं था, न घर का मकान था और न जमीन ही थी। जब से श्रीमहाराज जी के चरणों की शरण ली सब प्रकार मंगल हो गया। मैं तो सब प्रकार अयोग्य ही था, पर उन्होंने कृपा करके मेरी रक्षा की।

बाग के संकल्प की पूर्ति

सन् १९२९ के लगभग मैं आप के दर्शनार्थ रामघाट गया था।

वहाँ सत्संग हो रहा था। अकस्मात् उसी समय मेरे मन में यह संकल्प हुआ कि यदि मेरे पास बाग होता तो श्रीमहाराज जी को ले जाकर उसमें विराजमान कराता। मैंने इस विषय में उनसे कहा कुछ नहीं, परन्तु वे अन्तर्यामी मेरे हृदय के संकल्प को जान गये और अप्रत्याशितरूप से उन्होंने उसे पूर्ण भी कर दिया।

बाग के लिये मैंने भूमि लेनी चाही, परन्तु वह जमीदार के अधिकार में पहुंच चुकी थी और मेरे पास पैसा नहीं था। उसभूमिको लेने के लिये कई बड़े आदमी हजारों रुपये देने को तैयार थे। उस समय बम्बई वाले स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी ने मुझ से कहा, "उस भूमि को लेने के लिए तुम श्रीमहाराज जी के दिये मूल का अनुष्ठान करो।" तब हम दोनों ने चालीस दिन तक अनुष्ठान किया। परिणाम यह हुआ कि जो लोग कोर्ट ऑफ वार्ड्स के सरवराकार को दो-दो हजार रुपये दे रहे थे उन्हें वह भूमि नहीं मिली और मुझे बिना कुछ दिये ही मिल गयी। बस, कुछ दिनों में ही बाग लगा, कुटिया बनी और श्रीमहाराज जी ने पधार कर उसे पवित्र भी किया। इसके पीछे तो वे कई बार उस बाग में पधारे। कभी-कभी कह भी देते थे, "भैया ! यह बाग तो मेरा हैं।" उनकी कृपा से आज वह साठ बीघे का बाग फूल-फल रहा है।

एक बार ऐसा प्रसंग आया कि इस बाग को सिंचाई के लिए मेरे पास पैसा नहीं था। गर्मी की ऋतु थी, अतः वृक्ष सूखने लगे। कोई वश चल नहीं रहा था। अन्ततः मैंने निश्चय किया कि जब तक सिंचाई का प्रबन्ध नहीं होता। मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा, केवल गङ्गाजल पीकर रहूँगा। अब तो निराहार स्थिति में दिन पर दिन बीतने लगे। घर वाले समझते थे कि दुकान पर भोजन कर लेते हैं

और दुकान वाले समझते थे घर पर खा लेते होंगे। पूरे नौ दिन बीत गये। दसवें दिन विचार हुआ कि श्रीमहाराज जी को यह वृत्तान्त सुनाना चाहिए। मैं वृन्दावन पहुँचा और रात्रि में संक्षेप से उन्हें सब हाल सुनाया। वे बोले, "भैया ! ऐसा हट नहीं करना चाहिए भगवत्कृपा से सब ठीक हो जायगा।" फिर श्री बाँकेबिहारी जी का थोड़ा प्रसाद दिया और दूसरे दिन से भोजन करने की आज्ञा दी। मैं आज्ञा लेकर घर आया और उसी दिम मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। एक सज्जन ने इतने रुपये दिये कि सिंचाई का पूरा प्रबन्ध हो गया। यह थी उनकी कृपा।

भगन्दर की चिकित्सा

एक बार मुझे भगन्दर का रोग हो गया। कई साल तक चिकित्सा कराता रहा, परन्तु कोई लाभ न हुआ। डाक्टरों ने सलाह दी कि आपरेशन करालो। मैंने सोचा, पहले श्रीमहाराज जी के दर्शन करके फिर आपरेशन कराऊँगा। बाबा उस समय कर्णवास में थे। मैं वहाँ पहुँचा और संक्षेप में उन्हें सब समाचार सुनाया। वे बोले, "नहीं रे, आपरेशन मत कराना।" मैंने नहीं कराया और भगन्दर ठीक हो गया। तब से अभी तक ठीक है।

श्री महाराज जी ने मेरे लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के कल्याण के लिए मुझे यही उपदेश दिया था कि गायत्री का जपऔर भगवान् शंकर की उपासना किया करो।

व्यायाम और कलाएं

मैं बाबा को प्राचीम कला के खेल दिखाया करता था। व्यायाम का प्रदर्शन मुगदर की जोड़ी हिलाना तथा तलवार और लाठी आदि

चलाना। एक बार उन्होंने रमेशचन्द्रजी की प्रशंसा की और कहा कि मैं तेरा परिचय रमेशचन्द्र से कराऊँगा। किन्तु मैं और रमेशचन्द्र कभी बाबा के पास एकत्रित नहीं हुए। मेरी ऐसी भी धारणा है कि ऐसे गुणी आदमी किसी को अनायास में कलाएँ नहीं सिखाते। अपने अधिक से अधिक प्रेमी से भी इन्हें गुप्त रखते हैं। फिर मेरा तो उनसे कोई सम्बन्ध या परिचय भी नहीं था। केवल श्रीमहाराज जी कीकृपा ही थी कि वे अनूपशहर पधारे। मैंने उनके खेल देखे और वे स्वयं ही मुझ पर ऐसे कृपालु हुए कि उन्होंने अपनी सभी विद्याएँ मुझे बड़े प्रेम से सिखा दी। उनमें मुख्य-मुख्य ये हैं—धनुषविद्या, बाण से हार पहनाना, एकही बाण से दो, तीन या सात लक्ष्य तक बेधना, शब्दवेधी बाण छोड़ना, दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर बाण मारना, एक या दो मोटरों को रोकना, हृदय की धड़कन रोक देना, लोहे के कुण्डल में होकर सारे शरीर को निकाल देना, अड़तालीस घण्टे तक भूमि के भीतर समाधिस्थ रहना इत्यादि। मैं बम्बई आदि नगरों में जाकर इन बिद्याओं का प्रदर्शन कर चुका हूँ।

उनकी कृपा

श्रीमहाराजजी की कृपा अपार है। वे पहले और अब भी समय समय पर स्वप्न में दर्शन देते रहते हैं और कभी-कभी कुछ कह भी देते हैं। अभी हाल में मुझे उनके और श्रीहरिबाबाजी के स्वप्न में दर्शन हुए थे। उन्होंने तो केवल इतना कहा, "क्या है रे!" मैंने कहा, "महाराज जी! सब आपकी कृपा है।"

श्रीहरिबाबा जी ने कहा 'भैया! मर जाना ही सार है।" इस वचन का अभिप्राय मैंने यही समझा कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणों को न्योछावर कर देना चाहिए।

मैं श्रीमहाराज जी की महिमा जितनी अनुभव की है उसका वर्णन नहीं कर सकता। वह कहने की वस्तु है भी नहीं। जैसेकल्पवृक्ष का आश्रय लेने पर सभी संकल्प पूर्ण हो जाते हैं वैसे ही उनकी कृपासे अनेकों मनोरथ पूर्ण हुए है। अनेकों व्यक्तियों ने सामान्य स्थिति से महत्ता प्राप्त की है। अतः उनकी महिमा का क्या वर्णन किया जाय।



एक गरीब लड़की, अनूपशहर

दुर्भाग्य से जीवन के प्रारम्भिक काल में ही मैंने कुछ ऐसी राग-द्वेषपूर्ण बातें सुन ली थीं कि जिनके कारण मैंने निश्चय कर लिया था कि किसी को भी गुरु नहीं बनाऊँगी। मेरे दादा श्वसुरजी बाबाके अनन्य भक्त थे। वे प्रायः बाबा के दर्शनार्थ जाते रहते थे। कभी-कभी उन्हें भिक्षा कराने के लिए घर भी लाते थे। परन्तु मैं अपनी टेक पर अटल रहती। दूर से ही दर्शन कर लेती। एक बार प्रणाम तो किया पर बातचीत नहीं की। अन्त में न जाने बाबा ने क्या जादू किया कि मेरा मन उनके दर्शनों के लिए लालायित रहने लगा। बारम्बारउनके दर्शनों की उत्कण्ठा होती। आखिर मैंने दादा श्वसुरजी से कह दिया कि अब की बार जब आप बाबा के दर्शन करने चलेंगे तो मैं भी साथ चलूँगी। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है।"

अब की बार मैंने उनके साथ रामघाट जाकर बाबा के दर्शन किये। उसके बाद तो मैं कर्णवास, बाँध आदि कई स्थानों पर जाकर दर्शन करती रही। धीरे-धीरे बाबा में मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गयी। मेरे प्रार्थना करने पर बाबा ने मुझे शिवमन्त्र का उपदेश किया और भगवान् शिव की आराधना करने की आज्ञा दी। पाठ करने के लिए उन्होंने मुझे गीता और रामायण की पुस्तकें तथा जप करने के लिए माला भी दी। पीछे कभी-कभी बाबा कह दिया करते थे कि तेरा तो अटल नियम था कि किसी को गुरु नहीं बनाऊँगी, फिर कैसे चली आयी ? मैं भला अब क्या उत्तर देता। यही कह देती कि मेरा तो नियम था ही परन्तु आपने ही न जाने क्या मन्त्र पढ़ दिया। आप

ही जबरदस्ती गुरु बन गये। आपके दर्शन किये बिना मुझे चैन ही नहीं पड़ती थी।

(१)

मेरे लिये बाबा ने जो मन्त्र जप की संख्या बतायी थी वह कम नहीं थी। सोते समय तक भी पूरी नहीं हो पाती थी। रात में जब नींद खुलती तब संख्या पूरी करने लगती। एक बार घर के काम-काज में लगे रहने के कारण मन्त्रजप की संख्या पूरी करना मेरे लिये भार हो गया। मन में झुँझलाहट पैदा हुई। मैं कहने लगी, "यह माला तुमने अच्छी दी। यह पचड़ा अब मुझसे पूरा नहीं होगा। तुम अपनी यह माला लो।" यह कहकर मैं माला को तकिये के नीचे पटक कर सो गयी। उस समय बाबा मेरे पास नहीं थे। रामघाट में अथवा कहीं अन्यत्र थे। आश्चर्य की बात यह हुई कि प्रातःकाल जब नींद खुली तो पूर्वाभ्यासवश संख्या पूरी करने के लिये माला तकिया के नीचे ढूँढ़ने लगी। परन्तु माला नदारद। बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं पता न चला। मेरे कमरे में दूसरा कोई था भी नहीं, जिस पर शङ्का करती। मैं रोने लगी। बड़ी पछतायी। अन्त में जब दादा-श्वसुरजी के साथ रामघाट दर्शन करने गयी तो माला की बात कहकर मैं रोने लगी। बाबा ने माला दिखाते हुए कहा, "यही तेरी माला है ?" मैंने हाथ बढ़ाकर माला ले ली। बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ से बाबा के पास माला कैसे पहुँच गयी। आज तक इसके सिवा इसका और कोई रहस्य समझ में नहीं आया कि यह कोई बाबा की ही सिद्धि थी, जो उन्होंने मेरे मन में माला के प्रति तिरस्कार जानकर उसे वापस ले लिया था।

(२)

मैं एक गरीब लड़की थी। वैधव्य जीवन था। वैधव्य जीवन

दुःखमय तो होता ही है। दुःखों से घबड़ाकर मेरे मन में आत्महत्या-का विचार उठ आया। धीरे-धीरे इस विचार ने दृढ़ता प्राप्त कर ली। उस समय मेरी अवस्था प्रायः बीस वर्ष की होगी। सोच लिया कि मरने पर चाहे कुछ भी हो इन दुःखों से तो पिण्ड छूट जायगा। जब तक आत्महत्या करने का पूर्ण निश्चय हुआ तब तक श्रीहरिबाबा जी के बांध का उत्सव आ गया। यह भी सुना कि वहां बाबा आ गये हैं। तब यह विचार हुआ कि बाबा के अन्तिम दर्शन और कर लूँ। पर कहना किसी से कुछ नहीं है। बाबा से भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। मैं दादा श्वसुरजी के साथ बांध पर गयी और श्रीमहाराज जी के दर्शन किये। वे अन्तर्यामी थे, दूसरे के मन की बात जान लेते थे। पर किसी से कुछ कहते नहीं थे। मैंने कुछ भी नही कहा। वेबिना ही किसी प्रसंग के स्वयं ही कहने लगे, 'खबरदार! तूने मन में ऐसा बिचार किया तो! आत्महत्या का बड़ा भयानक पाप है। इससे कीड़ा मकोड़ा वनेगी। नरक में पड़ेगी।" यह होगा—वह होगा–पचासोंबातें कह डाली और मेरे मनमें ऐसा भय बैठा दिया कि तब से आत्महत्या विचार फिर कभी नहीं उठा।

(३)

यों तो बाबा को भोजन कराने का सौभाग्य मुझे जीवन में कई बार प्राप्त हुआ है, परन्तु एक बार का भोजन कराना मुझे कभी नहीं भूलेगा। मैं दही-भात बनाकर ले गयी थी। देखते ही बाबा बोले, 'बेटा! क्या लाया है?" मैं सदा ही गरीबनी की भांति बाबा के सामने बहुत कम बोलती थी। केवल इतना ही कह सकी "दही-भात लायी हूँ।" बहिनजी आदि ने चादर से पर्दा कर दिया और वे प्रसाद पाने लगे। यह प्रातः ७ बजे का समय था। इस

समय यदि कोई भोजन लाता था तो बाबा प्राय: डाँट दिया करते थे कि यह क्या भोजन का समय है ? परन्तु उस दिन बड़े प्रेम से पाने लगे। बाबा प्राय: बहुत ही कम भोजन करते थे। जरा-मन उठाकर मुँह डाल लेते, परन्तु दूसरों को दिखाते ऐसा थे मानो खूब भोजन कर रहे हैं। यदि कोई दूध का गिलास ले जाता तो मुँह से इतने जोर की चुस्की भरते कि सब लोग समझते खूब दूध पी रहे हैं, चाहे मुँह में एक बूँद भी दूध न जाता। अधिकांश प्रसाद तो भक्तगण ही खाते-पीते थे। परन्तु उस दिन उन्होंने जो प्रसाद पाना आरम्भ किया सो पाते ही गये। कोई-कोई भक्त सोच रहे थे कि हमको थोड़ा प्रसाद तो मिलेगा ही। बहिनजी सोचती थीं कि औरों को न सही, मेरे लिये तो अवश्य थोड़ा प्रसाद छोड़ेंगे। परन्तु बाबा पाते ही चले गये। आखिर, समाप्ति का ढंग देखकर बहिनजी ने धीरे से कह भी दिया, "थोड़ा सा प्रसाद तो छोड़ दो।" पर बाबा ने उन्हें डाँट दिया, "चुप रह।" सब प्रसाद पाकर वे कटोरी को धोकर पी गये। वैसे वे कभी कटोरी धोकर नहीं पीते थे। न उनकी ऐसी आदत थी। परन्तु मुझ अभागिनी को यह मालूम नहीं था कि मैं उन्हें यह अन्तिम भोजन करा रही हूँ। पता नहीं, शायद वे यही सोच कर इतने प्रेम से भोजन कर रहे थे कि अब इस जीवन में फिर इसका भोजन नहीं करना है।

(४)

यह उस समय की घटना है जब बाबा को लीलासंवरण किये ढाई वर्ष बीत चुके थे। मेरे भतीजे की बहू का मस्तिष्क विक्षिप्त था। वह सदैव दु:ख-शोक का ही अनुभव करती थी। सुख-शान्ति उसके लिये कही थी ही नहीं। अन्त में एक दिन उसने पास के कुएँ

में गिरकर आत्महत्या कर ली। प्रातःकाल का समय था। मेरे तो होश उड़ गये। मैं कोई बी० ए०, एम० ए० पास शिक्षित लड़की तो हूँ नहीं। वैसे भी सीधी और गरीबनी ही थी। पुलिस आयेगी, हथकड़ी-बेड़ी पड़ेगी और न जाने क्या-क्या दुर्दशा होगी—इस प्रकार की आशंकाओं से हृदय घबड़ा उठा। पूजन का समय था। मैं ठाकुरजी और (चित्रपटरूप) श्रीमहाराजजी का पूजन करती थी परन्तु उस दिन भय और घबराहट के कारण पूजन में लेशमात्र भी मन नहीं लगा। बारम्बार यही विचार कि पुलिस आ रही होगी अब हथकड़ी-बेड़ी पड़ेगी, चित्त में उठता रहा। उसी समय मैंने बाबा की आवाज सुनी—"घबड़ा मत, कुछ नहीं होगा।" प्रत्येक व्यक्ति की आवाज भिन्न-भिन्न होती है। शरीर भले ही न दीखे, केवल आवाज से ही यह जाना जा सकता है कि कौन बोल रहा है। वह आवाज बिल्कुल बाबा की ही थी। वे जिस प्रकार बोला करते थे ठीक उसी स्वर और ध्वनि से युक्त थी। उनके उस वचन से मुझे ढाढस हुआ। अन्त में सेठ केशवराम आदि बाबा के कुछ प्रेमी आये और थानेदार को सूचना देकर पचायतनामा बनाकर बयान दिया। लाश निकलवा कर अग्निसंस्कार कर गङ्गाजी में बहा दी गयी। मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। श्रीमहाराजजी ने जैसा आश्वासन दिया वैसा ही करके दिखा भी दिया।

(५)

मेरा नियम था, मैं बाबा से कभी कोई चीज मांगती नहीं थी। उन्होंने स्वयं ही मुझे अपना एक चित्रपट और एक चादर दी थी। उनमें पूजन के लिये चित्रपट और स्मृति के लिये चादर अमूल्य सम्पत्ति है। मैं बाबा से बहुत कम बोलती थी। गरीबनी की भाँति

बैठी रहती थी। मेरा तो एक यही बल था कि रो देती थी और वे कृपालु मेरी दीनता देख कर मुझ पर दयादृष्टि रखते थे। वे अब भी मेरे पास हैं और मैं उनके पास हूँ। मैं उन्हें नहीं भूलती और वे मुझे नहीं भूलते। अब भी जब कभी मैं रोकर उनसे प्रार्थना करके सोती हूँ तो अवश्य ही वे स्वप्न में दर्शन देते हैं, सान्त्वना देते हैं और धीरज बँधाते हैं। यह हो नहीं सकता कि मैं रोकर सोऊँ और वे स्वप्न में मुझे दर्शन न दें। ऐसी है उनकी कृपा।



श्री भगवतीप्रसाद जी, अनूपशहर

हम तो बाबा का फूलों से शृङ्गार करने वाले सेवक हैं। हमारे तीन त्यौहार हैं—श्री कृष्णजन्माष्टमी, होली और गुरुपूर्णिमा। हमारी श्रीकृष्णजन्माष्टमी बाबा के यहाँ, होली श्री हरिबाबाजी के यहाँ और गुरुपूर्णिमा स्वामी श्री शास्त्रानन्दजी के यहां होती है। एक कृष्णजन्माष्टमी की बात है। बाबा रामघाट में थे, हम भी पहुँच गये। हमें तो फूलों की आवश्यकता थी; चाहे जहाँ से मिलें और चाहे जैसे मिल सकें। कभी-कभी तो रामघाट में बाबा के रहने पर हमें फूलों के लिये डिबाई तक दौड़ लगानी पड़ती थी। हम फूल ढूढ़ते-ढूढ़ते एक बोहरे के बगीचे में पहुँचे। उसने मना कर दिया। मैंने कहा, "मैं फूलों को बेचता तो हूँ नहीं, मुझे तो बाबा के पूजन के लिये फूलों की आवश्यकता है।" वह बोला, "बाबा-फावा कौन होते हैं? मैं कहता हूँ कि तुम फूल नहीं ले जा सकते।" मैं लौट आया और दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही उसके बाग पर ताँगा जा भिड़ाया। उसके सारे फूल, पत्ते और केले के खम्भे तोड़कर ताँगे में भर लिये और रामघाट चला आया। देखते ही बाबा बोले, "अरे भैया! तू न जाने यह किसका बाग नोंच-खसोटकर ला रहा है? वह देखेगा तो क्या कहेगा?" बस, हमने जन्माष्टमी पर खूब सजावट की और फूलों का शृंगार किया। बड़ा आनन्द आया। इसी समय हमें बोहरा भी आता दिखायी दिया। मैंन अपने साथी से कहा, सागर! बोहरा तो आ रहा है।" वह बोला, "आने दे। हमने क्या किसी के घर डाका डाला है। सब माल यहीं तो लग रहा है।" बोहरा आया और उसने वह सब सजावट देखी। परन्तु बाबा के प्रभाव से वह

बोला कुछ नहीं, चुपचाप लौट गया।

बाबा कभी-कभी कहा करते थे कि भगवती ! तुम ने नीलकण्ठ महादेव का दर्शन किया है ? कभी ऋषिकेश जाओ तो दर्शन करना। एक बार संयोगवश भगवान् स्वामी, कन्हैयालाल, गौरीशंकर और मैं ऋषिकेश गये। वहाँ से हम सब नीलकन्ठ पहुँचे। सबने दर्शन किया। रात्रि में और लोग तो दूसरी जगह सोये, पर मैं नीलकण्ठ महादेव के सामने बरामदे में बैठ गया। मन ही मन सोचनेलगा, 'बाबा कई बार कहा करते थे कि तुम ऋषिकेश जाओ तो नीलकण्ठ महादेव के दर्शन अवश्य करना। देखें यहां क्या लीला दिखाते हैं ?', मैं यह सोच ही रहा था कि अकस्मात् सामने का दृश्य बदल गया। नीलकण्ठ महादेव का दर्शन लुप्त हो गया और उसके स्थानपर बाबा बैठे दिखायी दिये। उनके चारों ओर ऐसा महान् प्रकाश-पुञ्ज दिखायी दिया, जिसके आगे बिजली का प्रकाश तो कुछ भीनहीं है। बाबा का अद्भुत श्रृङ्गार था। फूलों की सजावट, डमरू, त्रिशूल और कमण्लु आदि सभी थे। सिर पर जटाजूट था, जिसमें से एक ओर श्री गङ्गा जी की धारा गिर रही थी। मैं आश्चर्य चकित होकर देख रहा था। बाबा बोले, "देख, मेरा असली श्रृङ्गार यह है।" इसके पश्चात् वह दृश्य समाप्त हो गया।

मैंने सोचा, शायद चिन्तन कर रहा था, इससे ऐसा दृश्य दिखायी दिया। लेट गया, तब भी वही दृश्य। फिर तो वह दृश्य मन में ऐसा बसा कि हर समय दीखने लगा। खाना नहीं सोना नहीं, बोलना नहीं, एक दम बेहोश। इसी बीच में मुझे ज्वर हो गया। लोग जैसे-तैसे मुझे वहां से लाये। तीन दिन बाद वह दृश्य बन्द हो गया। लौटने पर बाबा को भी वस सब बात सुनायी। इस के पश्चात् फिर वह भाव नहीं आया।

श्री हरिशंकर जी गुप्त कैमिस्ट (अनूपशहर)

पूज्य श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन मुझे अनूपशहर में ही हुआ था। परन्तु उनका दर्शन करने में मेरा उद्देश्य भगवत्प्राप्ति या ब्रह्मज्ञान जैसी कोई वस्तु नहीं थी। जैसे अनेकों लोग प्रसाद पाने के लोभ से चले जाते हैं, वैसे ही मैं भी जाता था। उस समय मेरी आयु सोलह-सत्रह साल की होगी। मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था।

बाबा से मेरा विशेष सम्पर्क कर्णवास में हुआ। सन् १९३३ या ३४ की गुरुपूर्णिमा कर्णवास में हुई थी। उस समय उनके दर्शनार्थ मैं वहाँ गया था। एक दिन आप सत्संग में प्रवचन कर रहे थे। विषय था प्रेम। मैंने बीच ही में प्रश्न कर दिया—"प्रेम किसे कहते हैं और मोह क्या है? परन्तु बाबा मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर प्रवचन करते रहे। गलती मेरी ही थी। मुझे बीच में प्रश्न नहीं करना चाहिये था। थोड़ी देर में वहाँ से उठकर अन्यत्र चला गया। जब प्रवचन समाप्त हुआ तो बाबा ने चौबे से पूछा, "वह लड़का कहाँ गया जिसने प्रेम और मोह का अन्तर पूछा था? उससे कह देना कि तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कल दिया जायगा।" दूसरे दिन आप मुझसे बोले, "ईश्वर गुरु और माता-पिता में जो राग होता है उसे प्रेम कहते हैं और इनके अतिरिक्त स्त्री, पुत्र एवं धनादि में जो राग होता है वह मोह होता है।" मैंने अनुभव किया कि उसी समय से बाबा की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी। उन्होंने मुझे प्रसाद बांटने का काम सौंपा और वह सेवा मैं कुछ दिनों तक वहाँ रहते हुए करता रहा।

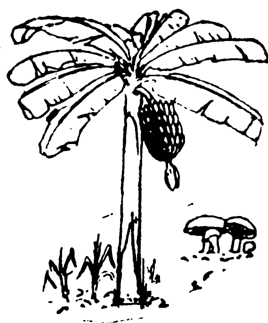
अब तो मेरा यह स्वभाव ही बन गया कि जो भी काम करना

होता उसके विषय में पहले बाबा से पूछ लेता। जब मेरे विवाह का प्रसंग आया तो उसके विषय में भी मैंने आपसे पूछा। आपने मना कर दिया कि उस लड़की से विवाह मत करो। परन्तु अन्य कई कारणों से माता-पिता ने वहीं शादी कर दी। हमने पूज्य श्रीमहाराजजी की बात नहीं मानी, अतः उसका दुष्परिणाम हमें भोगना पड़ा।

जब दसवीं कक्षा की परीक्षा देने का अवसर आया, मैंने बाबा से आज्ञा माँगी। आपने आज्ञा दे दी। मैंने परीक्षा दी, परन्तु दो प्रश्न-पत्र बिगड़ गये। मुझे सफलता की कोई आशा न रही। कुछ दिनों पश्चात् बाबा अनूपशहर आये। मैं दर्शन करने के लिये गया। वे गंगास्नान करके एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे। मैं वहां पहुँचा और प्रणाम करके बैठ गया। परीक्षा में फेल होने से विद्यार्थी को कितना दुःख होता है यह वे ही जानते हैं जो कभी फेल हुए हैं। कोई तो आत्मघात तक कर लेते हैं। मैं उदास मुख सिर नीचा किए बैठा था। बाबा ने नेत्र खोले और पूछा, "परीक्षा दे आया ? मैंने कहा, "हाँ, दे आया।" मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि इतने महान् और इतने बड़े-बड़े आदमियों से पूजित होने पर भी बाबा मेरी इतनी छोटी बात पर भी ध्यान रखते हैं। फिर बोले, "मुँह क्यों लटका रखा है ?" मैंने केवल इतना ही कहा बाबा, "बाबा ! क्या बताऊँ ?" पर वे सब समझ गये। बोले, "बावला ! मेहनत नहीं करता है और अब मुँह लटकाता है।" इसके पश्चात् पाँच मिनट तक फिर ध्यानस्थ और मौन रह कर बोले, "मैंने तुझे दो नम्बर से पास किया। पर आगे खूब मेहनत करना।" बाबा अँग्रेजी नहीं पढ़े थे। वे सैकण्ड डिवीजन को ही 'दो नम्बर' कहते थे। बस, मैं खुशी-खुशी घर चला आया। मुझे विश्वास हो

गया कि जब बाबा ने कह दिया है तो अवश्य पास हो जाऊँगा। जब परीक्षा फल प्रकाशित हुआ तो मैं द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण था। इसके भीतर क्या रहस्य था, सो तो वे ही जानें।

पीछे श्री महाराज जी ने मुझे आज्ञा दी थी कि अपनी आय का दशमांश धर्मार्थ खर्च करते रहना। परन्तु खेद है, मैं उनकी आज्ञा का पूर्णतया पालन नहीं कर सका।



श्रीज्वालासिंहजी प्रबन्धक भृगुक्षेत्र, भेरिया

आरम्भिक जीवन

पहले मैं नरदौलीघाट जिला एटा में श्रीअच्युत मुनिजी के पास रहता था। उन्होंने एक दिन मुझ से कहा कि जिला बुलन्दशहर में उड़िया बाबा नाम से प्रसिद्ध एक अच्छे महात्मा रहते हैं। यदि तुम कभी उस प्रान्त में जाओ तो उनके दर्शन करना। सन् १९२९ में जब मैं भेरिया आया तो श्रीअच्युत मुनि जी की आज्ञानुसार गिरधारी लालजी के साथ बाबा का दर्शन करने के लिए कर्णवास गया। वहाँ पहुँचकर मैंने बाबा का दर्शन किया तो मुझ पर उनका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उनका अनेकों नर-नारियों से घिरे रहना तथा भक्तों के खिलाने-पिलाने और आने-जाने की व्यवस्था में व्यस्त रहना मुझे पसन्द नहीं आया। उन दिनों मेरे मन में योग के कुछ संस्कार थे। दो-दो घण्टे त्राटक का अभ्यास करता था। मनमें यह जाननेकी इच्छा थी कि योग की कौन-कौन सी सिद्धियां होती हैं और उन अवस्थाओं में योगी का शरीर किस-किस प्रकार का हो जाता है? एक बार श्रीअच्युत मुनिजी से मैंने यह प्रश्न किया था, परन्तु उन्होंने यह कह कर फटकार दिया कि भक्त को इन बातों से क्या मतलब। बाबा की बहुत प्रशंसा सुनकर यही प्रश्न मैं उनसे पूछना चाहता था। परन्तु उनके यहाँ का रङ्ग-ढङ्ग देखकर मन में अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी, इससे पूछ न सका।

रास्ते में—

"उघरहिं बिमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के।
सूझहिं रामचरित मणि-माणिक। गुप्त प्रगट जो जहँजेहि खानिक॥"

इन गुरुवन्दना की चोपाइयों को गुनगुनाता हुआ वापिस लौट आया। मन में सोच लिया, यह भृगुक्षेत्र सिद्धभूमि है। यहाँ असंख्य सन्तों ने भजन किया है। यहीं कभी न कभी मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जायगा। रात्रि को भगवान की आरती हो जाने के बाद मैं सोया और स्वप्न में मैंने जो दृश्य देखा वैसा न तो पहले कभी देखा था और न उसके पीछे कभी देखने को मिला। मैंने देखा कि बड़ा भारी प्रकाश छाया हुआ है। वहीं एक महल है। उस मेंसे एक पन्द्रह-सोलह वर्ष कीआयु के छोटे से उड़िया बाबा निकले। उनका वेष सन्यास का ही था और आगे को दाँत भी निकले हुए थे। वे पुस्तक लेकर पढ़ने को बैठ गये। उसके बाद एक बहुत बड़े उड़िया बाबा निकले। उनका मुँह सिदूर आकाश में दीख रहा था और चरण फटी हुई पृथ्वी में ऊपर दिखायी देते थे। फिरएक बहुत मोटे उड़िया बाबा निकले, जो सामान्यआकार से बीसों गुना मोटे थे। उसके पश्चात् एक बहुत ही दुबले-पतले हड्डी के ढाँचामात्र उड़िया बाबा प्रकट हुए। फिर एक ऐसे उड़िया-बाबा दीखे जो आकाश में उड़ रहे थे। तदनन्तर एक उड़ियाबाबा चट्टी पहनकर समुद्र पर चलते दिखायी दिये। फिर अनेकों प्रकार के पशु-पक्षियों के रूप में उड़िया बाबा दीखे, जिनका और सब शरीर तो उन-उन पशु-पक्षियों के समान था परन्तु मुख उड़िया बाबाजी का-सा था। फिर अशरफियों के ढेर पर बैठे हुए उड़ियाबाबा देखे और उसके पश्चात् अनेकों उड़िया बाबाओं का बजार-सा देखा, जिसमें विविध प्रकार के उड़ियाबाबा थे। फिर वे सभी स्वरूप अदृश्य हो गये। महाराज जी बोले, "देखा, ये ही योग की सिद्धियाँ है।" तत्पश्चात् वह स्वप्न भङ्ग हो गया।

उसके कुछ दिनों पश्चात् अनूपशहर में मुझे बाबा के दर्शन हुए।

वहाँ पं० बद्रीप्रसादजी द्वारा लिखित योग प्रदीप नामक ग्रन्थ की कथा हो रही थी। उसमें उन्हीं सिद्धियों का प्रसंग चल रहा था जिन्हें मैंने स्वप्न में देखा था। कथा के अन्त में बाबा ने मुझ से कहा, "समझ लिया।" इससे मैंने समझ लिया और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि बाबा योगिराज हैं और दूसरों के मन की बात जान लेते हैं। बाबा ने ही कृपा करके मेरे मन का समाधान करने के लिए स्वप्न में वे सब दृश्य दिखाये थे। यद्यपि मैंने उनसे पूछा कुछ भी नहीं था, तथापि उन्होंने मेरे मन की बात जान ली थी। उसके पश्चात् बाबा जहाँकहीं भी रहते मैं उनके दर्शनों के लिए अवश्य जाता, क्योंकि उनके प्रति मुझे अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी।

स्वप्न में समाधान

इसके कुछ वर्षों बाद मेरे मन में यह जिज्ञासा हुई कि ज्ञानी ज्ञान की सात भूमिकाओं में किन-किन अवस्थाओं को प्राप्त होता है और उन-उन अवस्थाओं में उसके आहार-विहारादि आचरण कैसे होते हैं? एक दिन मैंने सुना कि बाबा हाथरस में हैं। मैंने वहाँ जाकर उनका दर्शन किया और रात्रि में सोना तो स्वप्न में देखा कि मेरे ही साथ स्वरूप सात स्थानों में बैठे हैं और मैं उनका द्रष्टा होकर सबको देख रहा हूँ। उनमें से चार स्वरूप तो बोलते-चालते हैं और तीन मौन हैं। उन तीनों की बड़ी विलक्षण अवस्था है। इतने ही में बाबा के दर्शन हुए और वे बोले, "ये अवस्थाएँ बहुत शीघ्र ही तुम्हें लिखने को मिलेगी।" उसके दो दिन पश्चात् बिठूर से श्रीयुगलानन्द ब्रह्मचारी आये। उन्होंने मुझे सात-आठ श्लोक लिखवाये, जो सब मेरे प्रश्न के ही उत्तर थे। उनमें से निम्नलिखित श्लोक ने मेरी इस शंका का भी समाधान कर दिया कि बाबा जब कथा या सत्संग में

बैठते हैं तब ऊँघते क्यों रहते हो—

'अन्तर्मुखतया तिष्ठन् बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥'

अर्थात् जो महात्मा बाह्य व्यापारों में रहते हुए भी अन्तर्मुख होकर ही रहता है वह परिश्रान्त-सा (थका-सा) रहने के कारण निद्रालु-सा दिखलायी देता है ।

अद्भुत चिकित्सा

सन् १९२५ ई० से ४४ ई० तक मैं भयंकर वायुरोग का रोगी रहा हूँ। मुझे गृध्रसी (साइटिका) और आमबात (गठिया) थी। सारे शरीर की हड्डियों में दर्द होता था। वातोन्माद के दौरे आते थे। पाँच-पाँच, छः-छः घण्टे तक बेहोश रहता था तथा शरीर में पक्षाघात (लकवा) के बहुत से चिन्ह प्रकट हो गये थे। श्रीअच्युत मुनिजी ने कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली के डाक्टरों से चिकित्सा कराने में सहस्रों रुपये खर्च कराये। देशी इलाज भी बहुत हुए, परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में महाराज जी ने कहा कि अब कोई इलाज मत कराओ, केवल भगवान् से प्रार्थना करो। इसके कुछ ही दिनों पश्चात् कर्णवास से बाबा पधारे। मुझे दुःखी देखकर बोले, "भगवान् की जब महान् कृपा होती है तब इस शरीर में पूर्व-जन्मों के कर्मों का फल भोगने को मिलता है। इसे तुम प्रभु की कृपा ही समझो।"

बाबा रात को आश्रम में ही ठहरे। रसोइया इन्हें पिलाने के लिए रात्रि में आधा सेर दूध ले गया। परन्तु उन्होंने पीया नहीं। रसोइया ने वह दूध अलमारी में रख दिया। उसी अलमारी में वैद्य

रेवतीबल्लभजी का निकलवाया हुआ आधा सेर आक का दूध भी रखा था। प्रातःकाल होने पर बाबा श्रीअच्युतमुनि जी के पास अनूपशहर चले गये। मुझे बात के प्रकोप से बड़ी प्यास लगी। मैंने सोचा रात का जो बाबा का प्रसादी दूध रखा है उसे पी लूँगा। परन्तु उसे तो रसोइया ने पी लिया था। मैंने उसी के भ्रम में आक का दूध गर्म किया और उसमें प्रसाद के आठ पेड़े मिलाकर पी लिया। कुछ खट्टा तो लगा, परन्तु समझा कि पीतल के गिलास में रहने के कारण खटाई आ गई होगी। इसके आधा घण्टे पश्चात् शरीर में दाह उत्पन्न हुआ तथा नाड़ियों में ऐंठन और बेहोशी होने लगी। आश्रम में एक सिविलसर्जन स्वामी थे। उन्होंने देखकर कहा, "तुम ने विष खा लिया है। शरीर का बचना कठिन है।" तब मैंने समझा कि मैं आक का दूध पी गया हूँ। मैंने सोचा कि अब अनूपशहर चलकर श्रीमहाराज जी (श्रीअच्युत मुनिजी) के चरणों में ही शरीर छोड़ना चाहिए। अतः तुरन्त लाला बाबू की कोठी पर पहुँचा। वहाँ महाराज जी कुर्सी पर बैठे थे और बाबा तख्त पर विराजमान थे। श्रीहरि बाबाजी भी वहीं बैठे थे और श्रीभोलेबाबाजी वेदान्तछन्दावली सुना रहे थे। मैंने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और बैठ गया।

कथा समाप्त होने पर मैंने सारा हाल कहा। महाराज जी ने तुरन्त वैद्य-डाक्टर बुलाये और उपचार कराया, परन्तु लाभ कुछ न हुआ। मैं बेहोश पड़ा रहा। धीरे-धीरे पांच-छः दिन पश्चात् स्वयं ही हालत ठीक हो गयी। फिर न तो गृध्रसी रही, न मूर्च्छा के दौरे और न हड्डियों में दर्द रहा। परन्तु शरीर में दाह होने के कारण इन दिनों ठण्डे पदार्थों का अधिक सेवन किया था और जल में भी

बहुत देर तक बैठा रहा था, इसलिए शरीर सुन्न हो गया। पांच-छः वर्ष तक ऐसी दशा रही और केवल औषधियों के बल पर ही शरीर चलता रहा। श्रीहरिबाबा जी और सेठ आदित्यनारायण जी आदि ने डाक्टर हंसराज आदि बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखलाया। परन्तु सब से निराश होकर लौटना पड़ा।

एक दिन मैं अनूपशहर में श्रीनन्नामल जी की बैठक में तख्त पर लेटा हुआ था। सामने पूज्य बाबा का चित्रपट था। उसका दर्शन कर रहा था। जीवन से निराश हो चुका था। ऐसा जान पड़ता था, अब दो-तीन दिन में ही शरीर छूट जायगा। मस्तिष्क काम नहीं देता था। अकस्मात् बाबा के चित्रपट में ध्यान लगाये मुझे नींद आ गयी। मैं स्वप्न देखने लगा। बाबा हाथ में कमण्डलु लिए खड़े हैं और मुझ से कह रहे हैं, "ठाकुर ! तू बाजीकरण खा।" फिर आँखे खुल गयीं। मैंने श्री लल्लूजी से बाजीकरण देने को कहा। वे बोले, "बाजीकरण खाना तुम्हारा काम नहीं है। और बाजीकरण तो कई प्रकार का होता है। तुम्हें कौन सा दिया जाय ?" मैंने कहा, "आप सबको मिलाकर पुड़िया बनादें।" उन्होंने सात पुड़ियाएँ बनाकर दीं। मैंने उनमें से एक खायी तो मुझे सारे शरीर की हड्डी और नाड़ियों के दर्शन होने लगे तथा रक्त संचार भी होने लगा। शरीर में अद्भुत चमत्कार और बल की स्फूर्ति जान पड़ी। मैं शेष पुड़ियाएँ लेकर भेरिया चला आया। ....

दूसरे ही दिन पता चला कि बाबा भिरावटी में हैं। मैं सवारी द्वारा भिरावटी पहुँचा। सातों पुड़िया खा लेने पर मेरा शरीर निरोग हो गया। जब बाबा का दर्शन करने गया तो वे हँसकर कहने लगे, "अब तो तू ठीक हो गया। अब तुम इस औषधि को भगवान् का महा-

प्रसाद समझकर सेवन करो।" तब से अब तक मैंने सहस्रों रोगियों को वह औषधि दी है और बाबा की कृपा से शत-प्रतिशत रोगियों को उससे लाभ हुआ है। पन्द्रह-बीस वर्ष के भीतर सहस्रों पक्षाघाती, अपाहिज, राजयक्ष्मा वाले और बात रोगी उससे अच्छे हो चुके हैं। मैं बाबा के प्रताप से जीवन भर इसी औषधि के द्वारा जनता-जनार्दन की सेवा करना चाहता हूँ।

चोर का पता लगा

पहले मेरे यहां सोलह-सत्रह बार चोरियाँ हुई। चोरों का पता लगता नहीं था। एक बार दीपमालिका से पहले चोरी हुई। मैंने वृन्दावन जाकर पूज्य बाबा का दर्शन किया। बाबा ने पूछा, 'तू उदास क्यों है ?' मैंने कहा कि महाराज ! बड़ी-बड़ी चोरियाँ हो गयीं हैं और चोर का पता लगता नहीं है।" वे बोले, "अबकी बार चोर का पता लग जायगा और आगे चोरी भी नहीं होगी।" इसके थोड़े दिनों पश्चात् चोर का पता लग गया। उस चोर की अपनी स्त्री के साथ लड़ाई हो गयी। उसने स्त्री को बहुत पीटा और सब जेबर लेकरअपने सम्बन्धी के यहाँ चला गया। उसने उसे कत्ल कर दिया और वे सब जेबर स्वयं ले लिये।

नई कोठरियों की प्रतिष्ठा

एक दिन रात को स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया और बोले, 'फलाहार का प्रबन्ध कर, आज मौनीबाबा आ रहे हैं।" बस, उसी दिन दस-ग्यारह बजे मौनीबाबा आ गये। मैंने उन्हें स्वप्न का सारा हाल सुनाया। वे बोले, "जैसे गाड़ी छूटने से पहले तार बाबू आगे को तार देता है कि गाड़ी जा रही है, लाइन साफ रखो, उसी प्रकार

बाबा ने आगे से तुम्हें फलाहार का प्रबन्ध करने की सूचना दी थी।" मैंने कहा, "बाबा ने आपके आने की सूचना दे दी थी, अब आप बाबा को ले आओ।" वे बोले, "वे तो रास्ता चलते मिल जायँगे।" ऐसा ही हुआ। सीताराम बाबा श्रीहरिबाबा जी को ले आये और बाबा अनूपशहर जा रहे थे, सोमैं जाकर प्रार्थना करके उन्हें ले आया। फिर तो कीर्तन और श्री रामायण जी का गान होने लगा। आश्रम में कुछ नयी कोठरियां बनी थीं। इस प्रकार महापुरुषों के पधारने से उनकी प्रतिष्ठा हो गयी।

पूज्य बाबा के ऐसे ही अनेकों विचित्र चरित्र हैं, उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय ?



श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण'

गोरखपुर

पूज्यपाद श्री उड़िया स्वामीजी यथार्थ में क्या थे, कैसे थे, इस सम्बन्ध में मैं कैसे कुछ कहूं। मेरी समझ से वे पूर्ण महात्मा थे। मैंने उनका अत्यन्त स्नेह प्राप्त किया था। मुझ पर उनकी बड़ी कृपा थी, इसे मैं अनुभव करता हूं। मैंने उनसे एकान्त में अनेक बार बातें कीं—तत्त्व के सम्बन्ध में भगवत्प्रेम के सम्बन्ध में और रस के सम्बन्ध में भी। व्यक्तिगत बातें भी मैंने उनसे बहुत बार कीं—जिनमें कुछ ऐसी भी थी जो उनके जैसे सत्पुरुष के सामने, उन्हीं के सम्बन्ध में, मुझ जैसे नगण्य व्यक्ति को नहीं करनी चाहिये थीं। पर उन्होंने उनका जो उत्तर दिया, वह अपार स्नेह भरा तो था ही, संतोषित भी था। उनके उत्तर ने मुझे संतोष प्रदान किया और शिक्षा भी तथा सुख भी।

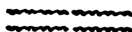
एक बार वे बांध पर गङ्गास्नान कर रहे थे। उस समय कुछ बच्चे उन पर निस्संकोच पानी उलीचने लगे और स्नान कर लेने पर उनके कौपीन के लिये भी उनमें खींचातानी होने लगी। मैंने कुछ प्रतिवाद-सा किया। तब उन्होंने मुझसे कहा—'बताओ, मैं क्या करूं इनसे लड़ूं या भाग जाऊं? एक ओर जहाँ वे बड़े महान्, ज्ञान के भण्डार, गम्भीर तत्वज्ञ थे, दूसरी ओर अत्यन्त सरलतासे बच्चोंके साथ खेलते थे। प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर एक बार एकान्त में खानपान के विषय में मैंने कुछ शिकायत की और

मैंने कहा—ऐसा नहीं करना चाहिये, वैसा नहीं करना चाहिये। वे हँसकर बोले 'तो तुम बताओ, जैसे करूँ, कभी-कभी तो मुझे साठ-साठ घरों में भिक्षा करनी पड़ती है। मेरा पेट भर जाता है, मैं खाना नहीं चाहता तो लोग मेरे हाथ पकड़कर जबरदस्ती मेरे मुँह में भोजन सामग्री ठूँसने लगते हैं। बताओ मैं क्या करूँ। दो एक बार तो मैं चुपके से भाग भी गया था पर मुझे पकड़ लाये।

मैं उनसे एकान्त में संकोच छोड़कर बातें करता था। बड़ा ढीठ हो गया था परन्तु उन्होंने सदा ही स्नेह किया, यहाँ तक कि मेरे सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें वे अपने भक्तों में से कुछ को कह गये कि जिनसे उनका अत्यधिक स्नेह सिद्ध होता है। मैं तो उनके उन वचनों को आशीर्वाद मानता हूँ।

उनका स्मरण करके मैं पवित्रता का अनुभव करता हूँ। इस समय भी उनका वह प्रसन्न वन्दनारविन्द मेरे मानस नेत्रों के सामने है। वे मुस्करा रहे हैं और अपना स्नेह-दान दे रहे हैं। ज्ञान तथा भक्ति के निरूपण की उनकी प्रणाली बड़ी ही विलक्षण थी। उनका व्यवहार बड़ा सरल और स्नेह पूर्ण होता था। इससे सभी को ऐसा लगता था कि वे केवल मेरे ही हैं, मुझ पर ही सर्वाधिक स्नेह करते हैं। बाहरी व्यवहार से उन्हें समझना बहुत कठिन था। उन्हें तो उनकी कृपा से ही समझा जा सकता था।

*खेद है कि श्रद्धेय पोद्दारजी का लेख तब मिला जब पुस्तक के १८ फार्म प्रायः छप चुके थे। इसलिये इस लेख को अनुरूप स्थान पर नहीं दिया जा सका।



पं० श्री जनार्दनजी चतुर्वेदी, हाथरस

(१)

श्रीमहाराजजी कभी-कभी हाथरस में आते रहते थे। एक बार वे पधारे। उस समय पण्डित समाज में यह प्रवाद-प्रचलित हुआ कि उड़िया बाबा नाम के प्रसिद्ध महात्मा आये हैं। वे भोजन का पदार्थ सामने आने पर उसमें से एक ग्रास ले लेते हैं और फुर्र करके सब पदार्थ का उच्छिष्ट कर देते हैं। फिर उसी पदार्थ को उनके सब भक्त खाते हैं। यह बात सुनकर मेरे मन में सकल्प हुआ कि देखें सच्ची बात क्या है? संयोगवश गोखले पुस्तकालय के अध्यक्ष मेरे मित्र श्री जयनारायण शर्मा ने मुझे आमन्त्रित किया कि आज श्रीउड़िया-बाबाजी महाराज पुस्तकालय में पधारेंगे, आप भी आवें। मैं तो ऐसा अवसर चाहता ही था। मैं बाबा के आने से पहले ही वहां पहुंच गया। समय पर बाबा पधारे। उनके लिये एक चौकीदार आसन लगाया गया था। उसी पर वे बैठ गये। प्रेमियों ने चन्दन, पुष्प, माला आदि से उनका पूजन किया। अन्त में अँगूर, अनार आदि फलों से भरा थाल उनके सामने रखा गया। श्रीमहाराजजी ने थाल में से दो-चार दाने लेकर दूर जाकर ऊपर से मुख में डाल लिये और हाथ धोकर फिर आसन पर आ विराजे। इस दृश्य को देखकर मेरे मन की जिज्ञासा शान्त हो गयी। मैं मन ही मन कहने लगा, "जिन्होंने ऐसी गलत अफवाह फैलायी है उन्होंने बहुत बुरा किया है।" इस प्रसग मे ध्यान देने योग्य विशेष बात यह है कि श्रीमहा-

राज जी ने मेरे मन की बात जानकर ही वैसा आचरण किया था अतः मेरे मन में यह विचार हुआ कि यदि इन्होंने मेरे मन की बात जानकर मेरा समाधान करने के लिए ही ऐसा आचरण किया है तब तो ये अन्तर्यामी सिद्ध होते हैं। और यदि ये अन्तर्यामी हैं तो निश्चय ही कोई महान् विभूति हैं। ऐसी स्थिति में भक्तों को इनका महाप्रसाद लेने में कोई हानि नहीं हो सकती, अपितु उसे लेना उचित और आवश्यक भी है। परिणाम यह हुआ कि इससे श्रीमहाराज जी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा-भक्ति के भाव उत्पन्न हुए, जो आगे चलकर उनके श्रीचरणों में प्रीति की उत्पत्ति के कारण हुए। फिर तो ऐसा हुआ कि कई बार मेरे मन में उनका महाप्रसाद लेने की लालसा उत्पन्न होती, पर वे मना कर देते। अन्त में मेरी विशेष रुचि देख कर वे कृपापूर्वक मुझे महाप्रसाद देने लगे थे। इस संबन्ध में सच्ची बात यह है कि श्रीमहाराज जी का महाप्रसाद उनमें श्रद्धा-भक्ति रखने वाले भक्तगण ही लेते थे, बाहर वाले अन्य व्यक्तियों को वह कभी नहीं दिया जाता था।

इस प्रथम दर्शन के पश्चात् मेरा चित्त श्रीमहाराज जी की ओर आकर्षित हुआ। फिर तो कर्णवास, रामघाट, आदि अन्य स्थानों में भी मैं बराबर उनके दर्शनों के लिये जाता रहा। यद्यपि मैंने उनके साथ लौकिक वा पारमार्थिक लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं रखा तथापि उनको कृपा से मुझे अनेकों लाभ बिना प्रार्थना किये ही हो जाते थे। जब कभी विकट स्थिति आती और मैं उनके दर्शनों को जाता तो उनके सामर्थ्य से खेल-खेल ही में वह समस्या निवृत्त हो जाती थी। जब किसी भयानक परिस्थित के उपस्थित हानेपरमें उनक चरणों में उपस्थित होता तो प्रणाम करते समय सर्व प्रथम

बिना पूछे जो वाक्य श्रीमहाराजजी बोलते, वही मेरी समस्या को सुलझाने का सर्वोत्तम उपाय होता और उसी से वह परिस्थिति सुधर जाती ।

(२)

एक बार मैं दर्शन करने के लिए कर्णवास गया । उस समय तक मेरे कोई पुत्र नहीं था, केवल एक लड़की थी । चलते समय उन्होंने प्रसाद स्वरूप एक फल दिया । फल हाथमें आते ही मेरे मनमें यहभाव आया कि श्रीमहाराजजी ने मुझे प्रसाद में यह पुत्र दिया है । वह फल मैंने अपनी धर्मपत्नीको दिया और कहा कि महाराज जी ने यहतुम्हारे लिए पुत्र दिया है । पर उसने हँसी समक्ष कर वह फल फेंक दिया । मुझे खेद हुआ । मैंने फिर उठाकर वह फल उसे दिया और उसे दोनों ने मिलकर खाया । उसके दस मास पश्चात् पुत्र उत्पन्न तो हुआ परन्तु प्रसाद की अवज्ञा के कारण एक वर्ष के भीतर ही जाता रहा । उसके बाद मैं फिर कर्णवास ही में श्री महाराज जी के पास गया । उस समय विदा होते समय उन्होंने प्रसाद में एक गोला दिया । इस बार भी गोला हाथ में आते ही मुझे यही भाव हुआ कि यह पुत्र ही है । वह गोला लाकर मैंने पत्नी को खिलाया । उसके दस मास पश्चात् जो पुत्र हुआ अब तक सकुशल है ।

(३)

एक बार में कर्णवास में श्री महाराज जी के पास श्री मद्भागवत की कथा सुना रहा था । साथ में पत्नी और तीन वर्ष की कन्या भी थी । श्रीमहाराज जी स्वयं पारस भाग की कथा सुना रहे थे । उस समय लड़की माँ की गोद में बैठी थी । उसे १०३ डिग्री का ज्वर था ।

अकस्मात् वह बोल उठी, "बाबा ! दण्डवत् ।" उसी समय श्रीमहाराजजी ने उसे केला और पेड़ा प्रसाद में दिया। लड़की ने उन्हें खा लिया। बस, तभी से उसका सारा ज्वर उतर गया। श्री महाराजजी में मैंने तीन सिद्धियां देखी थीं—[१] परचित्ताभिज्ञता (दूसरों के मन की बात जान लेना), [२] शक्ति प्रेरणा (अपनी शक्ति दूसरों में प्रविष्ट कर देना) और [३] यत्कामस्तदवसायिता (जिस वस्तु का संकल्प हो उसी का उपस्थित हो जाना) ।

(४)

मुझे भांग पीने की आदत पड़ गयी थी। उससे होने वाली हानि को भी जानता था, परन्तु छोड़ नहीं पाता था। एक दिन मैंने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की कि मुझे भांग पीने की आदत पड़ गयी है, यह छूटती नहीं है। आप ऐसी कृपा करें जिससे यह छूट जाय। श्री महाराजजी बोले, "अरे ! सब अपने आप छूट जायगी।" मैं हाथरस चला आया। एक दिन एक महापुरुष मेरे पास आये और बोले, "भाँग घोटो।" मैंने कहा, "आप महात्मा होकर भाँग पीते हैं।" वे बोले, "संग दोष आ जाते हैं।" मैंने कहा, "सग के प्रभाव को त्यागना चाहिये या उसका पोषण करना चाहिये ?" उस समय मुझे ऐसा लगा मानो मैं श्री महाराजजी से ही बातें कर रहा हूँ और उन महापुरुष के रूप में स्वयं महाराजजी ही बोल रहे हैं। उनकी शक्तिप्रेरणा मुझे स्पष्ट अनुभव होती थी। मैं कहने लगा, "मैं तो भांग का पात्र भी नहीं छूता। दूसरे लोग तैयार करके चने बराबर दे देते हैं, उसी को ले लेता हूँ।" तब महात्माजी ने स्वयं घोट कर भांग तैयार की और बोले, "आज खूब छककर पिओ।" उन्होंने स्वयं भी पी और मुझे भी डटकर पिलायी। फिर बोले,

बोलो, "क्या चाहते हो ?" मैंने कहा, "बस, यही कि भांग पीने की आदत छूट जाय।" उन्होंने कह दिया, "कल से भाँग नहीं पीओगे।" सचमुच दूसरे दिन से ही मुझे भांग से ऐसी घृणा हो गयी जैसी कि किसी भी घोर दुष्कर्म से हो सकती है। मेरा भंग पीना सर्वथा छूट गया और जिस सङ्ग से यह आदत पड़ी थी वह सङ्ग और बगीची भी छूट गयी। श्रीमहाराजजी की ऐसी अद्भुत शक्ति थी। हम उसे नहीं जान पाते थे।



पं० श्री रामदत्तजी वैद्य, हाथरस

सम्पर्क का सूत्रपात

सन् १९२९ ई० की बात है, मैं सर्वप्रथम श्री शंकरलाल जी के साथ महाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट गया था किन्तु उस समय सामान्य बातचीत के अतिरिक्त उनसे मेरा कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। उसके पश्चात् संयोगवश मैंने एक अन्य महात्मा से साधन का उपदेश ग्रहण किया। उन्होंने मुझे प्राणायाम-की प्रक्रिया बतलायी। उसमें मैंने प्रगति तो अच्छी की परन्तु किसी विशेष कारणवश उसका परिणाम यह हुआ कि मुझे नींद बहुत कम आने लगी। जितनी देर नींद आती थी उसमें भी मुझे स्वप्न बहुत अधिक दिखायी देते थे। इस विघ्न के कारण मैं बहुत चिन्तित रहने लगा। उन महात्माजी के सामने यह समस्या रखी तो उन्होंने प्राणायाम बढ़ाने की आज्ञा दी। परन्तु इससे मेरे स्वप्न और भी अधिक बढ़ गये।

एक बार मैं बुलन्दशहर से एक बरात के साथ लौटा। उस समय श्रीमहाराजजी यहाँ विष्णुदयाल के बगीचे में ठहरे हुए थे। मैं उनके दर्शनार्थ गया और उनके चरणों में अपनी मनोव्यथा निवेदन की। पहले तो आप बोले, "भैया! जिनसे उपदेश लिया है उन्हीं से इस बिघ्न की निवृत्ति का भी साधन पूछना चाहिये।" किन्तु फिर मेरी स्थिति देखकर बोले, "तुम प्राणायाम करना छोड़ दो और श्रीमद्-भागवत के एक सौ आठ मासिक पारायण करो। इससे यह

विघ्न दूर हो जायगा।" मैंने आपकी इस आज्ञा का पालन किया और इससे मेरा वह विघ्न निवृत्त हो गया।

मेरे जीवन में ऐसी घटनाएँ अनेकों बार घटीं कि जब मैं कोई प्रश्न लेकर श्री महाराज जी के पास जाता तो वे पूछने से पहले ही उसका उत्तर दे देते। जीवन में ऐसे अवसर भी अनेकों बार आये कि मेरे मन में किसी को भला-बुरा कहने की, किसी की निन्दा-स्तुति करने की अथवा किसी के चपत लगाने की भावना उठती, किन्तु उसी समय श्री महाराज जी की यह उपदेश याद आ जाता—

'तेरे भावे जो करो, भलो बुरो संसार।
'नारायण' तू बैठिके, अपनो भवन बुहार॥'

और फिर मेरे चित्त से वह दुर्भावना निकल जाती।

कन्या का विवाह सम्बन्ध

मेरी एक कन्या विवाह के योग्य हुई। मैं उस के लिए वर की खोज में था। परन्तु मेरे मन में यह संकल्प था कि यदि श्री महाराज जी के भक्त परिकर में ही कोई योग्य वर मिल जाय तो अधिक अच्छा हो। यह सोच कर मैं गुरुपूर्णिमा के अवसर पर श्री महाराजजी का पूजन करने के लिए कर्णवास गया। एक दिन मैंने अपना उपर्युक्त विचार रामघाट निवासी वैद्य प्यारे लाल जी से कहा। वे बोले, "पं० बाबू राम बगीची वालों का एक लड़का तो है, पर वे बड़े आदमी है, स्वीकार करें या न करें ?" उसके पाँच मिनट बाद ही उन्होंने पं० बाबूलाल को पूजन करने के लिए जाते हुए दिखाया। थोड़ी ही देर में मैंने देखा कि श्री महाराज जी ऊपर की ओर जा रहे हैं। मैं उनके पीछे हो लिया। मुझे देखकर वे बोले, "अरे रामदत्त ! तुमने भोजन कर लिया ?"

मैं—हाँ महाराज जी ! कर लिया ।

महाराज जी—तो जाओ, आराम करो ।

मैं—महाराज जी ! पं० बाबूराम का एक लड़का ....।

महाराज जी—अरे ! तू उससे अपनी लड़की का सम्बन्ध करना चाहता है ? जा, मैं कह दूँगा । कोई चिन्ता न कर ।

दूसरे दिन आप ने बाबूराम जी से कह दिया । उन्होंने स्वीकार तो किया, किन्तु सोच-विचार कर निश्चित उत्तर देने के लिए कुछ अवकाश मांगा । उन्हें सात दिन का अवकाश दिया गया । जब मैंने हाथरस आने के लिए आज्ञा माँगी तब आप बोले, "अरे ! कल से हमारे यहाँ भागवत का सप्ताह है । तू हमारे यहाँ का वैद्य है । कोई बीमार पड़े तो इलाज कौन करेगा ? मैंने कहा, "महाराज जी ! कुछ आवश्यक कार्य है । यदि आज्ञा हो तो उसे करके कल ही आ जाऊँगा ? इस पर आपने सहर्ष अनुमति दे दी ।

छः सात दिन बीतने पर पं० बाबूराम जी ने महाराज जी से कहा "आप की आज्ञा शिरोधार्य है । और तो कुछ नहीं, बरात में जो चार आदमी जायँ उनका स्वागत सत्कार अच्छा हो जाना चाहिए ।" श्री महाराज जी बोले, अरे ! यह ऐसी क्या बात है ? हाथरस में गणेशीलाल, जानकीप्रसाद, राधेश्याम कई बड़े आदमी रामदत्त के प्रेमी हैं, स्वागत-सत्कार तो अच्छा हो जायगा, तुम्हारी इच्छानुसार रामदत्त से रुपया भी दिलवा दूँगा । **तुम रामदत्त को पत्र लिख देना ।"**

उन्होंने श्रीमहाराज जी की आज्ञा का पालन किया और विवाह का सारा कार्य श्री महाराज जी की कृपा से सुगमता से सम्पन्न हो गया ।

पुत्र की प्राण रक्षा

सन् १९३३ की बात है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र शिवदत्त के चेचक निकली। बीमारी बड़ी विकट थी। सारे शरीर में बड़े-बड़े चकत्तों से पीप निकलता था। अपने जीवन में मैंने चेचक का ऐसा रोगी हजारों में एक ही देखा होगा। दशा इतनी बिगड़ी कि मुझे उसके जीवन से निराशा हो गयी।

उन दिनों श्रीमहाराज जी अलीगढ़ में थे। वहाँ नित्यप्रति उनका सत्सङ्ग होता था परन्तु लड़के की बीमारी के कारण मैं जा न सका। आखिर, मैंने सोचा कि यहाँ रह कर तुम लड़के को बचा तो सकोगे नहीं, फिर ऐसा अवसर क्यों खोते हो ? अतः माँ से अनुमति लेकर मैं श्री महाराज जी के दर्शनार्थ अलीगढ़ चला गया। जाकर उन्हें प्रणाम किया और फिर परिक्रमा करने लगा। मेरी मुखाकृति देखकर श्री महाराज जी ने पूछा, "रामदत्त ! तू उदास क्यों है ? मैंने कहा महाराज जी लड़के की हालत बहुत खराब है शायद अब उसका शरीर...........।" इतना कहते हुए मेरे नेत्रों में आँसू आ गये। मेरे मुख से ये शब्द निकलते ही आपने मुझे डांटते हुए कहा, 'अरे ! चुप। बावला है ? ऐसा नहीं कहते। जा, अब चला जा।"

महाराज जी की आज्ञा होने से मैं लौट कर घर चला आया। रात के आठ बजे थे। मैंने सोचा, यदि लड़का मर गया होगा तो घर में रोना-धोना मचा होगा। अतः बाहर ही दरवाजे-पर कान लगा कर सुनने लगा। जब कोई आवाज सुनायी न दी तो सोचा—शायद रोते-रोते थक गयी हैं, इस लिए चुप हैं। फिर दस मिनट और भी प्रतीक्षा की। परन्तु फिर भी कोई शब्द सुनायी न दिया।

तब यह समझकर कि लड़का अभी जीवित है मुझे धैर्य हुआ और आवाज देकर दरबाजा खुलवाया। भीतर जाकर माँ से लड़के का हाल पूछा तो वह बोली, "साढ़े चार बजे से लल्लाकी हालत सुधरने लगी है। अब तो वह होश में है।" मैंने स्मरण किया तो मालूम हुआ ठीक साढ़े चार बजे ही मुझे श्री महाराज-जीने ढाढस देकर भेजा था।

इसके पश्चात् दो तीन दिन में ही लड़का पूर्णतया स्वस्थ हो गया। ऐसे रोगी प्रायः बचते नहीं हैं। मैंने तो इसे श्री महाराज जी की कृपा का ही फल माना। उनके साथ मेरा सम्बन्ध केवल संत दृष्टि से ही नहीं था, वे तो हमारे माता-पिता और बाबा थे।

अस्वादव्रत

एक बार एक ठकुरानी साहिबा के प्रार्थना करने पर श्री-महाराज जी उनके यहाँ पधारे थे। साथ में चालीस-पचास भक्त भी थे। मैं भी था। भोजन करते समय घीया का साग परोसा गया। उसमें नमक नहीं था। एक तो घीया का साग और उसमें नमक नहीं ! पर किसी ने भी कुछ कहा नहीं। मैंने ही धीरे से कह दिया, "साग में नमक नहीं है। महाराज जी यद्यपि मुझसे काफी दूर थे, तथापि उन्होंने सुन लिया और बड़े जोर से डाँटा, "कौन है ?" मैं सिटपिटा गया। बस, सब लोग भोजन करके उठ गये।

पीछे ठकुरानी जी के आदमी भोजन करने के लिए बैठे। वेभला क्यों चुप रहने लगे। बात ठकुरानी साहिबा के कानों पहुँची वे श्री महाराज जी के पास जा हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करनेलगी

आप बोले, "अरे ! साग तो बहुत अच्छा बनाथा । क्षमा की क्याबात है ? हमें तो बहुत अच्छा लगा ।" हमारे लिए तो उनकी उस एक डांट का ही यह परिणाम हुआ कि अब तक यदि साग में नमक न हो तो मैं यह कभी नहीं कहता कि नमक नहीं है । जैसा भी सामने आ जाता है चुपचाप खा लेता हूँ ।

प्रार्थना स्वीकृति

श्री महाराज जी मुझे पुकारते समय नाम न लेकर प्राय: 'वैद्यजी' कहा करते थे । इससे मुझे बड़ा संकोच होता था । इसके लिए मैंनेकई बार प्रार्थना भी की कि आप मेरा नाम लेकर ही आज्ञा प्रदान किया करें । परन्तु उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया । अन्त में मैंने निश्चय किया कि जब श्री महाराज जी 'वैद्यजी' कहकर बोलेंगे तबमैं बोलूँगा नहीं । मेरे हृदय में ऐसा संकल्प आते ही आप बोले, "अरे रामदत्त ! क्या बात है ? क्या सोच रहा है ? मुझे तेरा नाम याद नहीं रहता था, अब से 'रामदत्त' कहकर ही बोला करूँगा ।"

श्री महाराज जी का आश्रम मिलने के पश्चात् अब तक मेरे जीवन में इतना लाभ हुआ है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे जीवन में जो कुछ सुख-शान्ति की वस्तु है वह सब उन्हीं की कृपा का फल है ।



श्री गणेशीलाल जी, हाथरस

(१)

सं० १९७७ वि० का आरम्भ ही था, चैत्र या बैशाख का महीना होगा, पूज्य बाबा यहाँ श्री विष्णुदयाल के बाग में ठहरे हुए थे। वहीं एक दिन प्रातःकाल पाँच बजे मुझे सर्वप्रथम उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय मेरे हृदय पर यह छाप पड़ी कि ये कोई अच्छे महात्मा हैं। उसके पश्चात् जब तक वे वहां विराजे मैं नित्य-प्रति दर्शनों के लिए जाता रहा। जब आप वहाँसे चले गये तो हृदयआपकी ओर इतना आकर्षित रहने लगा कि मैं श्रीमहाराज के दर्शनों कीइच्छा से ही रामघाट गया। आगे चलकर तो ऐसा हो गया कि महीने-दो महीने या चार-छः महीने बाद अवश्यमेव बाबा ने दर्शनों के लिए जाने लगा। मालूम तो नहीं पड़ता था कि क्या कारण था, परन्तु उनके दर्शनों के बिना समय-समय पर चित्त बेचैन हो जाता था। यदि कोई सगा-सम्बन्धी उनके दर्शनार्थ जाना चाहता तो भी उसे रोकने की इच्छा नहीं होता थी, प्रत्युत यही भाव मन में होता था कि अवश्य जाओ। यह दशा मेरी ही नहीं, बाबा के पास जाने वाले प्रायः सभी लोगों की थी। जाते एक दिन को, परन्तु चार-छः दिन रहे बिना लौटने को चित्त नहीं चाहता था।

एक बार मैंने श्री महाराज जी से पूछा कि मैं किस इष्टदेव की उपासना करूँ? बोले, "तुम्हें जो सबसे अधिक प्रिय हो उन्हीं की उपासना करो।" मैंने कहा, "यह निर्णय मुझ से नहीं हो पाता।" तब कहा, "विचार करो, हो जायगा।" तथापि मुझ से एक निश्चय न

हो सका। आखिर मेरे विशेष आग्रह करने पर उन्होंने मुझे एक इष्ट की उपासना बता दी। परन्तु वह मुझ से नहीं चली। अन्त में आप बोले, "मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम्हीं निश्चय कर लो।" परिणाम में अपने हृदय के जैसे पूर्व संस्कार थे उन्हीं के अनुसार मेरी उपासना रही।

(२)

क्रमशः धीरे-धीरे श्री महाराज जी के चरणों में मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ गयी। वे मेरे केवल गुरु ही नहीं, अपितु माता-पिता भी थे। उनसे मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया कि वे मेरे घर के से हो गये थे। मैं, लौकिक हो अथवा पारलौकिक, प्रत्येक काम उनसे पूछकर करता था। पूज्य बाबा से मिलने के पहले और अब भी अनेकों महात्माओं के दर्शन किये, उनका सत्संग सुना और अब भी सुनते हैं, परन्तु उनके जैसी अनुभवपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी वाणी सुनने को नहीं मिली। श्री महाराज जी के अन्दर मैंने क्रोध कभी नहीं देखा कोई कितना भी अपराध करे, पर उनकी ओर से क्षमा में कमी नहीं होती थी। मुझे उनसे कभी भय नहीं होता था। एक बगदेशिया माता सरोजिनी थीं, वे मुझ पर बहुत वात्सल्य रखती थीं। एक बार वे श्री हरिबाबाजीके बांध से लौटा और "मुझ से बोली, "तुम बांधपर जाओ बाबा तुम पर बहुत नाराज हैं। जाकर जल्दी उनकी प्रसन्नता प्राप्त करो।" वे भयभीत-सी हो रही थी। मैं उनकी बातें सुनकर हँसने लगा। इस पर वे विस्मत-सी हुई। तब मैंने उन्हें बताया कि बाबा का मेरे प्रति इतना अभयदान है कि वे मुझे कितना ही डरावें मैं भयभीत नहीं हो सकता। मैं उनसे भयभीत हो जाऊँ—यह उनकेवश की बात नहीं हैं।" बाबा में मैंने सबसे बड़ी विशेषता यही देखी कि उन

का किसी से विरोध नहीं था। प्रायः अच्छे-अच्छे लोगों में भी थोड़ा-बहुत राग-द्वेष का भाव देखने में आता ही है।

(३)

एक बार हाथरस में अपने यहाँ श्री महाराज जी की आज्ञा से गोपाल पुरश्चरण का अनुष्ठान था। उसके विषय में बहुत-सी बातें मैं उनसे पूछ नहीं सका था। अब वे गढ़मुक्तेश्वर चले गये थे। जब कार्य समाप्ति का समय समीप आया तो मालूम हुआ कि मुझ से भूल हुई। काम बहुत था और बाबा से पूछा था नहीं। समय इतना कम रह गया था कि उनके पास जाकर पूछा नहीं जा सका था। एक दम चित्त घबड़ाने लगा। कहाँ मण्डप बने ? क्या दक्षिणा दी जाय ? इत्यादि यज्ञसम्बन्धी कृत्यों के विषय में अपनी कोई जानकारी नहीं थी। किन्तु रात को सोने के बाद सभी प्रश्न हल हो गये। बात यह हुई कि दूसरे दिन पं० किशोरी लाल श्री महाराज जी के पास से आये और अपने साथ उनका एक लेखबद्ध सन्देश लाये। उस लेख में छोटी से छोटी बातों से लेकर बड़ी से बड़ी तक सभी व्यवस्थाएँ थी। जैसे कोई वृद्ध पुरुष अपने अनजान बालक को समझाता है उसी प्रकार सब बातें समझायी गयीं। ऐसा विश्वास होता था मानों उन्होंने मेरे सभी प्रश्न हल कर दिये थे। यह उनकी कोई प्रयत्न साध्य कृति नहीं थी, किन्तु स्वाभाविक थी। उन्हें दूर श्रवण और दूरदर्शन होता था—ऐसा मुझे कई बार ज्ञान हुआ था। भोजनादि के विषय में तो उनके चमत्कार बहुत लोगों ने देखे थे। परन्तु उनके स्वरूप की दृष्टि से तो ये बातें मुझे बहुत तुच्छ जान पड़ती थीं। यह तो महीनों देखा गया कि वे या तो बिल्कुल निद्रा नही लेते थे अथवा घण्टे आधा घण्टे ही लेट लेते हों क्योंकि रामघाट आदि स्थानों में वे कई बार बहुत दिनों तक चौबीसों घण्टे बैठे देखे गये थे। प्रातःकाल

जब वह आसन पर बैठे होते तब कई बार मुझे उनके मुखमण्डल के चारों ओर एक शान्तिमयी श्वेत प्रभा का गोलाकार मण्डल दिखलायी पड़ता था। वह ऐसा लगता था मानो चन्द्रज्योत्स्ना में मोती कूटकर भर दिये गये हों।

(४)

श्री महाराज जी के पास पहुँचने पर एक दो की नहीं, अनेकों की ऐसी दशा होती थी कि घर की सुधि भूल जाते थे। देह की भी विशेष परवाह नहीं रहती थी। शीत-उष्ण, भूख-प्यास और भूमिशयनादि उनके पास रहने पर कोई बाधा नहीं पहुँचाते थे। एक बार कठिन ग्रीष्म ऋतु में हम कई व्यक्ति उनके दर्शनार्थ अमरसा गये। वहां जाने के लिये सहावर स्टेशन पर उतरना होता है। जिस समय गाड़ी सहावर पहुंची दोपहर के डेढ़ दो बजे थे। ऊपर सूर्य की गर्मी नीचे पृथ्वी गर्म, वायु गर्म, अधिक क्या सारा वातावरण ही गर्म था। साथ में सामान भी था ही, और कुली कोई मिला नहीं। हम सभी शहर के रहने वालेथे। ऐसा कठोर ताप सहन करने का किसी का भी अभ्यास नहीं था। परन्तु श्री महाराजजी के दर्शनों की चटपटी सभी को लगी हुई थी, किसीको थोड़ा-सा भी विलम्ब सह्य नहीं था। स्टेशनसे अमरसा दो-तीन मीलदूर था। आखिर, हम सब उसी समय चलनेको तैयार हो गये। स्टेशन वालों ने शाम तक रुकने के लिये बहुत कहा, परन्तु सभी थोड़ा-थोड़ा सामान लेकर उसी समय चल दिये और अमरसा पहुँच गये।

बाबा के सामने पहुँचने पर चित्त की शंकाओं का स्वतः समाधान हो जाता था। मन में कोई प्रश्न उठता और बाबा से पूछने का संकल्प करने जाते, परन्तु वहाँ के शान्त वातावरण में पहुँच कर मन

संकल्प-विकल्प शून्य हो जाता और हम प्रश्न पूछना ही भूल जाते थे। अथवा वहाँ पहुँचने पर स्वतः ही समाधान हो जाता था बिना प्रश्न किये बाबा अनायास ही उसका उत्तर दे देते थे। उन्हें किसी पद्धति या सम्प्रदाय विशेष का भी आग्रह नहीं था। वे जिसे जैसा अधिकारी समझते थे उसके लिये उसी मार्ग का विधान कर देते थे।

(५)

एक बार हम कई व्यक्ति महाराज जी के दर्शनों के लिये मोहनपुर गये। यह भी घोर गर्मी का ही समय था। रात को भी पृथ्वी ठंडी नहीं होती थी। बाबा का एक पुराना भक्त रामदास पनवाड़ी था। एक दिन प्रातःकाल उठकर मैंने किसी से पूछा, "बाबा कहाँ हैं ?" उसने कहा कि अभी उठे नहीं हैं। नौ बजे रामदास गाँव से आता है तब ताला खोलता है। रात को वह बाबा को कुटी में बन्द कर जाता है। मुझे बड़ा दुःख और क्रोध हुआ कि रामदास अपने इस स्वार्थ के लिये कि बाबा कहीं बिना ही कहे चले न जायँ उन्हें रात को ताले में बन्द कर देता है। ऐसा भक्त किस काम का ? मेरे मन में यहाँ तक आया कि आज उसे पीटूँगा। बाबा भले ही चले जायँ, परन्तु उन्हें उस प्रकार जबरदस्ती रोककर दुःख देना तो भारी अपराध है। मुझसे अधिक नहीं रुका गया। मैंने अपने एक मित्र से भी मन की बात कह दी। सोचा तो यह था कि यह सुनकर वे भी मेरी ही तरह क्षुब्ध होंगे। परन्तु वे तो हँसने लगे। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे इसका रहस्य पूछा तो वे बोले, "प्राणस्पन्दरहित समाधिस्थ पुरुष को शीत-उष्ण नहीं व्यापते।" मुझे यह बात मालूम नहीं थी। सुनकर बड़ा आनन्द और सन्तोष हुआ। नौ बजे रामदास आया। उसने कुटी खोली तो देखा, बाबा तख्त पर

आसन लगाये निश्चल भाव से विराजमान हैं। उस कुटी की लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई बहुत कम थी, दरवाजा भी इतना ही ऊँचा था कि एक व्यक्ति वैठकर आ-जा सकता था। उसमें एक तख्त डाल दिया गया था, जिसके चारों पायों के नाचे गड्ढा खोदकर पानी भर दिया जाता था, जिससे चींटी न चढ़ने पावे। मेरे एक मित्र ने पूछा, "बाबा! आपको कभी क्रोध नहीं आता ?" बोले, "अरे ! जिस दिन मुझे क्रोध आ जायगा उस दिन यह शरीर नहीं रहेगा।"

(६)

एक समय बाबा हाथरस में थे। कहने लगे, "मैं दिल्ली जाऊँगा, वहां एक बंगाली मेरा भक्त है।" वे सर्वदा पैदल ही चलते थे और जंगलों में रहना ही उन्हें पसन्द था। गङ्गातट को छोड़कर गांवों और कस्बों में भी कम ही जाते थे। इसलिये उनकी इस बात में मेरा विश्वास नहीं हुआ। यों भी वे बहुत-सी खेल-मेलकी बातें करतेही रहते थे। अतः मुझे यह निश्चय नहीं हुआ कि वे अवश्य दिल्ली जायँगे ही। परन्तु वे दिल्ली पहुँच ही गये और प्रायः डेढ़ मास तक कुदसिया घाट पर ठहरे। वहाँ उनके पास दर्शनार्थी और सत्संगियों की भीड़ लगी रहती थी। श्रीआत्माराम खेमका और श्रीबिहारीलाल जी पोद्दार आदि अनेकों भक्त नित्य नियम से उनके पास आते थे। इन दिनों लेजिस्लेटिव एसेम्बली के एक उच्च अफसर श्रीअतुलकृष्ण गुप्त नई दिल्ली से चार-पांचमील पैदल चलकर नित्यप्रति श्रीमहाराजजी के पास आते थे। वे बड़े सज्जन थे। कई वर्ष बाद एक दिन मैंने गुप्ताबाबू से पूछा कि आपका श्रीमहाराजजी से कब से परिचय है ? मैं समझता था ये श्रीमहाराजजी के पूर्व परिचित हैं, क्योंकि इस प्रान्त में आने से पहले वे बंगाल में रह चुके थे। परन्तु यह मेरा भ्रम ही निकला। गुप्ताबाबू ने कहा, "जिन दिनों श्रीमहाराज जी दिल्ली पधारे हुए थे उन्हीं दिनों

एक दिन अकस्मात् मैं उनके पास पहुँच गया और प्रथम दर्शन में ही ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया जैसे दो पूर्वपरिचित प्रेमियों में पुनः मिलन होने पर हो जाता है।" श्रीगुप्ताजी का उत्तर सुनकर मुझे स्मरण हो आया कि बाबा हाथरस में कहा करते थे कि दिल्ली में मेरा एक बंगाली भक्त है। उनकी वह बात यथार्थ ही थी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि बाबा अपने पूर्वजन्म से सम्बन्धित शिष्यों का कल्याण करने के लिए स्वयं भी उन पर कृपा करते थे, यद्यपि वे आपको जानते भी नहीं थे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसी नाते मुझ अधम पर भी उनकी ऐसी अहैतु की कृपा थी, क्योंकि उस समय मेरे में तो ऐसी बुद्धि थी ही नहीं जो सन्तों के पास जाने में मेरी लगन हो सके।

(७)

पूज्य श्रीहरिबाबा जी के प्रति भी आपका बड़ा सहज स्नेह था। एक बार आपने मुझ से एकान्त में कहा था, "अरे गनेशी! भैया! हरिबाबा जी के समान दैवीसम्पत्तिवान् साधु बहुत कम देखे गये हैं" मेरा तो निसन्देह विश्वास है कि श्रीमहाराज जी का श्रीवृन्दावन में निवास एकमात्र श्री हरिवाबा जी के कारण हुआ था। यद्यपि इस विषय में अन्य व्यक्तियों का मतभेद भी हो सकता है, परन्तु मुझेअपनी मान्यता में कोई सन्देह नहीं है।

श्रीमहाराज जी भविष्यवक्ता थे। उनकी मुझ से कही हुई बातें अभी तक ज्यों की त्यों घटित हो रही हैं। एक बार आपने एक व्यक्ति के विषय में जैसा भविष्य कहा था उसके विपरीत हुआ। मैंने सरलतावश, क्योंकि आपसे मुझे कोई भय तो था नहीं, एक दिन एकान्त में कहा, बाबा! आप तो अमुक के विषय में ऐसा कहते थे,

परन्तु हुआ इसके विपरीत।" इस पर आप बिना किसी प्रकार का क्षोभ प्रकट किये बोले, "अरे! इसमें क्या है? बहुत सी बातें झूँठी हो जाती है।" उत्तर सुनकर मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ कि मैंने व्यर्थ ही बाबा को झूठा सिद्ध किया। परन्तु उनके मन में किञ्चितमात्र भी क्रोध या क्षोभ नहीं हुआ। अन्त में हुआ वही जैसा बाबा ने कहा था।

जिस समय द्वितीय विश्व-संग्राम चल रहा था बाबा का यह निश्चय था कि अब अँग्रेज भारत में नहीं रहेंगे। मेरी तुच्छ बुद्धि में आता था कि युद्ध लम्बा हो जाने पर अँग्रेजों की विजय हो सकती है। और हुआ भी ऐसा ही। अँग्रेज विजयी हुए। तब एक दिन मैंने बाबा से कहा कि आप तो कहते थे कि अँगेज चले जायेंगे, परन्तु इनकी तो विजय हो गयी और हमारा देश भी स्वतन्त्र नहीं हुआ। इस पर आपने बहुत बलपूर्वक कहा, 'अब अँग्रेज हमारे देश में नहीं रह सकते।" मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ, परन्तु अन्त में हुआ वही।

बाबा के साथ दीर्घकाल तक सम्पर्क रहने के कारण मैंने ऐसी अनेकों घटनाएँ देखी हैं जिनसे उनमें दूरदर्शन, दूरश्रवण और भविष्य ज्ञानरूप अनेकों सिद्धियां थीं। अन्नपूर्णा की सिद्धि तो उन्हें निश्चय ही थी। यद्यपि उनके परमार्थज्ञान के सामने इन सिद्धियों-का कुछ भी मूल्य नहीं था। वे पूर्ण आत्मनिष्ठ, भेदभावशून्य और साक्षात् प्रेम की मूर्ति थे। नहीं तो ऐसा भला कैसे हो सकता था कि लगातार तीस वर्षों तक उनके चित्त में कभी किसी के प्रति लेश-

मात्र भी घृणा या द्वेष का भाव देखने में न आवे। विभिन्न विचार-वाले लोगों की, जिनका परस्पर विपरोत भाव भो रहता था, बाबा में समान श्रद्धा थी। और बाबा का भी उन पर समान प्रेम था। यह अच्छी तरह मालूम है कि जो लोग बाबा के निजननों को सताते थे उनकी वैसी प्रवृत्ति को जानते हुए भी बाबा उन पर अपने भक्तों के समान ही प्रेम रखते थे। श्री गङ्गाजी किनारे कई साल देखने में आया कि बाबा के पहुँचते ही वहाँ के शिकार खेलने के अभ्यासी लोग भी बिना किसी के कहे शिकार खेलना बन्द कर देते थे। उनके अन्तःकरण में स्वयं ही ऐसी वृत्ति जाग उठती थी। कर्म-काण्डी, भक्त, वैष्णव, वेदान्ती और आर्य समाजी आदि सभी प्रकार के लोग आप से लाभ उठाते थे। बाबा को केवली कुम्भक सिद्ध था। मीलों तेज चलने पर भी उनका श्वास-प्रश्वास बढ़ता नहीं था। दस-बीस मील चलकर भी वे ऐसे बैठ जाते थे मानो चले ही नहीं।

(६)

एक समय बाबा हाथरस में थे। अमरसा में बलदेव ब्रह्मचारी के यहां यज्ञ होने वाला था। आप यज्ञ में निमन्त्रित ही नहीं, उनके कर्ता, धर्ता और सर्वस्व ही थे। मस्ती में हाथरस में शाम हो गयी। कल से यज्ञ आरम्भ होने वाला है और अमरसा प्रायः पचास मील दूर है। किसी भी प्रकार की सवारी में आप बैठते नहीं थे। उधर बलदेव ब्रह्मचारी आप में सखाभाव रखते थे। देर हो जाने पर उनका प्रणय-कोप उग्र हो जाने की सम्भावना थी। बस, आप शाम को चल दिये और रात-रात में चलकर सवेरे दस बजे तक अमरसा पहुँच गये। देखते ही बलदेव ब्रह्मचारी उबल पड़े—"अब क्यों आये ?" इत्यादि। पर आप उनकी बातों को अनसुनी करके कहने लगे, "जल्दी यज्ञ आरम्भ करो, देरी हो रही है।"

(१०)

एक बालक था। अभी हाल ही में उसका विवाह हुआ था। नाम प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्री सुन्दर मिली थी। अतः उसमें उसका राग भी विशेष था। वह बाबा का दर्शन करने आया। आठ-दस दिन रहने पर भी घर जाने को उसका चित्त नहीं हो रहा था। तब एक दिन वह बाबा से कहने लगा, "बाबा तुम्हें छोड़ने को तो इसी तरह चित्त नहीं चाहता जैसे अपनी स्त्री को।" उसका यह उदाहरण सुनकर आप अप्रसन्न नहीं हुए, बल्कि हँसने लगे और बोले, "अरे गनेशी ! देखो, देखो, यह लड़का क्या कह रहा है ?" बात यह थी कि उनकी स्वाभाविकी कृपा और प्रेमपूर्ण हृदय के कारण सभी का चित्त आकर्षित हो जाता था, जिससे और सबकी सुधि भूल जाती थी।



श्रीशङ्करलालजी गर्ग, हाथरस

प्रथम दर्शन

सं० १९७२ वि० का बैशाख मास था। दिन के १२ बजे थे। मैं अपनी खद्दर की दुकान पर बैठा था। अकस्मात् श्री महाराज जी दूकान के सामने आकर खड़े हो गये और मेरी ओर देखने लगे। मैंने देखा—एक कौपिन, एक कटिवस्त्र, पुरानी कथा, नंगे सिर नंगे पैर और हाथ में तूँबा। समझा कोई बिरक्त महात्मा हैं। उतर कर हाथ जोड़कर प्रार्थना की और उपर ले आया। परन्तु वे तो जूतों में ही बैठने को तैयार हो गये, क्योंकि पैरों में धुलि लगी थी। मैंने कहा "ऊपर पधारिये।" बोले, ' मैला हो जायगा।" मैंने कहा, "पवित्र हो जायगा।" फिर अन्दर ले जाकर गजी का थान बिछा दिया। फिर भी वे पैर बाहर रखकर ही उस पर बैठे। मैंने देखा संकोच कर रहे हैं, इस लिए जल लाकर बर्तन में पैर धोये और पौछ दिये। पूरा पौछ भी न पाया था कि झट पैर खींचकर सिद्धासन लगा लिया और ध्यान-मग्न हो गये। मैंने भिक्षा के लिए प्रार्थना की। बोले, "भिक्षा कर आया।" तथापि मैंने थोड़ा फल और मीठा मँगा कर सामने रख दिया। उसमें से थोड़ा अपने बांये हाथपर रख लिया। मैंने हाथ धुला दिये। और चरणोदक ऊपर भेज दिया।

श्रीमहाराज जी सिद्धासन से विराजमान थे। उनके नेत्र खुले हुए थे। मुझे ऐसा प्रतोत हुआ मानों हँस रहे हैं। मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "महाराज जी ! गुरु के क्या लक्षण हैं ?"

तत्क्षण उत्तर मिला—

दृष्टि: स्थिरा यस्य विनैव दृश्याद्वायु: स्थिरो यस्य विना निरोधात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात् स एव योगी स गुरु: स सेव्य: ॥*"

ऐसा स्पष्ट उत्तर मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मैं काम-काज करना भूल गया और सत्सङ्ग में लग गया। योग विषयक बहुत सी बातें हुईं पर अब याद नहीं हैं। शाम के पाँच बज गये। मैं उन्हें विष्णुदयाल के बगीचे में ले गया और मन्दिर के आगे चबूतरे पर आसन डालकर बैठा दिया। मुझे फिर भी लगा कि वे हँस रहे हैं। तूँबे में जल भर कर पास रख दिया। थोड़ी देर बाद वे उठे तूँबा उठाकर नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिए जंगल की ओर चले गये। मैं कन्था की तह करने लगा तो उसके एक ओर कुछ कड़ा मालुम हुआ। देखा तो एक पाकेट बुक थी। उसमें देवनागरी और उड़िया लिपि में बहुत से श्लोक लिखे थे। थोड़ा पढ़ा भी, परन्तु फिर पश्चात्ताप हुआ कि उनकी आज्ञा लिए बिना क्यों पढ़ा? इतने में ही वे आ गये। मैंने जल्दी से वह पाकेट बुक कन्धा में रख दी। उनकी ओर देखा तो वही मुसकान। मेरे मन में आया कि इन्हें मालुम हो गया है। मैंने हाथ-पैर धुलाये। फिर सबसे पहला काम उन्होंने यही किया कि पुस्तक कन्था में से निकाल कर मेरे हाथ में देकर कहा, "पढ़ो।" मैंने इधर-उधर पढ़ कर कहा, "बहुत अच्छी है।" फिर दोनों हाथों से जब उसे सामने किया तो बोले, "इसे तू ही ले लो।" मैं संकोच में पड़ गया। परन्तु उन्होंने फिर कहा, "नहीं-नहीं, इसे तू ही ले ले।"

---

*जिसकी दृष्टि बिना दृश्य के स्थिर है, वायु बिना निरोध किये स्थिर है और चित्त बिना अवलम्ब के स्थिर है, वही योगी है और वही गुरु है। उसी की सेवा करनी चाहिए।

"मैंने पुस्तक पास रख ली। फिर छत पर जाकर आसन लगाया और रात्रि के दूध का प्रबन्ध करके घर लौट आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जाकर देखा तो उसी प्रकार सिद्धासन से बैठे हुए थे। इसी प्रकार नित्य रात को बैठे छोड़ कर आता और प्रातःकाल बैठे हुए पाता। इससे रात को वहीं रहने की इच्छा हुई। कई रातें रहा, किन्तु जब देखता तब बैठे ही दिखायी देते। मुझे संकोच तो था ही नहीं, पूछा, "महाराज जी! आप सोते क्यों नहीं हैं?" बोले, "जब सत्त्व बढ़ जाता है तो निद्रा नष्ट हो जाती है। निद्रा तो तमोगुण है।" मैं आप की चन्दन-पुष्पादि से पूजा करता था। यह देखकर दुसरे लोग भी पूजन करने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरी श्रद्धा बढ़ गयी। फिर तो उनको छोड़ कर और किसी महात्मा के प्रति वैसा आकर्षण ही नहीं रहा। इस बार आप सत्ताईस दिन हाथरस में विराजे। घर-में भिक्षा के लिए जाते रहे। मेरे घर से तो ऐसा सम्बन्ध हो गया मानो अपने परम आत्मीय ही हैं।

न हसन्ति मुनीश्वराः

एक दिन स्कूल के कुछ छात्र बाग में आये और महाराज जी से कहने लगे, "महाराज? हँसने से बहुत लाभ होता है। शरीर में खून बढ़ता है, इससे बल की भी वृद्धि होती है और फेफड़ा मजबूत होता है। इसमें आपकी क्या सम्मति है?" इस पर श्रीमहाराज जी बोले, "भैया! हमारे यहां तो लिखा है—

'चक्षुर्भ्यां हसते विद्वान् दन्तौष्ठंश्च मध्यमाः।
अधमा अट्टहासेन न हसन्ति मुनीश्वराः॥'

अर्थात् विद्वान केवल नेत्रों से हँसता है, सामान्य पुरुष दाँत और

ओठों से हँसते हैं तथा निम्न कोटि के पुरुष खिलखिला कर हँसा करते हैं। परन्तु मुनीश्वर तो कभी नहीं हँसते।"

उन दिनों हाथरस के अनेकों सत्संगी आपके पास आते और बड़े आनन्द से प्रश्नोत्तर किया करते थे। उस समय श्री स्वामी जी में अन्तर्यामित्व का भाव विशेष रूप से देखा जाता था। आप लोगों के मनोभाव को जानकर बिना पूछे ही उत्तर दे देते थे।

अद्भुत विवाह

मेरे घर में चार लड़कियां विवाह के योग्य हो गयी थीं। मैं तीन वर्षों से लड़कों की खोज में था, परन्तु योग्य वर नहीं मिल रहे थे। इससे मुझे बड़ी चिन्ता थी। सं० १९८३ के ज्येष्ठ मास में मैं श्री महाराजजी के दर्शनार्थ रामघाट गया। तीसरे पहर वे कुटी से निकले, मैं उनका कमण्डलु लेकर साथ हो लिया। बोले, "तू जायगा नहीं ?" मैं आश्चर्यचकित हुआ। अभी तो आया हूँ, फिर यह प्रश्न कैसा ? मेरी आँखों में आँसू भर आये। आप जाकर गंगा जी की रेती में बैठ गये और मेरी ओर देखकर बोले, "अच्छा, कल चले जाना। चिन्ता क्यों करता है ? चारों लड़कियां चार विद्यार्थियों को अर्पण कर देना और एक-एक कटोरा चावल भर कर दे देना। विवाह हो गया।" मैं मन ही मन विचार करने लगा कि इतने दिनों से तो लड़के ढूँढ़ रहा हुँ, लड़कियां पढ़ी-लिखी हैं, पर वर मिलते ही नहीं। क्या किया जाय ? दूसरे दिन मुझसे फिर बोले, "अरे ! गया नहीं ?"

मैं उसी समय चल दिया। हाथरस जंकशन पर मुझे पं० राधाकृष्ण जी मिले। बोले, "कहाँ से आ रहे हैं ?" मैंने कहा, "स्वामी जी के पास से ?" तब वे बोले, "तुम भी स्वामीजी बन जाओ। चार

लड़कियाँ विवाहयोग्य घर में हैं, पर तुम्हें कोई चिन्ता ही नहीं है।" मैंने उत्तर दिया, "मैं क्या करूँ?" वे बोले, "मेरे साथ चलो और जब तक लड़के निश्चित न हो जायँ घर मत लौटो।" मैं उनके साथ हो लिया। एक सप्ताह के भीतर ही चारों लड़के मिल गये। जिस लड़के को देखते उसी को चार रुपये भेंट कर देते। लड़कों के पिता कहते, "अभी लड़की तो देखी नहीं है, कैसे निश्चय करें?" तथापि मान जाते। मैंने समझ लिया, यह सब श्रीमहाराज जी की कृपा है। मैं लौट कर घर आया। लड़की देखने वाले आकर लड़कियाँ देख गये और विधि भी मिल गयी। चारों विवाह एक ही तिथि में होने निश्चित हुए।

अब विवाहों की तैयारी होने लगी। एक धर्मशाला में चार मण्डप बने और एक धर्मशाला चारों बारातों के जनवासे के लिए निश्चित की गयी। मैंने विवाह के अवसर पर हाथरस पधारने के लिए पूज्य श्री महाराज जी से प्रार्थना की और उन्होंने समय पर पहुँच जाने का वचन दे दिया। पीछे यद्यपि मैं उन्हें विवाह की तिथि से सूचित नहीं कर सका, क्योंकि उस समय यह पता नहीं लग सका कि वे कहाँ हैं, तो भी ठीक भट्टी खुदने के दिन वे स्वयं हाथरस आ गये। मैं जाकर उन्हें आदरपूर्वक लिवा लाया और विवाह मण्डपों के बीच में एक चौकी पर विराजमान करा दिया। उस समय लड़कियों सहित समस्त कुटुम्ब ने आपका पूजन किया, आरती उतारी तथा लड्डू और दही का भोग लगाया। आपने बड़े प्रेम से भोग लगाया और फिर बगीचे को चले गये। मुझे आज्ञा दी कि जब तक विवाह का सम्पूर्ण कार्य समाप्त न हो मेरे पास मत आना।

चार जगह से चार बारातें आयीं। उन्हें एक ही धर्मशाला में ठहराया गया। जब चढ़त हुई तो उसमें बाजा नहीं था। शंख-घड़ियालों से बारातें निकलीं। चारों दूल्हे घोड़ों पर सवार थे। उनके आगे राम, लक्ष्मण, कृष्ण और बल्देव की चार कागज की मूर्त्तियां थीं। यह थी उस बारात की फुलवाड़ी। उनके आगे साढ़े तीन सौ बाराती पैदल चल रहे थे। लोग बड़े कुतूहल से यह अद्भुत बारात देख रहे थे। समझते थे कि यह ठाकुरजी का विवाह है? बिलकुल नयी बात थी न।

अस्तु! चार मण्डपों में एक साथ ही विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। कार्यकर्ता थे पं० तुलसीरामजी। शहर की स्त्रियां आ-आकर वरों को तिलक और भेंट करती थीं। मना करने पर भी मानती नहीं थीं। बारातियों को दो-दो रुपये, चार-चार लड्डू तथा गीता और रामायण की पुस्तकें भेंट में दी गयी। सम्पूर्ण कार्य बड़े आनन्द से सम्पन्न हुआ और श्रीमहाराज जी की कृपा से मैं एक बड़ी चिन्ता से मुक्त हो गया।

अपमान में अक्षुब्ध

एक बार आप नरवर पाठशाला पर पधारे। साथ में केवल आनन्द ब्रह्मचारी थे। और भक्तों को पीछे छोड़ दिया था। वहां पण्डित स्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी को 'ॐहरि' करके नीचे बैठ गये। वे स्वय तख्त पर बैठे थे। विश्वेश्वराश्रमजी ने बहुत सी उल्टी-सीधी बातें कह कर फटकारना आरम्भ किया—"कीर्तन कराता है। शङ्कर सम्प्रदाय का साधु होकर उसके विपरीत आचरण का पोषक बनता है। रास में लड़के नचाता है।" इत्यादि। आप अपनी स्वाभाविकी शाम्भवी मुद्रा से शान्त बैठे रहे। इनके शान्त रहने से वे

और भी चिढ़ गये तथा इन्हें कुटिया से बाहर निकाल आये। तब आप उन्हें पुन: 'ॐहरि' कहकर रामघाट चले आये।

इस समय नरवर विद्यालय के संस्थापक पं० जीवनदत्त जी बाहर गये हुए थे। लौटने पर उन्हें सब हाल मालूम हुआ तो वे रामघाट आये और बोले, "महाराजजी ! स्वामीजी से जो जैसा कह देता है वैसा ही वे मान लेते हैं। उनका स्वभाव तो आप जानते ही हैं। उनके कहने का आप बुरा न मानें, क्रोध न करें।" आप ने कहा "पण्डित जी ! वे तो ठीक ही कहते हैं। मैं भ्रष्ट हो गया। क्रोध तो मुझे किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। जिस दिन मुझे क्रोध आयेगा, मेरा शरीर नहीं रहेगा।"

इसके कुछ काल पश्चात् पण्डित स्वामी बीमार पड़े। उनका शरीर पात होने की सम्भावना हो गयी। तब उनके हृदय में श्री महाराज जी के प्रति किये अपमान का पश्चात्ताप जाग्रत् हो उठा वे बहुत दु:खी हुए और सन्देश भेजा कि महाराज दर्शन दें। श्री महाराज जी ने कहा, "उनसे कहना, मैं अवश्य आऊँगा।" उन दिनों मैं भी नहीं था। मेरे सामने ही आपने कहा था, "अच्छा है, स्मृति में जाने दो।" परन्तु जिस दिन उनका शरीरान्त हुआ उसी दिन कुछ देर से आप नरवर पहुँच गये थे। बड़े उत्साह से कीर्तन कराते हुए उन्हें गङ्गा जी में जल समाधि दिलायी और स्वय ही वहां रहकर उनका निर्वाणोत्सव कराया।

उपदेश वाक्य

प्रश्न—साधु कौन है ?

उत्तर—जो इतना छिपे कि उसे कोई साधु न समझे—

'अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ।'

आप नीचे लिखे वाक्यों को प्रायः बोला करते थे—

१. "यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैमुक्तो यः स च मे प्रियः ।।",

२. साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिं ।
फूल पात तोड़े नहीं, रहे बगीचे माहिं ।।

३. "मैं न बन्दा न खुदा था, मुझे मालूम न था ।
दोनों इल्लत से जुदा था, मुझे मालूम न था ।।

४. वजह मालूम हुई तुमसे न मिलने की सनम ।
मैं ही खुद पर्दा बना था, मुझे मालूम न था ।।

५. आप ही आप हूँ, यहां फायल व मफऊल है कौन ?
मैं जो आशिक हूँ कहा था भुझे मालूम न था ।।"

साधकों के लिये आपका कथन था—कार्यं साधयेद्वा शरीरं पातयेद्वा ।" अर्थात् ऐसा दृढ़ संकल्प लेकर साधन में लगे कि या तो कार्य पूरा करले, नहीं तो शरीर को नष्ट कर डाले ।



श्रीराधेश्यामजी सेकसरिया, हाथरस

मेरे पूज्य पिता श्री कन्हैया लाल जी महाराज जी के प्रेमी थे। वे उनके दर्शनों के लिए प्रायः गोङ्गाघाट पर जाया करते थे। जीवन के अन्तिम समय पर जब वे रुग्णावस्था में थे, श्री महाराज जी उन्हें दर्शन देने के लिए हाथरस पधारे थे। उसी समय सबसे पहले मुझे आप के दर्शन हुए। पिता जी ने मेरा हाथ श्री महाराज जी के हाथ में पकड़ा कर उनसे प्रार्थना की कि यह बालक आप का ही है, इस पर सदैव कृपा दृष्टि रखें और इसे अपना ही समझें। तब से श्रीमहाराज जी ने मेरे ऊपर वही भाव रखा। उसी समय से क्रमशः धीरे-धीरे मेरी भी उनके चरणों में श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गयी। मैं सत्सङ्ग के लिए समय-समय पर अनेकों बार उनके पास जाता रहता था। इससे परमार्थ में भी मेरी रुचि हो गयी। आप के दर्शन होने के पहले से ही मैं श्री रामचन्द्र जी की उपासना और उन्हीं के मन्त्र का जप किया करता था। श्रीमहाराज जी ने भी मेरे लिए इसी साधन की पुष्टि की। एक बार मैंने उनसे प्रार्थना की कि मैं तो अपने मन से ही मन्त्र जप करता हूँ, किसी गुरु से तो मुझे मन्त्र प्राप्त हुआ नहीं है। अतः कृपा करके आप मुझे मन्त्रोपदेश कर दीजिये। मैंने सुना है कि मनमुखी मन्त्र जपने से सिद्धि नहीं मिलती। तब आप हँस कर बोले, 'तेरा मेरे प्रति जो भाव है वही क्या कम है? उसी से सब कुछ हो जायगा। तू जो कुछ करता है, वही ठीक है, वैसा ही करता रह।" श्री महाराज जी मुझे प्रायः यही उपदेश किया करते थे कि ये सब वस्तुयें नाशवान् हैं, इनमें आसक्ति नहीं करना

चाहिये । याद रखो, वस्तु के भोग में उतना सुख नहीं है जितना उसके त्याग में है। स्वादिष्ट पदार्थ खाने में वह आनन्द नहीं है जो दूसरे को उसे खिलाने में है।

श्री महाराज जी के उपदेशों से मुझे जीवन में बहुत लाभ हुआ है। मुझे भङ्ग पीना, ताश खेलना, सिनेमा देखना और व्यर्थ वार्तालाप करना आदि अनेकों दुर्व्यसन थे। आपकी कृपा और सत्संग के प्रभाव से वे सभी छूट गये। इसके सिवा सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरे हृदय में शोक-मोहादि जैसे पहले व्यापते थे वैसे अब नहीं व्यापते। अब तो कैसी ही परिस्थिति आ जाय उनकी कृपा से चित्त में शान्ति और धैर्य बने रहते हैं।

श्री महाराज जी में मुझे सबसे बड़ी विशेषता यह दिखाई दी कि वैराग्यवान् होते हुए भी उनमें अपनत्व का भाव विशेष था। वे किसी को भी दुःख में पड़ा नहीं देख सकते थे। किसी को दुःखी देखते ही व्याकुल हो जाते थे और जैसे बने तन-मन-वचन से उसका दुःख दूर करने का प्रयत्न करते थे। उनमें सेवाभाव भी बहुत था। अपने बड़प्पन को त्यागकर वे किसी भी प्रकार की सेवा करने को तैयार रहते थे। उनमें अपनी सेवा कराने की तनिक भी वासना नहीं थी। जो उनकी सेवा करना चाहते थे उन्हें भी वे मना ही करते रहते थे। बड़ी से बड़ी समस्यायें जो हमसे अपने-आप नहीं सुलझ पाती थीं, उनकी कृपा से बात की बात में हल हो जाती थीं। वे कोई ऐसा उपाय बता देते थे कि सारी चिन्ता मिट जाती थी। उनमें एक बहुत बड़ा गुण यह था कि चाहे कैसी भी विषम परिस्थिति हो उन्हें क्रोध कभी नहीं होता था। वे सदैव शान्त और स्वरूपनिष्ठा में अविचल भाव से स्थित रहते थे। वे भक्तों के लिये भक्त और ज्ञानियों के

लिये ज्ञानी थे। जिनकी जैसी निष्ठा होती उमे उसी में दृढ़ कर देते थे। उनकी दृष्टि में ज्ञान और भक्ति का समान आदर था और अधिकारीभेद मे वे दोनों ही का जोरदार प्रतिपादन करते थे। मुझे स्वप्न में भी अमेंकों बार उनके दर्शन हुए हैं, किन्तु कभी कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। यों भी उनसे प्रश्न करने की मुझे कभी आवश्यकता नहीं पडती थी, वे बिना पूछे स्वयं ही मेरे मन में उठे प्रश्न का उत्तर दे देते थे।

(१)

एक बार मुझे संग्रहणी की बीमारी हो गयी। धीरे-धीरे शरीर मरणासन्न अवस्था को पहुँच गया। मैं मृत्यु की आशंका से भयभीत रहने लगा। उससे घबड़ाकर मैं श्रीमहाराज ची के दर्शनार्थ अमरसा गया। मेरे मानसिक भय को जान कर आप कहने लगे, "भैया ! मृत्यु तो सभी की अवश्यम्भावी है, उससे डरने से क्या लाभ ? देखो, एक बार एक मनुष्य ज़गल में एक सिंह के सामने पड़ गया। पहले तो वह बहुत डरा, किन्तु फिर उसने सोचा कि अब यह मुझे खा तो जायगा ही फिर क्यों डरूँ ? यह विचार कर वह निर्भयतापूर्वक डटकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसकी निर्भयता से प्रभावित होकर सिंह उस पर आक्रमण न कर सका और वह मृत्यु के मुख से बच गया। इसी प्रकार जब एक दिन मृत्यु होना निश्चित ही है तब उससे डरने से क्या लाभ ?" श्री महाराज जी के इस उपदेश से मेरे मन से मृत्यु का भय निकल गया और तभी से क्रमशः मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। यहाँ तक कि कुछ दिनों में मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

(२)

यों तो श्री महाराज जी जब कभी हाथरस पधारते थे तो उनका आगमन ही उत्सव का रूप धारण कर लेता था। तथापि आपके तत्त्वावधान में मेरे यहां चार उत्सवों का भी आयोजन हो चुका है। इन उत्सवों में अखण्ड हरिनामसंकीर्तन, कथा, सत्संग प्रवचन और साधु-ब्राह्मणों की सेवा तथा नगरकीर्तन आदि का बड़ा आनन्द रहा। प्रथम उत्सव श्री रामनवमी के उपलक्ष में हुआ। उसके अन्त में जो नगरकीर्तन हुआ था उसकी शोभा बड़ी ही अलौकिक थी। उसमें सहस्रों नर-नारी कीर्तनानन्द में मत्त हो रहे थे। उसमें परिकरसहित श्री महाराज जी के अतिरिक्त पूज्य श्री हरिबाबा जी, बाबा रामदास जी, बाबा रघुनाथदास जी, श्रीजयरामदास जी 'दीन' श्रीकृष्णानन्दजी बम्बई वाले आदि और भी अनेकों महापुरुष पधारे थे। दूसरा उत्सव शीतकाल में हुआ था। उसमें उपर्युक्त सम्पूर्ण आयोजनों के अतिरिक्त श्रीरासलीला का भी आयोजन किया गया था। तथा पण्डित सभा और कवि सम्मेलन भी होते थे। प्रायः पन्द्रह दिन तक उत्सव सानन्द चलता रहा, किन्तु फिर एक विघ्न उपस्थित हो गया। मेरा एक मात्र पुत्र, जिसकी आयु केवल एक वर्ष की थी, चेचक की बीमारी से चल बसा। मृत्यु से पूर्व मैंने बालक को उत्सव में पधारे हुए सभी महापुरुषों के दर्शन कराये थे। उसकी मृत्यु हो जाने से सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सभी के मुख उदास हो गये। समागत सन्तों में से कई जहां-तहां चले गये। जब बालक के मृत कलेवर को यमुना जी में प्रवाहित कर हम सायंकाल में श्रीमहाराज जी के पास पहुँचे तो पूछा कि आपने उत्सव बन्द क्यों कर दिया? आप बोले, "मैंने बन्द नहीं किया, लोगों के चित्त खिन्न हो गये, अतः

वे स्वयं ही चले गये हैं।" परन्तु श्रीमहाराज जी अन्त तक विराजे रहे।

इस दुर्घटना के कारण लोगों को तो चर्चा का एक प्रसङ्ग मिल गया। नगर में यह अपवाद होने लगा कि अच्छा उत्सव हुआ, लड़का ही मर गया। एक दिन श्रीमहाराज जी के आगे इस अपवाद की चर्चा हुई तो आप बोले, "लड़का मर गया तो कोई बात नहीं एक वर्ष के भीतर फिर यही लड़का तुम्हारे यहाँ जन्म लेगा।" आपकी यह वाणी सर्वथा सत्य हुई। एक वर्ष के भीतर ही पुनः पुत्र का जन्म हुआ और वह अभी तक जीवित है। पुत्र के विषय में हमारे यहाँ कुछ ऐसा योग रहा है कि मेरे पिताजी के भी आठ सन्तानें हुई थीं, किन्तु उनमें एक पुत्री ही जीवित रही थी। मैं दस वर्ष की आयु में उनकी गोद आया था।

कुछ समय बीत जाने पर मैंने श्री महाराज जी से पूछा, "भगवन्! आपकी उपस्थिति में उत्सव में ऐसा विघ्न क्यों आया?" सुनकर आप चुप रह गये। परन्तु जब दुबारा आग्रहपूर्वक पूछा तो बोले, "श्यामलाल खण्डेलवाल के लड़के मोहनलाल की तुझमें प्रीति और मुझमें श्रद्धा थी। उसकी आयु प्रायः बाईस साल की थी। वह हरि बाबाजी तथा और भी बड़े-बड़े महात्माओं के, जिनका नाम उसने सुन रखा था, दर्शन करना चाहता था। परन्तु पिताजी की आज्ञा न मिलने के कारण वह जा नहीं पाता था। वह सन्त सेवा में रुपया भी खर्च करना चाहता था, किन्तु पिता के अनुदार स्वभाव के कारण उसकी यह लालसा भी पूर्ण नहीं होने पाती थी। एक बार वह लड़का तुम्हारे साथ एतमादपुर मेरे दर्शन करने के लिये गया था। चलते समय उसने बड़े प्रेम से मुझ से पूछा था, "महाराज जी!

अब मुझे आपका दर्शन कहां होगा ?" उस समय मेरे मुँह से निकल गया—

करे खाने-ए-बदोशी की खुदा खुद कार सामानी ।
नया मञ्जिल नया खाना नया दाना नया पानी ।'*

दैवयोग से लौटने के एक सप्ताह पश्चात् ही ज्वर आकर उसकी मृत्यु हो गयी । उसका मुझ में राग था, सन्त-महात्माओं के दर्शनों की लालसा थी और तुम्हारे प्रति प्रीति थी ही । अतः उसी ने मर कर तुम्हारे यहां जन्म लिया था । वह सन्तसेवा में खर्च करना चाहता था । इसी से उसके निमित्त तुमने यह उत्सव किया और जिन-जिन महात्माओं के वह दर्शन करना चाहता था उन्हें बुलाकर अन्त समय उनके दर्शन भी कराये । इस संकल्प के पूर्ण होते ही वह शरीर छोड़कर चला गया ।"

(३)

एक बार मेरे मन में एक दुर्वासना ने जोर पकड़ा । परन्तु मैंने किसी से भी उसकी चर्चा नहीं की । एक दिन मेरे मन की बात जानकर श्री महाराजजी कहने लगे, "अरे ! क्या तुम मुझसे भी छिपाकर ऐसा करना चाहते हो ? क्या मुझसे यह बात छिपी रह सकती है ? आगे कभी ऐसा विचार नहीं करना ।" श्रीस्वामी जी के इन शब्दों में उनकी प्रबल शक्ति का योग था । अतः इनके प्रभाव से मेरा वह कुसंस्कार निर्मूल हो गया और उसके पश्चात् फिर कभी उस ने सिर नहीं उठाया । इस प्रकार समय-समय पर हमारे बिना कहे ही वे हमारी रक्षा किया करते थे ।

* जो अनिकेतन महात्मा हैं उनके योग-क्षेम की व्यवस्था स्वयं भगवान् करते हैं । उनका नया विश्राम स्थान होता है, नया घर होता है तथा नया खाना-पीना होता है ।' इस कथन से श्रीमहाराजजी का तात्पर्य यह था कि यह कहा नहीं जा सकता कि मैं अब कहां रहूँगा ।

श्रीजगन्नाथप्रसाद जालान, हाथरस

प्रथम दर्शन

मैं अभी बच्चा ही था। उस समय मेरी रुचि भगवान् शंकर-की उपासना में थी। मैं यथासाध्य उन्हीं का भजन-चिन्तन करता था। सन् १९३२ की बात है। मैंने एक दिन रात्रि में स्वप्न देखा। हाथ में वीणा लिए देवर्षि नारदजी आये हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया। वे बोले, "वत्स! आज तुम्हारे यहां भगवान् शंकर भिक्षुक के रूप में आवेंगे। इस लिए तुम किसी अभ्यागत का अनादर मत करना।" इतना कहकर देवर्षि अन्तर्धान हो गये। फिर स्वप्न में ही मैंने बड़ी प्रसन्नता से भगवान् शंकर की पूजा एवं भोगराग की सामग्रियां तैयार कीं और उनके शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगा। मन में बड़ी प्रसन्नता, बड़ा उल्लास था कि आज मुझे भगवान् शंकर के दर्शन होंगे।

पहले एक बुढ़िया आयी और बोली, "मुझे खाने के लिए आटा, दाल, घी दो। मैं तो इस प्रतीक्षा में ही बैठा था। तुरन्त उसकी इच्छानुसार सब सामान दे दिया और वह प्रसन्नतापूर्वक चली गयी। उसके पश्चात् भिक्षुक के रूप में भगवान् पधारे। उनके शरीर में जहां-तहां अनेकों पट्टियां बँधी थी। वे कुछ पद गुनगुना रहे थे और उनके नेत्र बड़े सुन्दर थे। मैं उनके चरणों में गिर गया और बोला, "आप स्वय भगवान् हैं, आप भीतर पधारिये।" उन्होंने कहा, "नहीं भाई! मैं तो भिक्षुक हूँ।" तथापि मेरे प्रेमपूर्ण आग्रह से

वे भीतर आ गये, मैंने उन्हें एक सुन्दर आसन पर विराज मान कराया और गन्ध-पुष्प आदि से पूजा की। फिर जब चरणों में प्रणाम किया तो देखा कि उनका स्वरूप दिव्य हो गया हैं। उनके श्रीअङ्ग के चारों ओर प्रकाशपुञ्ज है, मस्तक कण्ठ और भुजाओं में सर्प हैं तथा हाथ में एक विशाल त्रिशूल है। इस रूप को देखकर मैं डर गया, मेरे नेत्र बन्द हो गए और मैंने प्रार्थना की कि आपके इस रूप को देखकर मैं भयभीत हो रहा हूँ। इन सर्पों से मुझे डर लगता है। तब वे मुसकाये और वे सर्प तत्काल अदृश्य हो गये उन्होंने मेरे शिर पर हाथ रख कर कहा, "तू क्या चाहता है ?" मैंने इतना ही कहा, "आप के चरणों में मेरा प्रेम हो।" वे बोले, "आज से तीसरे दिन तुम्हें एक ऐसे महात्मा मिलेंगे जो मेरे ही स्वरूप है। उनकी सेवा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।" इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गये। उस समय मुझे अन्तर्हित होती ज्योति दिखायी दी। फिर मेरा स्वप्न भंग हो गया, परन्तु मुझे उसकी पूरी स्मृति बनी रही।

अब मैं उत्सुकतापूर्वक तीसरे दिन की प्रतीक्षा करने लगा। यह बात किसी पर प्रकट नहीं की। ठीक तीसरे दिन पिताजी बोले, "आज एक महात्मा आये हैं, चल, तुझे दर्शन करा लाऊँ।" सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं उनके साथ विष्णुदयाल के बगीचे में पहुँचा। उसी समय श्रीमहाराजजी गुफा की छत पर से उतरे। उनके दर्शन करने पर स्वप्न की बात को स्मरण करते हुए मैंने साक्षात् शिवबुद्धि से उन्हें प्रणाम किया। आप आकर आसन पर विराज गये। फिर मुझ से कहा, "तू कोई प्रार्थना सुना।" मैन "शरणागतपाल कृपालु प्रभो ! हमको एक आश तुम्हारी है।" यह प्रार्थना गाकर सुनायी। तब श्रीमहाराज जी ने प्रसाद स्वरूप सबको एक-एक और

मुझे दो पेड़े दिये तथा मुझे प्यार भी किया। उसी दिन से मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया। धीरे-धीरे उनके चरणों में मेरी श्रद्धा-प्रीति बढ़ती गयी। अब तो ऐसी दशा हो गयी कि उनके दर्शनों के बिना रहा नहीं जाता था। पिताजी मेरी इस प्रवृत्ति से अप्रसन्न थे और मुझे पीटते भी थे, तथापि किसी न किसी प्रकार मैं उनके पास चला ही जाता था।

मन्त्रोपदेश

एक दिन श्री गणेशीलाल जी गुरुपूर्णिमा का पूजन करने के लिये रामघाट जा रहे थे। मैंने भी जाना चाहा, पर पिताजी ने मुझे बाँध कर उल्टा लटका दिया और खूब मार लगायी। कहने लगे, "साधुओं के पास क्यों जाता है, साधु हो जायगा।" उसी दिन रात्रिमें श्रीस्वामी जी ने मुझे दर्शन दिया और बोले, "बेटा! तू डरना नहीं, मैं तो सदैव तेरे साथ हूँ। कल चले आना।" मैं दूसरे दिन मौका पाकर रामघाट पहुँच गया और रोने लगा। इस पर श्रीमहाराज जी ने मुझे बहुत प्यार किया। ऐसा प्यार तो जीवन में कभी नहीं मिला। मेरा सारा दुःख जाता रहा। मैंने प्रार्थना की, "महाराज जी! मुझे शंकरजी का मन्त्र बता दीजिये।" आप बोले, "शंकरजी की कृपा तो तेरे ऊपर है ही। अब तू भगवान् कृष्ण की उपासना किया कर।" इसके पश्चात् आपने कुटिया बन्द करा दी और कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण बातें कहीं जिनसे उन्हीं में मेरी इष्टबुद्धि हो गयी और मैं भगवद्भाव से उन्हीं की उपासना करने लगा।

निर्भयता

रामघाट में एक दिन श्री महाराजजी तख्त पर विराजमान थे। वे ध्यानावस्थित थे और मैं पंखा झल रहा था। इतने ही में एक

लम्बा काला सर्प वहाँ आ पहुँचा। रामघाट में कुटिया के आस-पास बहुत सर्प रहते थे। उस सर्प को देखकर मैं चिल्ला उठा, "महाराज जी ! सर्प !" वे बोले, "चुप रह, डरेमत। यह कोई महात्मा है दर्शनों के लिए आया है।" सर्प तख्त के पास आकर फन उठाकर खड़ा हो गया। तब महाराज जी ने उसके आगे कुछ पेड़े डाल दिये। सर्पने दो तीन बार पेड़ों पर फन मारा। फिर महाराज जी ने चुटकी बजायी और हँसकर कहा, "भाग जा।" तब सर्प चुपचाप वहाँ से चला गया। रामघाट में सर्पों की ऐसी अनेकों घटनाएं हुआ करती थीं।

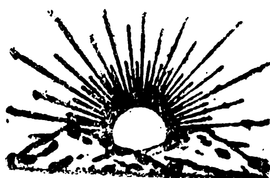
इष्टरूप में दर्शन

एक बार बाँध पर बड़ा विशाल उत्सव हुआ। वहाँ अनेकों सन्त पधारे थे। 'कल्याण' के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार भी आये थे। एक दिन मन में ऐसी भावना उठी कि श्री महाराज जी तो सर्व-समर्थ हैं, वे मुझे श्रीकृष्णरूप में भी दर्शन दे ही सकते हैं। यह सोच कर मैंने उनसे प्रार्थना की कि आप श्रीकृष्णरूप में दर्शन दें। बोले, "तू बड़ा मूर्ख है, भजन कर, भजन करने से ही भगवान् के दर्शन होते हैं।" पर मैं तो उनमें भगद्भाव रखता था। अतः अपनी टेक पर अटल रहा और निश्चय कर लिया कि जब तक मुझे कृष्णरूप में दर्शन नहीं देंगे, मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। श्रीमहाराज जी का यह स्व-भाव था कि यदि किसी कारण से कोई भोजन नहीं करता था तो वे अत्यन्त व्याकुल हो जाते थे। फिर तो किसी न किसी प्रकार उसे भोजन कराते ही थे।

दूसरे दिन आपने श्री हनुमानप्रसाद जी से कहा, "भैया ! यह भा मारवाड़ी बालक हैं, तुम इसे समझा दो, यह ऐसा हठ छोड़ दे।"

हनुमानप्रसाद जी मुझे समझाने लगे, "महात्माओं से ऐसा हठ नहीं करते। इससे उन्हें कष्ट होता है। यह तो तुम्हारी निष्ठा पर निर्भर है। भजन करो, भजन से ही भगवद्दर्शन हो सकता है।" पर इनबातों से मेरा कोई सन्तोष नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा, "भाईजी! महाराज जी से मेरा आन्तरिक भावसम्बन्ध है। वे निश्चय ही मेरी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं। इस बीच में आप कुछ न कहें।" अब उन्होंने हँसते हुए श्रीमहाराज जी से कहा, "यह तो बड़ा हठी है, समझता नहीं। इसे तो आप ही समझा सकते हैं।"

तीसरे दिन की बात है। रात्रि के दो बजे का समय था। मैं सदा की भाँति श्रीमहाराज जी के तख्त के पास चरणों की ओर बैठा था। वे एकाएक उठ बैठे और बोले, "तू हठ क्यों नहीं छोड़ता? अच्छा, अब नेत्र बन्द कर ले।" उसी क्षण मेरे नेत्र बन्द हो गये और सामने ही मुझे मुरली बजाते हुए श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। उसके पश्चात्, उसी समय श्रीकृष्णरूप में आपके भी दर्शन हुए। मेरी भावना पूर्ण हो गयी। मैं चरण पकड़कर बहुत देर तक रोता रहा। शरीर का अनुसन्धान नहीं रहा। श्रीमहाराज जी ने मुझे उठाया और प्रसाद दिया।



पं० श्रीवंशगोपाल जी तिवारी, ड्राइंगमास्टर

हाथरस

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का दर्शन मुझे सबसे पहले यहाँ विष्णुदयाल के बगीचे में ही हुआ था। उस समय वे सिद्धासन से बड़ी शान्त मुद्रा में विराजमान थे। कोई प्रश्न करता तो संक्षेप में समाधानकारक उत्तर दे देते और पुनः मौन हो जाते थे। मैं कई दिनों तक बराबर जाता रहा, परन्तु कभी कोई बातचीत नहीं की। धीरे-धीरे उनमें मेरी श्रद्धा बढ़ गयी और फिर तो कई बार हाथरस से बाहर भी उनके दर्शनार्थ गया।

एक बार चन्द्रग्रहण का अवसर था। हम कई मास्टर बाबा के दर्शनार्थ रामघाट को चले। मार्ग में हमारे हैडमास्टर श्रीब्रजमोहनलालजी बोले, "मुझे तो बड़ी भूख लग रही है।" मैंने कहा, "यह कैसे हो सकता है? उधर तो चन्द्रग्रहण लगा हुआ है, इस समय भोजन कैसे किया जा सकता है?" थोड़ी देर में हम बाबा के पास पहुँच गये। ग्रहण शुद्ध हुआ। पर हमने खाने-पीने के विषय में किसी से कोई चर्चा नहीं की। थोड़ी ही देर में गर्म-गर्म पूड़ियों की एक झाल और साग आया। बाबा मुझ से बोले, "इधर आओ, तुममें कौन भूखा है? उसे भोजन करा दो।" मैंने कहा, "हैडमास्टर साहब को बहुत भूख लगी है।" फिर तो उनके साथ और कई ने भी प्रसाद पाया।

श्रीमहाराज जी मुझे प्रायः यही उपदेश दिया करते थे कि कहीं रहो, मन को संकल्परहित और वासनाओं से मुक्त रखना परम आवश्यक है। यही सब साधनों का सार है। मुझे क्रोध अधिक आता था, इससे मैं लड़कों को प्रायः पीट-पाट देता था। साथ ही मेरी स्मरणशक्ति बहुत मन्द थी। बाबा ने मुझ से कहा, "यदि तुम क्रोध छोड़ दो तो तुम्हारी स्मरणशक्ति बढ़ सकती है। इसके लिए गीता का पाठ किया करो।" मैं उनके आदेशानुसार गीता का स्वाध्याय करने लगा। इससे स्वतः ही मेरा क्रोधशान्त हो गया। अब वैसा क्रोध कभी नहीं आता। मेरे चित्त में यदि कोई चिन्ता होती और मैं बाबा के पास चला जाता तो उनके दर्शनमात्र से मेरी चिन्ता शांत हो जाती थी। उनके पास जाने पर तो मुझे कुछ पूछने-पाछने का भी स्मरण नहीं रहता था।

मुझे कई बार शंकरजी के रूप में बाबा के दर्शन होते थे। जब मैंने उनसे यह बात कही तो बोले, "भैया! तेरी भावना प्रबल है, इसी से ऐसा दिखायी देता है।" एक बार दुर्गानवमी के अवसर पर मैं कर्णवास आपके पास गया। वहां सब भक्तों के साथ श्रीमहाराज जी देवीजी के दर्शनों के लिए गये। बड़े समारोह के साथ देवीजी का पूजन हुआ और फिर 'जय दुर्गे जय दुर्गे-दुर्गे जय दुर्गे जय श्री दुर्गे' का कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन आरम्भ होते ही मैंने नेत्र मूँद लिए बीच में जब जब नेत्र खोले तो देखा कि श्रीमहाराज जी अपने आसन पर नहीं हैं। उनके स्थान पर वहाँ सिंहवाहिनी श्री दुर्गा जी विराजमान हैं। मैं आश्चर्य चकित हो बड़ी देर तक उनके दर्शन करता रहा। फिर अकस्मात् दुर्गाजी अन्तर्धान हो गयीं और पूर्ववत् श्री महाराज जी

दिखाई देने लगे। मैं मन्त्रमुग्ध की भांति यह लीला देखता रहा। यहां तक कि कीर्तन समाप्त होने पर सब लोग चले गये और मुझे कुछ भी पता न चला। पीछे बाबा ने आदमी भेजकर मुझे बुलाया। जब आनन्द विभोर हुआ मैं इस प्रसंग की चर्चा करने लगा तो मुझे रोक कर बोले, "चुप, ऐसी बात नहीं कहते।" ऐसी थी उनकी अद्‌भुत लीला।



श्रीमती अन्नपूर्णा देवी, हाथरस

कुछ विचित्र घटनाएँ

(१)

मेरा बड़ा लड़का जगदीशनारायण अभी छः सात वर्ष का ही था, उसे निमोनिया हो गया। उसकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक थी, आंखें उलटी हो जाती थी। तथापि उस दिन हम बेनीराम के बाग में, जहाँ श्रीमहाराज जी का नित्यप्रति सतसंग होता था, चले गये। हमारे पीछे लड़के को पढ़ाने वाले मास्टर साहब घर पर आये। लड़के की हालत खराब देखकर वे कहने लगे, 'यहां लड़के की आंखे उलटी हुई हैं और ये लोग भक्ति करने गये हुए हैं। तिलाञ्जलि दे देनी चाहिये ऐसी भक्ति को।" बस वे स्वयं उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग गये। हम रात को सत्सङ्ग से लौटे और साथमें बाबा का चरणोदक तथा प्रसादी केला लाये। हृदय में बालक के जीवन की ओर से निराशा हो चली थी। आकर उसके मुख में प्रसादी केला और चरणोदक दिया। उसने जैसे-तैसे केला गले के नीचे उतारा और चरणोदक गुटक लिया। बस उसी समय से धीरे-धीरे उसकी अवस्था सुधरने लगी और चार-पांच दिन में वह स्वस्थ हो गया।

(२)

एक बार रात्रि को स्वप्न में मुझे बाबा ने दर्शन दिया और बोले "मैं आ रहा हूँ, तुम्हारे यहां ही भिक्षा करूँगा।" जागने पर मैंने मास्टर साहब से कहा, "आज बाबा यहां आ रहे हैं।" वे कहने लगे, "आज कल तो बाबा का कहीं पता नहीं है। वे वृन्दावन में भी नहीं

हैं। यहां कैसे आ जायेंगे ?" मैंने प्रातः काल उठकर सारा घर धोया और भिक्षा की सामग्री तैयार करने लगी। थोड़ी ही देर में जगन्नाथ दौड़ा हुआ आया और कहने लगा, "पण्डितजी बाबा आ गये हैं।" मास्टर साहब बोले, "अच्छा, इसको भी सिखा दिया है।" जगन्नाथ ने कहा, 'नहीं, पण्डितजी ! मैं विष्णुदयाल के बाग में बाबा को देख आया हूँ।" तब तो मास्टर साहब ने भी जाकर दर्शन किया। बाबा बोले, "तिवारी जी ! आज तुम्हारे यहां ही भिक्षा करेंगे।" इसके पश्चात् बाबा आये और मेरे यहां ही भिक्षा की। तब मास्टर साहब को मेरी स्वप्न की बात का विश्वास हुआ।

(३)

यह उस दिन की बात है जब हम बागला कालेज के बोर्डिंग हाउस में रहा करते थे। रात के समय हम भेंस को बाहर बांध देते थे। लड़कों ने कहा कि रात में बाहर बांधने से भैंस को कोई खोल ले जायगा, इसलिए इसे कमरे में ही बांध दीजिये। तब हम उसे कमरे में बांधने लगे। फिर उन्हीं लड़कों ने हैडमास्टरजी से जाकर शिकायत कर दी कि तिवारी साहब का भैंस कमरे में बांधी जाती है, इससे कमरा खराब होता है। हैडमास्टरजी ने उनसे कह दिया कि अच्छा, कल हम इसकी जांच करेंगे। दूसरे दिन प्रातः काल स्वप्न में बाबा ने मुझे दर्शन दिया और बोले, "बेटी ! आज हैडमास्टर निरीक्षण के लिये आवेगा।" फिर क्या था, मैंने अँधेरे में ही उठकर नौकर को बुलाया और पन्द्रह-बीस बाल्टी जल से धुलवाकर सारा कमरा साफ करा दिया। सूर्योदय के पश्चात् हैडमास्टर साहब निरीक्षण करने के लिए आये और कमरे को सर्वथा स्वच्छ देखकर शिकायत करने वाले लड़कों को ही डांटने लगे।

(४)

एक बार किसी विशेष कारण से मेरी और मास्टर साहब की कुछ अनबन हो गयी। इससे मास्टरसाहब ने अपना मासिक वेतन घर में नहीं दिया। कुछ दिनों पश्चात् चौके में घी आदि किसी घरेलू वस्तु की कमी हुई। परन्तु न तो मैंने मास्टर साहब से रुपया मांगा और न उन्होंने ही पूछा। मेरे चित्त में चिन्ता अवश्य हुई। अकस्मात् मेरी दृष्टि श्रीमहाराजजी के चित्रपट की ओर गयी तो उस पर कोई कागज-सा हिलता दिखायी दिया। पास जाकर देखा तो दसरुपये का नोट था। उस रुपये से मैंने आवश्यक वस्तु मँगा ली। स्कूल से लौटने पर मास्टर साहब ने पूछा कि सामान कहाँ से मँगाया है ? मैंने कहा, "श्रीमहाराज जी ने रुपया दिया है, उसी से मँगा लिया है।" इसके पश्चात् जब श्रीमहाराज जी विष्णुदयाल के बाग में आये और मास्टर साहब उनके दर्शनों को गये तो उन्होंने कहा, "तिवारी जी! एक रजाई तैयार करा लाओ।" वहां बैठे हुए कई सज्जनों ने आग्रह किया कि हम करा लायेंगे। परन्तु उन्होंने मना कर दिया। मास्टर साहब ने शंकरलालजी से कहा कि रजाई आप तैयार करा दें, उसका रुपया मैं दे दूँगा। जब रजाई तैयार हो कर घर आयी और उसकी लागतपूछी तो मालुम हुआ कि पूरे दस रुपये लगे हैं। वह रजाई श्रीमहाराज जी के पास पहुँचा दी गयी। उन्होंने वह किसी को ओढ़ने के लिए दे दी। वे स्वयं रजाई कभी नहीं ओढ़ते थे।

(५)

सन् १९४१ में बाबा को भगन्दर हो गया था। उसके आपरेशन की तैयारी हो रही थी। उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० वैद्यनाथजी अग्निहोत्री यहाँ आये। उन्हें हमने बाबा की जन्मपत्री दिखायी। उसे देखकर वे बोले, "यह जन्मपत्री जिसकी है वह या

तो राजा होगा या कोई महापुरुष। परन्तु यह बात समझ में नहीं आ रही है कि उसे सवारी का सुख नहीं होगा। यह कैसे सम्भव है ?" तब हमने उन्हें बाबा का परिचय दिया और ओपरेशन की भी बात कही। पण्डितजी बोले, "उनकी मृत्यु का योग शस्त्र से है इसलिये ओपरेशन नहीं कराना चाहिये। सम्भव है, मृत्यु हो जाय।" अतः उस समय ओपरेशन रोक दिया गया और होम्योपैथिक दवा से उन्हें लाभ हो गया।

उसके कई वर्षों बाद पण्डितजी का पत्र आया और उन्होंने वाणी से भी कहा कि इस वर्ष (सं० २००५ में) बाबा का मृत्युयोग है। यदि इस वर्ष वे बच गये तो सालभर के लिये निश्चिन्त। संवत्सर की समाप्ति के दस-पांच दिन पूर्व हम लोग सोच रहे थे कि इस बार तो बाबा का मृत्यु योग टल गया। परन्तु समाप्ति के दिन ही सूचना मिली कि एक दिन पूर्व उनका निर्वाण हो गया।

यहाँ प्रसङ्गवश बाबा की जन्मकुण्डली दी जाती है।

श्री गणेशायनमः। अथ श्रीशुभ सम्वत् १९३२ विक्रमी तत्र भाद्र कृ० ७ चन्द्रवासरेष्टम् १६।०६।०३० लग्न ८ सूर्य ०४।०७ कृत्तिकाभे प्रथमचरणें श्रीमान् महाराज मिश्र वासुदेवजी तस्यात्मज भारद्वाज-गोत्रोत्पन्न श्री वैद्यनाथमिश्र गृहे पुत्रजन्मः। नाम आर्तत्राणः जन्मराशिः १ मेष स्वामी भौमः।



बाबू मिश्रीलाल एडवोकेट, अलीगढ़

प्रातः स्मरणीय ब्रह्मविभूति श्री उड़िया बाबाजी सिद्ध महात्मा थे, योगी-संन्यासी थे, परमहंस-ज्ञानी थे, भक्त-शक्त थे, शैव-महापुरुष थे, देवदूत-देवता थे अथवा अवतार—इसे तो जो वैसा ही महात्मा या महापुरुष हो वह जान सकता है, हमको तो वे सब कुछ जान पड़ते थे। उनकी नित्य समाधि रहती थी। उन्हें देह-ज्ञान का नितान्त अभाव रहता था और 'मैं' अथवा 'मेरा' जैसे शब्द तो उनके मुख से निकलते कभी सुने ही नहीं गये। वे निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए भी जनसमाज में व्यस्त से प्रतीत होते थे। इतने व्यस्त कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिसका उन्हें ध्यान न रहे। उनके सेवक और भक्त स्त्री-पुरुष उन्हें सर्वदा घेरे रहते थे। वे कब सोते थे और कब विश्राम लेते थे – यह भी कहना कठिन है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता था कि वे सदैव तुरीय अवस्था में ही रहते थे। उनके लिये जाग्रत और सुषुप्ति में कोई भेद नहीं था। वे सदैव शान्तचित्त और प्रसन्नवदन दिखायी पड़ते थे। जनसमाज में व्यस्त रहना उनकी लीलामात्र थी। उनकी अनेक लीलाओं को देखकर अज्ञानी लोग बाबा का असली मूल्य नहीं आंक पाते थे और इसी से इन अज्ञानियों के मुख से उनके सम्बन्ध में मनमानी बातें सुनायी पड़ती थीं। परन्तु उनके विषय में तो गोसाईं तुलसीदास जी के ये वचन चरितार्थ होते हैं—

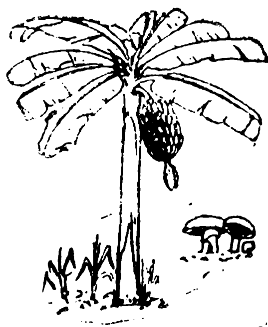
'राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।।'

ऐसे परमविभूतिसम्पन्न श्री उड़िया बाबा जी के दर्शन का सौभाग्य सबसे पहले मुझे सन् १९१५ के लगभग प्राप्त हुआ था। अलीगढ़ नगर से प्रायः दस मील पूर्व ग्रान्ड ट्रंक रोड के सहारे एक गांव में वे पधारे थे। वहां के जमींदार ने मुझे सूचना देकर बुलाया। मैंने बाबा का नाम और यश तो पहले ही सुन रखा था, अतः सूचना पाते ही तुरन्त वहां गया और उनके दर्शन किये। उनका शरीर हल्का था और स्वास्थ्य अच्छा। वे शान्ति की मूर्ति जान पड़ते थे। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझ से देर तक बातें कीं। इनके कई वर्ष पश्चात् जब तक दूसरे गांव में मैंने दूसरी बार दर्शन किये तो उन्होंने मुझे तुरन्त पहचान लिया और प्रथम बार मिलने के स्थान तथा बातों को भी दुहराया। उनके प्रति मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। परन्तु इधर वकालत के कार्य में मैं इतना व्यग्र और अलब्धावकाश रहता था कि उनसे अधिक सम्पर्क बढ़ाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हो सका। उनसे अधिक सम्पर्क में आने का अवसर तो मुझे सन् १९४४ के अन्त और १९४५ के आरम्भ में मिला जब कि उन्होंने अपने वृन्दावन आश्रम 'श्रीकृष्णाश्रम' की प्रबन्ध समिति का नियमबद्ध संगठन कराकर सरकार द्वारा उसे रजिस्टर्ड कराने का विचार किया। उस कार्य के लिए मुझे अलीगढ़ से बुलाया गया और यह सेवा मुझे ही सौंपी गयी। इसी सेवा के अवसर पर बाबा से विशेष वार्तालाप करने से मुझे यह प्रतीत हुआ कि बाबा केवल 'बाबा' ही नहीं थे। ट्रस्ट का सङ्गठन बनाने में उन्होंने मुझे अनेक ऐसे सुझाव दिये जो एक साधारण पुरुष को नहीं सूझ सकते थे। इससे उन्हें दूरदर्शी कहना भी व्यर्थ ही है, क्योंकि वे तो सर्वदर्शी थे। वे ज्ञानी ही नहीं, विज्ञानी भी थे।

मुझे खेद है कि पूज्य बाबा के संसर्ग में रहकर आध्यात्मिक लाभ उठाने का मुझे विशेष अवसर नहीं मिला। सौभाग्य से जो कुछ समय मिला उसका भी मैं यथेष्ट उपयोग नहीं कर पाया और न मुझ से कोई साधन ही हो सका। इस ओर यदि किसी अंश में मेरे भीतर कोई भावना हो तो उसे बाबा की अहैतुको कृपा का फल ही समझना चाहिये। आज बाबा का भौतिक विग्रह हमारे बीच में नहीं है, तथापि उनकी आत्मा का परम अनुग्रह अब भी ससार के अंधकार में दीपक का कार्य कर रहा है। भाग्यवान् हैं वे पुरुष जो इस प्रकाश द्वारा दीखने वाले आध्यात्मिक पथ को ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक करने में संलग्न हैं।

सन् १६४५ में मुझे जो दस दिन तक पूज्य बाबा के पास रहने का सुअवसर मिला था उस समय बाबा से मुझे जो उपदेश मिले उनका सार इस प्रकार है—'आत्मा साक्षी है। अतः दृश्य पदार्थों में आसक्ति न करें, क्योंकि ज्ञेय या दृश्यपदार्थों से उनके ज्ञाता या साक्षी आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें आत्मतत्व का अध्यास करने पर ही जीव सुख-दुख भोगता है, अन्यथा नहीं। आत्मा और अनात्मा का विवेक हो जाने पर ही जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। ऐसा पुरुष समस्त कर्मों को गुणों का खेल समझते हुए स्वयं निःसंग होकर विचरता है। देह में अनात्मबुद्धि हो जाने पर सभी वस्तुओं से असङ्गता हो जाती है, क्योंकि उनका सम्बन्ध तो देह के कारण ही भासता है। कर्म, उपासना और ज्ञान–ये साधना के तीन मार्ग हैं। इनमें कर्म का सम्बन्ध मुख्यतः देह से, उपासना का मन से और ज्ञान का बुद्धि से है। गुरु में भगवद्बुद्धि और उनके वचनों में श्रद्धा—ये सिद्धि प्राप्त करने के लिये परम आवश्यक हैं। जब पत्थर की मूर्ति में ईश्वर भाव होने से भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है तो माता, पिता या गुरु में भगवद्भाव होने

से सफलता प्राप्त हो—इसमें तो सन्देह ही क्या है। ज्ञानी की दृष्टि से जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त में कोई अन्तर नहीं है। दूसरों की दृष्टि में भले ही इनमें भेद हो। इसी प्रकार बन्ध और मोक्ष का भेद भी दूसरों की ही दृष्टि में है, ज्ञानी तो दोनों ही को कल्पित देखता है। ध्यान में शरीर, नेत्र, प्राण और मन चारों ही को स्थिर रखना चाहिये। मन की वृत्ति द्वारा शरीर को अपने से पृथक् और मृतवत् देखो, प्राणों को बिना प्रयास स्वतः चलने दो, वे धीरे-धीरे स्वतः ही स्थिर हो जायँगे। यही केवली कुम्भक है। यदि मन स्थिर न हो तो प्रणव का जप करो और मन स्थिर होने पर ऊपर लिखे प्रकार से ध्यान करो। प्राणायाम अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। तथापि ध्यान के पूर्व साधारण प्राणायाम कर लेने से ध्यान में सुविधा रहती है। फिर ध्यान का अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये।



श्रीरामस्वरूपजी केला, अलीगढ़

प्रथम दर्शन

मैंने सुना था कि उड़िया बाबा नाम के एक त्यागी महात्मा हैं और वे उत्तर-प्रदेश के प्रसिद्ध सन्त हैं। अतः उनके दर्शन की लालसा मेरे मन में थी। परन्तु मुझे श्रीमहाराजजीका दर्शन उससमय हुआ जब हम लोग किसी दूसरे ही कार्य से जा रहे थे। सन् १९२९ई० में मैं भाई साहब के* साथ किसी आवश्यक कार्यवश हाथी पर कलकत्ती जा रहा था। जिस समय हाथी नरवर पाठशाला के सामने पहुंचा ठीक उसी समय चार छः भक्तों के साथ पाठशाला से नीचे उतरते हुए श्रीमहाराज जी के दर्शन हुए। मानो मेरी चिरआकांक्षा को जानकर ही उसे पूर्ण करने के लिए उन्होंने कृपा की हो। किसी ने कहा, "ये उड़ियाबाबा जी महाराज हैं।" मैंने ऊपर से ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यद्यपि मेरा हाथी आगे बढ़ चला परन्तु उस क्षणभर के दर्शन से ही मेरा चित्त कुछ ऐसा आकर्षित हा गया कि रातभर यही उत्कण्ठा बनी रही कि कब फिर उनके दर्शन करूँ।

इसके पश्चात् जब बाबा कर्णवास में चातुर्मास्य कर रहे थे तब मैंने परिवारसहित जाकर उनके दर्शन किए। इस बार जब मैंने उनके श्रीचरणों में प्रणाम किया तो उन्होंने मेरे सिर पर अपना करकमल फिराया। उस समय मैंने अनुभव किया कि श्रीमहाराजजी ने

---

*इनके बड़े भाई श्रीमक्खनलाल केला उन दिनों जिला बुलन्दशहर में डिप्टी कलक्टर थे।

मुझे अपना लिया है। उन्होंने मुझे महामन्त्र का अधिक से अधिक जप करने की आज्ञा दी। वहीं मुझे ब्रह्मचारी श्रीकृष्णानन्दजी (गणेशजी) ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी और कशमीरी बाबा के दर्शन हुए।

अलीगढ़ का उत्सव

सन् १९३३ में श्रीमहाराज जी अमरसा नामक ग्राम में श्रीबलदेव ब्रह्मचारी के स्थान पर थे। मैंने वहां जाकर आपके दर्शन किये और अलीगढ़ की हरिनाम संकीर्तन सभा की ओर से होने वाले उत्सव में पधारने के लिए श्रीचरणों में प्रार्थना की। आपने उसे स्वीकार कर हमें प्रोत्साहित किया और आशीर्वाद दिया कि यह उत्सव अद्वितीय होगा। साथ ही यह प्रेरणा की कि इस उत्सव की व्यवस्था का सम्पूर्ण भार ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी को सौंप दो। अतः श्रीचरणों की आज्ञानुसार हम ब्रह्मचारीजी को सारा भार सौंप कर उनकी आज्ञानुसार कार्य करने लगे।

यह उत्सव मई मास में आरम्भ हुआ। इसमें इस प्रान्त के अनेकों बड़े-बड़े सन्त महात्मा और वैष्णव पधारे थे। वृन्दावनस्थ श्रीराधारमण जी के सेवाधिकारी गोस्वामी श्रीबालकृष्ण जी महाराज इस उत्सव के सभापति थे। उनके साथ थे गोस्वामी श्रीकृष्णचैतन्यजी और विजयकृष्णजी। इसके अतिरिक्त पूज्यपाद श्री महाराज जी, श्रीहरिबाबाजी, ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी, शिष्यमण्डलसहित स्वामी श्रीएकरसानन्द जी, श्रीभोलेबाबा जी, श्रीजयरामदास जी 'दीन', श्रीकृष्णानन्ददास जी मण्डीवाले और श्रीकृष्ण प्रेमभिखारी जी आदि

अनेकों महापुरुषों ने पधारकर इस उत्सव की शोभा बढ़ायी थी इस महोत्सव में चौबीसों घण्टे अखण्ड हरिनाम संकीर्तन होता था। प्रातः काल सामूहिक रूप से प्रभाती कीर्तन और फिर ८ से ११ बजे तक कथा का कार्यक्रम था। मध्याह्न में भोजनादि के लिए अवकाश रहता था। फिर १ से ६ बजे तक कथा-प्रवचन आदि होते थे। सायंकाल में पुनः सामूहिक कीर्तन होता था और रात्रि में भगवल्लीलाओं का दर्शन कराया जाता था। इस प्रकार कई दिनों तक अलीगढ़ की श्रद्धालु जनता ने सन्त-महात्माओं के दर्शन और उनके सदुपदेश से लाभ उठाया। समाप्ति के दिन बड़े समारोह से नगरकीर्तन हुआ, जिसमें महापुरुषों ने सम्मिलित होकर जनता को दर्शन दिया।

इस महोत्सव की सफलता के विषय में इससे अधिक क्या कहा जाय कि अनेकों सन्त-वैष्णव आज तक इस उत्सव को ही अपने भगवत्प्रेम का आधार मानते हैं। पूज्य बाबा के शुभाशीर्वाद और श्रीब्रह्मचारी जी के पूरुषार्थ से इस महोत्सव में जैसी सफलता मिली वैसी तो किसी को आशा भी नहीं थी। मुझे श्रीमहाराज जी ने यह कहते हुए एक फूलमाला प्रदान की कि ले बेटा ! तू अपना इनाम ले। आपके कर कमलों से प्राप्त वह पुष्पमाला अभी तक मेरी बहुमूल्य सम्पत्ति है।

कुछ विशेष घटनाएँ

(१)

एक बार बाँध से श्रीमहाराजजी कहीं अज्ञात स्थान को चले गये थे। उन्हीं दिनों हम लोग गङ्गास्नान करने के लिए राजघाट गये।

वहां गङ्गाजी में गोता लगाने से पूर्व मेरे मन में संकल्प हुआ कि यदि इस समय श्रीमहाराजजी का दर्शन हो जाता तो कितना अच्छा होता ? इसके पश्चात् गोता लगाकर ज्यों ही मैंने सामने देखा श्री-महाराजजी सामने खड़े थे । बड़े समभ्रम में हम लोगों ने उनका पूजन किया और फिर भिक्षा करायी ।

(२)

एक बार वृन्दावन में मेरे भाई साहब ने आपसे प्रश्न किया कि दिन भर भगवान् का भजन करना और भिक्षा का अन्न खाना—यह क्या अकर्मण्यता नहीं है ? इसका उत्तर देते हुए आपने कहा कि यह अकर्मण्यता नहीं, परम पुरुषार्थ है । जीव का जब भगवान के चरणों में परम विश्वास और प्रेम होता है तभी वह सर्वस्य त्याग कर भगवान् का पथिक बनता है । साधु संत गृहस्थी में से ही तो आते हैं । यदि ये घर में ही रहते तो दूसरों की तरह इनके पास भी धन, धरती, घर और कुटुम्ब आदि होते ही । परन्तु इन्होंने इन वस्तुओं को तुच्छ समझ कर इनके मोह से मुक्त हो श्रीभगवान् को अपनाया है, अतः गृहस्थों की अपेक्षा तो इनका पुरुषार्थ बहुत बढ़ा-चढ़ा है । श्रीमद्भागवत में कहा है—

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति ते नु पदवीं त इहास्थितः किम् ।

(१०।६०.४१)

अर्थात् हे कमलनयन ! आपकी प्राप्ति की लालसा से अङ्ग पृथु, भरत, ययाति और गय आदि सम्राटों ने अपने एकच्छत्र राज्यों को त्यागकर वन में जा अनेक प्रकार के कष्ट सहे, सो वे क्या इन तुच्छ

भोगों में कोई आस्था रखते थे। सोचो तो सही, ये सब लोग क्या अकर्मण्य थे? उनके समान पुरुषार्थ भी आज किसमें है? श्री रामायण जी की यह चौपाई भी प्रसिद्ध ही है—

'मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राज्य तजि होहिं भिखारी।
सोइ कोशलाधीश रघुराया। आये करन तोहि पर दाया ॥'

अतः निश्चय मानो, परमात्मा की महान् कृपा से जब विवेकवती बुद्धि प्राप्त होती है तब बड़े-बड़े सम्राटों को भी ऐसा अनुभव होता है कि सच्चा पुरुषार्थ तो श्री भगवान् को प्राप्त करने में ही है, घर-बार तो जीव को मोह में ही फँसाने वाले हैं। तभी वे सब कुछ छोड़कर भगवद्भजन में लगते हैं।

(३)

एक बार मुझे एपेण्डीसाइटीज* हो गया। ज्वर बना रहता था। और उदर में असह्य शूल होता था। लोगों ने मुझे ओपरेशन कराने-की सलाह दी। मैं दिल्ली गया और डाक्टर से ओपरेशन कराने का निश्चय कर आवश्यक तैयारी के लिये घर लौट आया। इस बीच में श्री महाराज जी अलीगढ़ आ गये। उन्हें जब मालूम हुआ कि मैं ओपरेशन कराने के लिए दिल्ली जा रहा हूँ तो वे मुझसे बोले, "दिल्ली जा रहे हो? अच्छा……तो……जाओ।"

---

*'एपेण्डिक्स' कहते हैं आन्त्रपुच्छ (आन्तों के अन्तिम भाग) को। उसमें विजातीय द्रव्य रुक जाने से उदर में अत्यन्त तीव्र शूल होने लगता है, उसे एपेण्डिसाइटीज (Apendicitese) कहते हैं।

मैंने कहा, "महाराज जी ! आप कह तो जाने के लिए रहे हैं, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है मानो मना कर रहे हों।" तब आप बोले, 'नहीं·······मैं·······मना·······नहीं करता·······जाओ ।' मैंने कहा, 'मेरे मन में तो वही भाव और भी पुष्ट हो रहा है। फिर आप कुछ न बोले । मैंने उनकी अरुचि देखकर ऑपरेशन कराने का विचार छोड़ दिया। किन्तु आश्चर्य और प्रसन्नता की बात यह हुई कि तबसे आज तक मुझे वह बीमारी फिर नहीं हुई ।

पूज्य बाबा के चरणोदक का भी मैंने जीवन में दो बार अद्भुत प्रभाव अनुभव किया। उसने दो बार मुझे महान् कष्ट से बचाया। परन्तु ऐसा अनुभव हुआ उन्हीं भावुकों को है जिन्हें बाबा ने ऐसा अनुभव करने का अवसर दिया था।

उनका उपदेश और प्रधान गुण

मेरे लिए श्री महाराज जी यही उपदेश देते थे कि सचाई और ईमानदारी से सात्त्विक जीवन बिताने की चेष्टा करो। जबसे उन्होंने मुझे सिनेमा देखने को मना किया तबसे वह मुझे बिलकुल ही छूट गया। पान, बीड़ी, सिगरेट तथा और भी अनेकों दुर्व्यसनों से छुटकारा मिल गया। तथा उनकी कृपा से ही भगवान् की ओर मेरे चित्त की यत्किञ्चित् प्रवृत्ति हुई है।

श्री महाराज जी में मैंने सबसे बड़ा गुण यह देखा कि वे जिसे एक बार अपना लेते थे उसका त्याग फिर कभी नहीं करते थे, भले ही उसमें कोई दोष आ जाय अथवा वह स्वयं अश्रद्धा करने लगे, पर वे अपनी ओर से उसके प्रति कभी दुर्भावना नहीं करते थे। मेरे यहां के एक प्रतिष्ठित सज्जन पहले बाबा में बड़ी श्रद्धा रखते

थे। परन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में उनमें कुछ अश्रद्धा का भाव आ गया था। अतः उन्होंने बाबा के पास जाना भी छोड़ दिया था। श्रीमहाराज जी से उनकी यह बदली हुई मनोवृत्ति छिपी नहीं थी। तथापि मैं जब कभी उनके पास गया मैंने उक्त सज्जन के प्रति उनका तनिक भी दुर्भाव नहीं देखा, प्रत्युत सर्वदा उनके प्रति प्रेम और दया का भाव ही देखने में आया। उनमें श्रीगोसाईं जी की यह उक्ति पूर्णिमा चरितार्थ होती थी—

'रहत न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सौ बार किये की॥'



पं० श्री भूदेव शर्मा, अलीगढ़

प्रथम मिलन

सन् १६२४—२५ ई० में मैं दूसरी बार अनूपशहर हाईस्कूल में सैकण्ड मास्टर के स्थान पर नियुक्त होकर आया। यहाँ कई सन्त-महात्माओं के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बुलन्दशहर निवासी श्रीब्रह्मानन्द जी वकील के छोटे भाई स्वामी राम मेरे सह-पाठी रह चुके थे। उनकी प्रेरणा से मैंने एक बार श्री गीता और रामायण का आद्योपान्त पाठ किया। वे सगुणोपासक थे। किन्तु मैं अंग्रेजी में स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ की पुस्तकें तथा हिन्दी में लोकमान्य तिलक का गीता रहस्य पढ़ चुका था। अतः मेरी रुचि थी अद्वैतवाद में। अतः स्वामी राम ने ही मुझे श्री अच्युत मुनिजी से उपदेश लेने का आदेश दिया। मैंने उनके द्वारा पञ्चदशी का श्रवण और मनन किया। गुरुदेव की कृपा से अध्यात्म में मेरी रुचि बढ़ी। बस, छुट्टियों का सारा समय उन्हीं के सत्सङ्ग में व्यतीत होने लगा। वहाँ आते समय मार्ग में स्वामी श्री उग्रानन्द जी से भी भेंट होती थी। वे तितिक्षा और वैराग्य की मूर्त्ति थे तथा श्री गुरुदेव थे साक्षात् विवेक स्वरूप। असङ्गभावना और केवली कुम्भक का अभ्यास ही उनके अमोघ शस्त्र थे। जब मैंने पूज्य श्री उड़िया बाबा जी को देखा तो उन्हें साक्षात् उपरतिस्वरूप पाया। अनूपशहर में मेरे एक मित्र थे ला० प्यारेलाल। वे श्री उड़िया बाबा जी के अनन्य भक्त थे। उनकी नोटबुक में बाबा के कुछ उपदेश लिखे हुए थे। उन्हें पढ़कर मेरे मनमें पूज्य बाबा के दर्शनों की लालसा जाग्रत हुई और मैं उन्हीं के साथ

बैलगाड़ी द्वारा श्रीचरणों के दर्शनार्थ रामघाट गया। उस समय वहां का जो दिव्य और अलौकिक बातावरण देखा वह तो अनुभव का ही विषय था। बस, प्रथम दर्शन में ही मेरा श्रीचरणों से जो अटूट सम्बन्ध हुआ वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

विशेषतायें

श्रीमहाराजजी के गुण और सिद्धियों के विषय में शब्दों द्वारा क्या वर्णन किया जाय। उनके प्रेमपाश में बँधकर अनेकों भक्त कृतार्थ हो गये। सबको बस यही जान पड़ता था कि महाराज की सब से अधिक कृपा मुझे पर ही है। आप में सबसे बड़ी विशेषता तो मुझे यह जान पड़ी कि किसी भी सम्प्रदाय या मतिविशेष का व्यक्ति वहां अपने ही विचारों का समर्थन पाता था और सबके साथ समन्वय की भावना पैदा करके राग द्वेष से मुक्त हो जाता था। उनके त्याग, तप और उत्सर्ग की कला साधक और जिज्ञासुओं के लिए उत्साह के स्रोत थे। उनके संसर्ग में आने से ही आत्मनिष्ठा के लिए छटपटाहट पैदाहो जाती थी। विद्यार्थियों में ब्रह्मचर्य का और ग्रामीणों में सादा जीवन एवं मादक वस्तुओं के त्याग का प्रचार करने में भी आप को अच्छी सफलता मिली थी। इस प्रकार एक निवृत्तिनिष्ठ संत से जनता की जिस प्रकार के लाभ की आशा की जा सकती है वह सभी आपसे प्राप्त था।

कार्यक्रम एवं उत्सवादि

श्रीमहाराज जी के सत्संग का मुझे अनेक बार सुअवसर प्राप्त हुआ। कभी-कभी पूरे सप्ताह भर रहने का सुयोग हुआ और एक दो बार महीने भर भी रहा। ब्राह्ममुहूर्त्त में तत्त्वविचार, स्नान के

पश्चात् गीता की कथा, दोपहर पीछे रामायण सायंकाल में शङ्का-समाधान और रात्रि में कीर्तनादि का मनोरंजक कार्यक्रम रहता था। यह व्यवस्था सभी श्रेणीके साधकोंके लिए अपने-अपने मार्ग में सहायक होती हुई, उनकी आध्यात्मिक प्रगति का सर्वोपरि साधन थी। परन्तु आकर्षण का मुख्य विषय तो महाराज का आत्मीयता का व्यवहार था, जो माता-पिता और सगे सम्बन्धियों की याद को भी भुला देता था तथा वियोग के समय रुला देने में भी समर्थ था। महाराजका सत्सङ्ग मैंने रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर, अलीगढ़, अतरौली आदि अनेकों स्थानों में किया। उनमें से प्रत्येक का वर्णन पुस्तकका एक-एक अध्याय बन सकता है। इतना अवसर इस स्थान पर कहां है। अतः इसके लिए तो कभी अलग ही प्रयत्न करना होगा।

कभी-कभी विभिन्न स्थानोंपर उत्सवरूपमें भी सत्सङ्गों कीयोजना होती थी। ऐसे कुछ प्रसङ्गों पर भी मुझे उपस्थित होने का अवसर मिला था। खांड़े में ब्रह्मसत्र हुआ था। उसमें स्वामी श्रीकरपात्रीजी स्वामी निर्मलानन्दजी, श्रद्धेय पंडितस्बामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी और परमहंस श्रीरामदेबजी आदि कई बड़े-बड़े महात्मा और विद्वाम् पधारे थे। एक बार हाथरस के बाहर भी महाराज एक मास ठहरे थे। उस समय वहां सत्सङ्ग की गङ्गा बहा दी थी। श्रीहरिबाबाजी के बाँध पर तो होली के अवसर पर प्रतिवर्ष ही विराट महोत्सव होता था। उस अवसर पर दो-तीन बार मुझे भी जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। एक बार कर्णवास में आपकी सन्निधि में श्री जयदयाल गोयन्दका और हनुमान प्रसादजी पोद्दार का सत्सङ्ग हुआ था। उस अवसर पर उनके अनेकों सत्सङ्गी वहां एकत्रित हुए थे। एक बार रामघाट में साधनानुष्ठान हुआ। उसमें छः मास तक ब्रह्मचारी रमा-

कान्त और श्रीरामदास जी आदि कुछ प्रमुख साधक विशेष नियम-पूर्वक सम्मिलित हुए थे। गड़ियावली तहसील अतरौली मेरे पूर्वजों की जन्मभूमि है। वहाँ अपने पूज्य गुरुदेव श्रीअच्युतमुनिजी की स्मृति में मैंने पन्द्रह दिनों के सत्सङ्ग-समारोह की योजना की थी। उस समय आपने अपने कर-कमलों से अच्युतसाधनालय का उद्घाटन किया था। इसी प्रकार और भी अनेकों उत्सवों में मुझे आपके सत्संगसुख का रसास्वादन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था।

प्रवचन

अन्त में श्री महाराज के एक सारगर्भित प्रवचन का सूक्ष्मांश देकर मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि यहाँ तो समय और स्थान दोनों ही का अभाव है, तो वर्षों की लम्बी कहानी भला दो-चार पृष्ठों में कैसे हो सकती है?

ठीक स्मरण तो नहीं, किन्तु सम्भवतः रामघाट का ही प्रसङ्ग है, श्रीमहाराज ने इस आशय का प्रवचन किया था, जिसका भाव अब तक मेरे हृदय पर अंकित है—"सर्वज्ञता, ईश्वरता और सिद्धि आदि सब वृत्तिजनित ही है। ससार की सत्यता मानकर विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करने से ही ये प्राप्त होते हैं। आत्मज्ञान तो वृत्ति का प्रकाशक है। वह वृत्तिजनित अनुभव का विषय नहीं है। उसके विषय में 'है' या 'नहीं', ज्ञान या अज्ञान, बनना, या बिगड़ना, प्राप्ति या अप्राप्ति कुछ नहीं कहा जाता। वह विलक्षण अनुभूति स्वसंवेद्य है। उपासक अथवा योगी ब्रह्म आकृति से भी जाना जा सकता है, किन्तु तत्त्ववेत्ता का परिचायक कोई चिन्ह नहीं है। साक्षीवृत्ति भी वृत्ति-साक्षी को नहीं जान सकती। वहां तो द्वैत का भी पता नहीं है।

माया और मन भी खो जाते हैं। अहंता और ममता का बीज नष्ट हो जाता है। यहां पर वैराग्य और पराभक्ति में पूर्ण विशुद्ध आत्मानुभूति अर्थात् स्वात्मनिष्ठा नित्य प्राप्त है। कर्त्तव्य, समाधि और ईश्वर-दर्शन आदि सब वृत्ति के खिलौने हैं। ये शून्यरूप तथा मरुमरीचिका, रज्जु-सर्प और आकाश-कुसुम के समान मिथ्या हैं। शरीर, जीव और संसार आदि सभी प्रपञ्च आकाशरूप है।"

उपसंहार

निषेध अभ्यास के लिए यह कैसी स्पष्ट गर्जना है। इसी पर श्री महाराज का जोर था। विधिमुख से वे संसार को आत्मा की चमक तथा आकाश के तिमिरों के समान समझने का उपदेश करते थे। योग के तो विशेषज्ञ थे ही। एक रात्रि को अपनी बाहु मेरे हाथ से स्पर्श करके स्पष्ट दिखा दिया कि प्राणसंयम के द्वारा नितान्त निष्क्रियता और निश्चेष्टता प्राप्त हो सकती है। प्रेम के वे अवतार थे। 'हरि-आशिक का मग न्यारा है' यह उनका प्रिय भजन था। हमें उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर ही अपनी श्रद्धाञ्जलि उनके पवित्र चरणों में अर्पित करनी चाहिये।

ब्राह्मणपुरी, अलीगढ़
१८-५-५४

श्री साहिबसिंह जी वैद्य, अलीगढ़

सर्व प्रथम मुझे श्रीमहाराज जी के दर्शन सेठ पन्नालाल जी माहेश्वरी अलीगढ़ के बगीचे में हुए थे । वहाँ असंख्य जनसमाज एकत्रित होता था । उस समय आपका शरीर अत्यन्त गठित- सुडौल और साधारणतया कुछ कृश सा था । मुझे उनमें एक महान् योगी का भान हुआ । मुझमें योग के संस्कार पहले ही से थे । मैं एक सत्गुरुकी खोज में था । मेरे हृदय में श्रीमहाराज जी के प्रति श्रद्धा ओर आकर्षण का भाव जाग्रत हुआ । परन्तु उनकी लोक-प्रतिष्ठा और अलौकिक तेज देखकर मेरा चित संकुचित हो जाता था । मुझे भय था कि मुझ तुच्छ को ये कैसे अपनायेंगे ।

मैं जहां रहता था उसी स्थान पर श्रीद्वारकाप्रसाद जी गोस्वामी रहते थे । प्रसङ्गवश मैंने अपनी इच्छा उनके सम्मुख रखी । उन्होंने विश्वास दिलाया कि यदि तुम्हारी श्रद्धा पूर्ण है तो यह असम्भव है कि श्रीउड़ियाबाबा तुम्हें न अपनायें । बस, मैं मन-ही-मन बाबा को गुरुरूप से वरण कर लिया । आप तो कुछ दिनों में चले गये । मैं उनके कुछ काल पश्चात् स्वयं ही योगाभ्यास करने लगा । योगसम्बन्धी कुछ ग्रन्थ भी संग्रह कर लिये ।

जब मेरा प्राणायाम कुछ बढ़ाने लगा तो मैं श्रीमहाराज जी का पता पूछकर कर्णवास पहुंचा । उन दिनों श्रीमहाराज जी प्रात:काल ६ बजे कुटिया से बाहर निकलते थे । अवसर पाकर मैंने अपना योगसम्बन्धिनी उत्कण्ठा आपके समक्ष रखी । उत्तर मिला कि म

योग नहीं जानता। आज-कल का समय योगाभ्यास के प्रतिकूल है। सन्ध्योपासन तथा गायत्रीजप करना चाहिये। मैंने योगाभ्यासियों को प्राय: रोगी देखा है। इसमें ब्रह्मचर्य की बड़ी आवश्यकता है।

मैंने एक सप्ताह का अनशन कर दिया। उस समय कार्तिक मास था। गुरुवार को मेरा अनशन पूरा हुआ। उस दिन श्रीमहाराज जी अपने आसन पर आकर बिना वस्त्र ओढ़े बैठ गये। मैंने रोरी चावल का तिलक किया, नवीन वस्त्र ओढ़ाया, सामने मिष्ठान रखा और साष्टांग प्रणाम करके प्रसाद पा लिया। इसके पश्चात् जब भी मैं आपके पास गया मुझे समय मिलता और प्रश्न करने पर यथोचित उत्तर भी।

पूज्य श्रीमहाराजजी के विषय में अपने परिकर की प्राय: ऐसी धारणा सुनी जाती है कि वे भक्ति और ज्ञान का ही उपदेश देते थे, योग का अभ्यास उन्होंने नहीं किया। मेरा अनुभव है कि यह धारणा सर्वथा भ्रममूलक है, वे महान योगी थे। मैंने अभ्यास-काल में उनके उपदेशानुसार चलकर मिनटों और घण्टों में योगाङ्गों का फल पाया था। हठयोग के उन्हें अनेकों ग्रन्थ उपस्थित थे। उनके किये हुए योग-सूत्रों के अर्थों में भी बड़ी विचित्रता रहती थी। मुझे विश्वास है कि उनकी उपदेश की हुई योगप्रक्रिया के समान सरल और प्रत्यक्ष फल-दायिनी कौई दूसरी प्रक्रिया अब खोजने पर भी मिलनी कठिन है। मैंने उनकी देख-रेख में निरन्तर चार वर्ष अभ्यास किया है। योग का विषय कुछ गोपनीय माना गया है। अत: इतना ही पर्याप्त है कि श्रीमहाराज जी योगसम्बन्धी कठिन से कठिन ग्रन्थियों को बात की बात मैं सुलझा देते थे। यहाँ गङ्गा किनारे श्रीहीरादासजी एक प्रसिद्ध योगी थे। श्रीमहाराज जी उनसे मिल थे। एक बार कुण्ड लिनीजागृति

का प्रपङ्ग चलने पर आपने कहा था कि मैंने जो विधि बतायी है श्रीहरिदासजी का भी ऐसा ही मत था। इस योगक्रिया को जानने वालों की खोज में श्रीमहाराजजी बहुत घूमे थे। मुझे एक बार श्वास का रोग हो गया। वह बिना दवा के उनके कथनमात्र से दूर हो गया था। अभ्यासकाल के आरम्भ में मुझे अर्श का रोग था। श्रीमहाराज जी ने बताया कि गौ के एक छटांक घृत को गरम करके उसमें एक तोला हल्दी का चूर्ण डालकर दो-तीन दिन पी लेना। तीन दिन सेवन करने से ही मेरा यह रोग निर्मूल हो गया। इसके लिये कुछ दिनों अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना भी बताया था। यह मुद्रा घेरण्ड संहिता में लिखी है।

मेरे जीवन में श्री महाराजजी के मिलने से क्या परिवर्तन हुआ यह बात कैसे लिखूँ। नीचे के दो पद्यों के भाव से ही पाठक समझ लें—

'आपकी अनुकम्पा से नाथ ! बसा मेरा सारा संसार,
कहाँ से लाऊँ अभिनव भेट, सोचकर हो जाता लाचार।
भरा था प्राणों में भरपूर, पुत्रवत् किया आपका प्यार,
करो गुरुदेव इसे स्वीकार, स्वयं ही हो आया साकार॥

अथवा

जो मिला मुझे कुछ जीवन में तब मूर्तिमान गुरुदेव ! सीख।
मेरी झोली में कभी-कभी प्रभु रहो डालते प्रेम-भीख॥

श्रीमहाराज जी के संसर्ग से मुझे मनुष्यत्व मिला, और सांसारिक ज्ञान मिला। यदि मैं ऐसे महान् गुरुदेव को न पाता तो आज मनुष्य कहलाने के भी योग्य न होता। मैं क्या कहूँ ? अपने जीवनफल से मैं संतुष्ट हूँ। श्रीमहाराज जी से मुझे दुष्प्राप्य वस्तु मिली है। अधिक कहना तो आत्मश्लाघा होगी।

मैंने आरम्भ में तो श्रीमहाराज जी को गुरुरूप में पाया था; कुछ समय पश्चात् उनमें मेरी निष्ठा पिता रूप में हो गयी और अन्तिम

दिनों में मैं उन्हें प्रत्यक्ष भगवान्*पहचान चुका था। श्री महाराज जी

*गुरुदेव को भगवान् समझना केवल भावुकता से ही सम्बन्धित नहीं है, यह उत्कृष्ट मन की बोधगम्य अनुभूति है। साधक को जब शुद्ध बोध होता है तब उसे सिद्धों की तथा भगवान् की मानसिक दिव्य झाँकियाँ होती हैं। शुद्ध शिष्य का गुरुदेव को तत्त्वरूप में पहचानना या पाना शब्दों से बताने की बात नहीं है। भगवद्रूपता का तात्पर्य यह भी नहीं है कि उनमें अनेकों सिद्धियां थीं। ये चमत्कार तो योगियों में प्रायः होते ही हैं। श्रीभगवान् तो सम्पूर्ण सिद्धियों के अधिष्ठान हैं। मुझे जो श्री महाराज जी में साक्षात् भगवद्रूपता बोध हुआ था उसमें निम्नलिखित प्रसंग भी कारण था—

एक बार मैंने श्री महाराजजी से आत्मबोध के सत्यस्वरूप के विषय में जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा, "शरीर से पृथक होकर देखो।" उसी समय मुझे शरीर पृथक् और निजत्व पृथक् दीखने लगा। उस स्थिति में शरीर पृथक् प्रतीत हो रहा था और एक आकाश रूप या केवल ज्ञानमात्र अपनत्व पृथक्। उससे भिन्न और कोई ज्ञान नहीं था, केवल शरीर की भिन्नता का ही बोध था। वह अवस्था कितने समय तक रही—इसका निश्चय नहीं। वहां श्रीमहाराज के समक्ष ही हट गयी।

साधनकाल की चमत्कृतियों का अनुभव कराना भी श्रीमहाराज के प्रति भगवद्भाव का बोध हुआ। कुन्डलिनी-जाग्रति का वर्णन करते हुए प्रायः ग्रन्थ भी अब तक यही कहते हैं कि शक्ति का स्रोत सुषुम्ना में या उसके अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ी के भीतर है जो रीढ़ की हड्डी के अन्तर्गत है। किन्तु श्रीमहाराज जी ने कहा था कि सुषुम्ना नाड़ी उससे मिली हुई, किन्तु अलग है। उसमें उन्होंने चक्रों का बोध भी कराया था। यह विषय साधारण साधक के लिये उपयोगी नहीं है, अतः यहाँ लिखाना अनावश्यक है। यदि श्रीगुरुकृपा हुई तो इस विषय में एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखने का विचार है।

के विषय में मैं शब्दों द्वारा कुछ कहने में असमर्थ हूँ, मेरा हृदय तथा प्राण उनके सद्गुणों से उत्फुल्लित और पुलकित हैं तथा मन उनका संयोग होने से अपने को कृतकृत्य मानता है। यह मेरी भावुकता न समझें, मैं यह सब सत्य के नाते कह रहा हूँ। मुझे शङ्का है कि ज्ञान-धारावाले व्यक्ति कहीं अपनी अपूर्णता में ही न डूब जायें। इससे मेरा यह आशय न समझें कि मैं ज्ञान को ही जीवन का सर्वोपरि फल नहीं समझता। परन्तु यह कहते हुए भी मुझे संकोच नहीं है कि जो साक्षात् ज्ञानमूर्ति को नहीं पा सके वे ज्ञान से भी कदाचित् वञ्चित रह जायँ। शुद्ध गुरुबुद्धि हुए बिना वास्तविक ज्ञान प्राप्ति में मुझे सन्देह ही है। मैंने भी ज्ञान के लिये ही प्रयत्न किया था। श्रीगुरुदेव के प्रति शिष्य की भावुकता साधक के लिये साध्य को आत्मसात् कराने में सहायक होती है।

श्री महाराज जी मेरे जन्मस्थान ल्हौसरा विसावन भी गये थे। यह गांव अलीगढ़ से चार मील दूर खैर वाली सड़क पर है। यहाँ आप दो दिन ठहरे थे। उनका प्रसाद जो वे मुझे दे गये हैं, प्रिय पुत्री नारायणी देवी है, जिसने श्रीमहाराज जी के सामने हठपूर्वक, उनके बार-बार समझाने पर भी, आजन्म अविवाहिता रहने का व्रत लिया था। आज उसकी आयु तीस वर्ष के लगभग है। श्री महाराज जी के चरणों की कृपा से वह बड़े सुन्दर प्रकार से पूर्ववत् अपने अभ्यास में तत्पर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसकी तपस्चर्या सफल है। उसका साधन ही नहीं सम्पूर्ण जीवन ही पूज्य श्रीमहाराज जी के ऊपर निर्भर है।

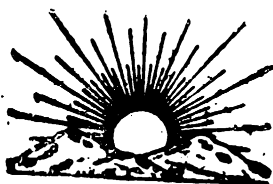
मुझे स्वप्नकाल में ही नहीं, प्रत्युत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अब भी श्रीमहाराज जी से अभिलषित साधन एवं उपाय प्राप्त होते

रहते हैं। मैं उन्हें एक मास में चार-छः बार तक पाता रहा हूँ। अभी अन्तमें मुझे निर्विकल्प समाधि के स्वरूप में कुछ शंका थी, उसका समुचित उत्तर मिला है। मैं जब आर्त्तत्राण[1] महाकाव्य के तृतीय सर्ग में श्रीमहाराज जी के बालरूप का वर्णन करते हुए पद्यरचना कर रहा था उसी रात को मुझे ज्योतिर्मय रूप में उस स्वरूप का दर्शन हुआ। तात्पर्य यह है कि स्वप्न में मुझे कई बार श्रीमहाराजजी का दर्शन होता रहता है और लौकिक कठिनाई उपस्थित होने पर उनका स्मरण करने से भी सहायता मिलती है।

श्रीमहाराज जी के विषय में मेरी जो धारणा है वह इस पद्य में वर्णित है—

'ब्रह्मचारी शास्त्रज्ञ बलिष्ठ पदाति वेदान्ती अभ्रान्त,
तपस्वी तान्त्रिक योगी यती ज्योतिषी पण्डित सिद्ध महान्त।
देखता हूँ पद पद में पूर्ण किन्तु कहते संकोच नितांत,
आपमें धर्म महान्[2] निविष्ट कहूँ क्या मेरे सन्त प्रशांत॥

जय जय गुरुदेव!



---

१. पूज्य श्रीमहाराज जी का पूर्वाश्रम का नाम 'आर्त्तत्राण मिश्र' था।

२. श्रीमहाराज जी में 'महान् धर्म' निविष्ट था। महान् धर्म ईश्वर में ही होता है।

बहिन श्रीनारायणीदेवी अलीगढ़

प्रथम दर्शन

बहुत दिनों की बात है बाबा अलीगढ़ के समीप मेरे गाँव ल्हौसरा में पधारे थे। वहीं पर मैंने पिता जी (श्रीसाहिबसिंह जी वैद्य) के साथ आपका दर्शन किया था। मैं उस समय बालक ही थी। पांच-छ: वर्ष की आयु होगी। पिताजी ने महाराज जी का पूजन किया तो मैंने भी माताजी के साथ उनकी पूजा की। बाबा तीन दिन गाँव में ठहरे। उसी समय मेरी दादी का देहान्त हो गया। वे मुझे बहुत प्यार करती थी। मैं रो-रो कर बारम्बार कहती थी कि उन महात्मा जी को बुला लाओ, वे दादी को जिला देंगे। उस समय मेरी बुद्धि भोली थी। मैं समझती थी कि बाबा सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए हैं और इसमें अन्त तक रहेंगे। ये सब कुछ कर सकते हैं।

कौमार व्रत

इस बार बाबा चले गये और फिर कई वर्षों बाद अलीगढ़ में उनके दर्शन हुए। इस बीच मैं पिताजी से पूछकर राम नाम का जप और रामायण का पाठ करने लगी थी। भजन में मेरा मन लगता था। मेरी आयु प्राय: तेरह साल की हो गयी थी। विवाह करने की मेरी बिल्कुल रुचि नहीं थी। माता-पिता विवाह के लिए आग्रह करते थे। एक दिन पिता जो ने जाकर महाराज जी से कहा कि नारायणी विवाह करने को मना करती है। बाबा ने उत्तर दिया,

'हम घर पर ही चलकर उसमे पूछेंगे।" बाबा आये और बोले, "बेटा ! तू विवाह क्यों नहीं करती है ?"

मैं—आपने विवाह क्यों नहीं किया ?

बाबा—बड़ी पागल है। महात्मा कहीं विवाह करते हैं ? महात्माओं से ऐसा नहीं कहते। तू विवाह नहीं करेगी तो खायेगी कहाँ से ?

मैं—भिक्षा माँग लूँगी।

बाबा ने मुझसे विवाह के लिये बहुत कहा। परन्तु मैं अपनी हठ पर अटल रही। अन्त में मेरे माता पिता भी मान गये। परन्तु इसके दो वर्ष पश्चात् उन्होंने फिर बाबा से पूछा, "नारायणी के विवाह के लिये क्या करें ?" बाबा ने कहा, "यदि तुम उसका विवाह कर दोगे तो वह गार्हस्थ्य का भार सहन नहीं कर सकेगी। अब तक तुम्हें उसे अपने घर पर ही रखना पड़ेगा।"

मेरा साधन

श्रीमहाराज जी ने मुझ से पूछा, "तू क्या भजन करती है ?" मैंने कहा, "भगवान का नाम जप और श्रीरामायणजी का पाठ करती हूँ।" बोले, "जो करती है वही करती रह।" फिर भगवान् श्रीराम का एक चित्रपट-स्वरूप देकर कहा, "इनका ध्यान किया कर और बिनय पत्रिका का यह पद याद कर ले—

'कबहिं दिखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल, सकल मंगलकरन ॥ १ ॥
सरदभव सुन्दर तरुनतर, अरुन बारिज-बरन।
लच्छिलालित ललित करतल, छबि अनूपम धरन ॥ २ ॥
गंगजनक, अनग-अरि-प्रिय, कपट-बटु बलि छरन।

बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥ ३ ॥
सिद्ध-सुर-मुनिवृन्द-वन्दित, सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिन्हिं, जन होत तारन-तरन ॥ ४ ॥
कृपासिन्धु सुजान रघुवर, प्रणत-आरति-हरन ।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥'

इसके पश्चात् आपने पूछा, "तू किस भाव से भगवान का पूजन करेगी ?" मैं चुप रह गयी। तब आप बोले—"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव" यही तेरा भाव होना चाहिये।

बाबा की कुछ बातें

बाबा दूसरों के आन्तरिक भाव को जान लेते थे। जब मैं पिता जी के साथ उनके दर्शनों को जाती तो जब तक मेरी लौटने की इच्छा न होती वे पिताजी को जाने की आज्ञा नहीं देते थे। जब देख लेते कि इसे रहने की विशेष उत्कण्ठा नहीं है तभी जाने की आज्ञा देते थे। एक बार की बात है कि पिताजी लौटनेको तैयार हो गये, किन्तु मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं थी। वे बाबा से टिकट (विदाई का प्रसाद) लेने के लिये पहुँच गये, परन्तु मैं चुपचाप बैठी रही। तब बाबा ने टिकट दिया ही नहीं, कह दिया, "फिर जाना ।"

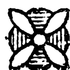
मैंने बाबा में एक विशेष गुण यह देखा कि वे अपने आदमियों को अपना करके मानते थे। ब्राह्मण-क्षत्रिय, भगी-चमार, धनी-निर्धन सभी से आत्मीय की तरह वर्ताव करते थे। उनका जितना प्रेम ब्राह्मण-क्षत्रियों पर था उतना ही अपने भङ्गी-चमार भक्तों पर भी था।

एक बार बांध पर बाबा ने मुझे आज्ञा दी थी कि तू अपने वर्तन

स्वयं ही साफ कर लिया कर और अपने कपड़े भी दूसरों से न धुलवा कर स्वयं ही धो लिया कर। वृन्दावन में उन्होंने मुझे जीवनपर्यन्त चार काम करते रहने का आदेश दिया—१. निरन्तर जप, २. ध्यान, ३. आसक्ति का त्याग और ४. स्वाध्याय। मैंने कहा, "और भीकोई बताइये।" तब आप बोले, "इससे अधिक मैं नहीं जानता।

एक बार माताजी अकारण ही मुझ से चिढ़ गयीं और बुरा-भला कहने लगीं।तब बाबा ने स्वप्न में मुझ से कहा, "कोई तेरी निन्दा करके तेरे साधन को बिगाड़ नहीं सकता।" इसी प्रकार दूसरे समय स्वप्न में ही आपने कहा था, "मैं सदैव तेरे पास हूँ।" एक बार मैंने बाबा से पूछा था कि मुझे भगवान् कब मिलेंगे ? उन्होंने कहा,"तू जब बुलायेगी तभी मिल जायँगे" उसके कई वर्ष पश्चात् एक दिन जब मैं आसन पर बैठकर ध्यान कर रही थी तब ध्यानावस्था में मुझ भगवान् के दर्शन हुए।

बाबा ने लीला संवरण के पश्चात् भी मुझे कई बार स्वप्न में दर्शन दिये हैं। मैं जब कभी दु:खी होती हूँ तब वे अवश्य ही धीरज बँधाते हैं और मेरी रक्षा करते हैं।" मेरे बड़े भाई की आयु अधिक हो गयी थी, तथापि उनका विवाह नहीं हुआ। एक रात्रि को दु:खित चित्त से इसी का चिन्तन करते हुए मैं सो गयी। तब बाबा ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "तू दु:खी मत हो,उसका विवाह हो जायगा।"उसके तीसरे ही दिन लड़की वाले आये और एक महीना के भीतर उनका विवाह हो गया। यह सब कैसे हुआ—यह तो वे ही जानें। मैं तो इसे उनकी कृपा ही मानती हूँ।



श्री ऋषिजी, अलीगढ़

अब से प्रायः तीस वर्ष पूर्व अपने गांव आँबा मदापुर में मैंने पहली बार श्रीमहाराज जी के दर्शन किये। मैं उनमें भगवद्‌बुद्धि रखता हूँ। मुझे स्वप्न में उनकी अनेकों अद्‌भुत लीलाओं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तथा जाग्रत में भी उनकी अनेकों चमत्कार पूर्ण लीलाएँ देखी हैं। उनमें से दो-चार का यहाँ वर्णन करता हूँ—

(१)

एक बार श्रीवृन्दावन में गुरुपूर्णिमा होने वाली थी। उस समय मेरे पिताजी का स्वास्थ्य खराब था। उनकी सेवा में घर पर मेरे सिवा और कोई नहीं था। गुरुपूर्णिमा पर श्री महाराज जी के दर्शनकरनेकी मेरी इच्छा तो बहुत थी, परन्तु पिता जी की बीमारी के कारण मैं जा न सका। इसलिए उस दिन अपने घर पर ही उनके पूजन का आयोजन किया। एक छोटी चौकी पर आसन बिछाकर पूजन की सामग्री लेने के लिए मैं घर के भीतर गया। वहाँ से लौटकर आया तो देखा कि सरकार आसन पर विराजमान हैं। उनके दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं साष्टांग प्रणाम करके चौकी के समीप ही बैठ गया। किन्तु दो-तीन मिनट के बाद ही श्रीमहाराज जी अन्तर्धान हो गये। मैं उन्हें ढूँढ़ने लगा। सारे गाँव में और कदमखण्डी में, जहाँ वे ठहरा करते थे, ढूँढ़ा, परन्तु कहीं भी पता न लगा। अन्त में यह उनकी महिमा समझकर सन्तोष कर लिया।

(२)

इसी प्रकार एक दूसरी गुरुपूर्णिमा आयी। वह भी वृन्दावन में

ही मानायी जाने वाली थी। मैं उस समय अलीगढ़ में फुल्लौर साहब के मदिन्र में ठाकुरजी की सेवा-पूजा करने लगा था। चतुर्दशी के दिन मैंने सोचा कि ठाकुर जी की पूजा के लिए कोई ब्राह्मण पुजारी मिल जाय तो मैं गुरुपूजन के लिए कल श्री वृन्दावन जाऊँगा। परन्तु कोई तैयार न हुआ। आखिर एक मित्र से कहा और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया। परन्तु रात्रि को साढ़े नौ बजे उन्होंने सूचित किया कि किसी आकस्मिक घटना के कारण कल मेरी ड्यूटी लग गयी है, इसलिए मैं नहीं आ सकूँगा।

अब मैं निराश और खिन्न हो गया कि इस पुण्य पर्व पर मुझे श्री महाराजजी के दर्शन नहीं हो सकेंगे। मैंने निराश होकर रात्रि के दस बजे अपने परिचित फौज के कमाण्डिङ्ग आफीसर श्रीचक्रवर्तीजी को मथुरा फोन कराया कि फौज में से किसी ब्राह्मण पुजारी को भेज दें। उन्होंने उत्तर एिया कि यहाँ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है कल मैं अपनी जीपकार भेज दूँगा। वह ठाकुर जी की पूजा के उपरान्त तुम्हें वृन्दावन पहुंचा देगी और वहां पूजन करके प्रसाद पा लेने के बाद फिर अलीगढ़ पहुँचा आवेगी। मैंने इसे श्रीमहाराज जी की कृपा ही माना, क्योंकि कहां मैं एक छोटा सा व्यक्ति औप कहां वह इतना बड़ा अफसर।

दूसरे दिन एक मेजर कार लेकर आया और मुझे बिठाकर ले गया। वे दयालु अफसर भी मथुरा से श्रीमहाराज जी के लिए फल-फूल लेकर चले। ठीक बारह बजे हम लोग पहुंचे। अब तक अलीगढ़ के भक्तों ने कई बार पूजन का प्रयत्न किया या, परन्तु श्रीमहाराज जी ने उन्हें रोक दिया था। हमारे पहुँचते ही तुरन्त अलीगढ़ की पार्टी

को पूजन के लिये आज्ञा हुई। हम सबने मिलकर सानन्द पूजन किया और प्रसाद लिया। श्रीमहाराज जी ने फौजी अफसर पर भी कृपा-दृष्टि की। चार बजे तक हम वहीं रहे। उस आनन्द को छोड़कर मेरी इच्छा आने की नहीं थी, परन्तु श्रीमहाराज जी ने हमारे अफसर को बुलाकर कहा, "ऋषि को जबरदस्ती जीप में बिठाकर अलीगढ़ पहुँचाओ।" और मुझ से बोले, "खबरदार, ठाकुरजी की सेवा-पूजा कभी न छोड़ना" ऐसी थी उनकी विचित्र लीला।

(३)

एक बार श्रीमहाराज जी कर्णवास में विराज रहे थे। मैं श्री ठाकुरजी की सेवा-पूजा का समुचित प्रबन्ध कर अलीगढ़ के सुप्रसिद्ध वकील बाबू चुन्नीलाल के साथ दर्शनों के लिए गया। वकील साहब का नियम था कि वे जब दर्शनों को जाते थे कम से कम दो रुपये के पेड़े भेट के लिये अवश्य ले जाते थे। आश्विन का महीना और एकादशी तिथि थी। हाथरस और खुर्जा के अनेकों सेठ दर्शनों के लिये उपस्थित थे। समष्टि पूजन हो रहा था। लोग अपने साथ बढ़िया मिष्टान्न लाये थे। उसी अवसर पर फलों का एक पार्सल भी खोला गया, जो सेठ बाबूलाल जटिया ने मँगवाया था। ऐसे अवसर पर मैं ही भला क्यों किसी से पीछे रहता। अपने अगोछे में दो पैसे की सैंदें बाँधे हुए श्रीमहाराज जी के दर्शनार्थ डटा हुआ था। और आश्चर्य यह कि उन कृपासिन्धु की कृपादृष्टि ने विजय भी मेरी ही करायी। उस भीड़ में श्रीमहाराज जी की दृष्टि एकाएक मुझ गरीब पर पड़ी और वे तुरन्त बोल उठे, "ऋषि! तू मेरे लिये क्या लाया है?" मैं वहाँ बड़े-बड़े फलों के टोकरे और अँगूर तथा पेड़ों से भरे थाल देखकर सकपका गया और सैंदें खोलने की मेरी हिम्मत न हुई। उन्होंने स्वयं मेरा अँगोछा ले लिया और खोलीं। उनमें से दो-दो सैंदें प्रत्येक महात्मा को

बाँटी और शेष दो अपनी चादर के खूँट में बांधते हुए बोले, ये दो मेरे लिये हैं ।

खुरजा वाले सेठ बाबूलाल जी ने कहा, "महाराज जी ! कृपा करके इन फलों को स्वीकार कीजिए।" श्रीमहाराज जी मुसकराते हुए बोले, "भैया ! हमें बढ़िया फल कहाँ मिलते हैं ?" तब सेठजी की प्रार्थना पर आपने थाल से कुछ अंगूर उठाये और महात्माओं को बाँट दिये ।

ऐसी-ऐसी उनकी अनेकों लीलाएँ हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय ? स्वप्न के प्रसङ्ग तो अकथनीय हैं। कई बार मुझे ऐसे स्वप्न हुए जिनसे मालूम हो जाता था कि इस समय श्रीमहाराज जी कहाँ हैं ? निःसन्देह वे स्वप्न उनकी कृपा से ही होते थे। उनकी अब भी अपार कृपा है ।



श्रीमिश्रीलालजी मुंसरिम, अलीगढ़

सवसे पहले मैंने अलीगढ़ में ही बाबा का दर्शन किया था। प्रथम दर्शन में ही मुझे अनुभव हुआ कि बाबा में सन्तों के अनेक गुण विद्यमान हैं। अत: विश्वास हुआ कि इनका आश्रय ग्रहण करने से अवश्य ही सब कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

एक बार मैंने बाबा से पूछा कि मैं विभिन्न मन्दिरों में भिन्न-भिन्न देवताओं के दर्शन करने के लिये जाता हूँ। अत: स्वभाविक ही मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं किस-किसकी पूजा करूँ? भगवान् श्री कृष्ण की, श्रीराम की अथवा महादेवजी की? इस पर बाबा ने पूछा, "तुम यह बताओं, तुम्हारे इष्टदेव कौन हैं?" मैंने कहां, "मेरे इष्ट तो श्रीराधाकृष्ण हैं।" तब बोले, "तुम श्रीराधाकृष्ण कीही पूजा किया करो तथा अन्य सभी देवताओं के रूप में उन्हीं को समझो। अर्थात् वे ही श्रीराम हैं और वे ही शिवजी भी हैं।" इस उत्तर से मेरा समाधान हो गया।

बाबा की एक विशेष बात मुझे याद है। जब उनके पास कोई बीमार या दु:खी मनुष्य पहुँचता तो वे कहते, "मुझे तो ऐसा मनुष्य ही अच्छा लगता है, क्योंकि अब इसके दिन फिरे हैं अब यह भजन करेगा।" वे अपने आचरण द्वारा हम सबको यह उपदेश देते थे कि जैसे मैं समस्त कर्मों को करते हुए भा सदैव अपने आत्मस्वरूप में स्थित रहता हूँ उसी प्रकार तुम लोगों को भी समस्त कार्य करते हुए बाहर-भीतर सबको आत्मस्वरूप देखने से कभी किसी के प्रति घृणा नहीं होगी।

भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा

परम पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित श्री मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य श्री स्वामी पूर्णानन्दजी तीर्थ उपनाम श्री उड़ियाबाबा जी महाराज बड़े ही उच्चकोटि के संत थे। वे विश्व की महान् विभूति और भक्ति, ज्ञान, योग और वैराग्य की साक्षात् दिव्य मूर्ति थे। ऐसा महापुरुष इस कलिकाल में होना बड़ा ही कठिन है। मुझे श्रीभगवान् की कृपा से बीस वर्ष तक निरन्तर आपके सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके साथ मैंने सैकड़ों मील पैदल यात्रा की थी और अनेकों बार खूब खुलकर बात करने का भी अवसर मिला था। कल्याण, स्वदेश, सत्सङ्ग आदि धार्मिक पत्रों में आपके सदुपदेश भी मैं लिखकर भेजता था। मुझे आपको अपने स्थान पिलखुवा ले जाने का और आपकी चरणरज से अपना घर पवित्र करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ था। बाबा जब मुझे अपना पुत्र समझकर मेरे सिर पर हाथ फेरते और वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से देख कर प्यार करते थे तो मेरा हृदय गद्गद् हो जाता था। उस समय का अद्भुत आनन्द स्मरण करके आज भी मुझे रोमाञ्च हो जाता है। भारत में कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग और सदुपदेशादि के द्वारा सनातन धर्म का जितना प्रचार बाबा के द्वारा हुआ वैसा किसी और के द्वारा सुनने में नहीं आया। आपके भीतर एक अद्भुत शक्ति थी। आपके पास यदि कोई नास्तिक भी आ जाता तो वह भी आपके दर्शन और उपदेशों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। हमने अनेकों नास्तिक और आर्यसमाजियों को भी देखा कि आपके श्री-

चरणों का दर्शन करने के पश्चात् वे आस्तिक और मूर्त्तिपूजक हो गये यही नहीं, अनेकों व्यभिचारी सदाचारी हो गये, धर्मद्रोही धर्मरक्षक बन गये और शराबी-कबाबी इन दुर्व्यसनी से छूटकर श्रीकृष्णप्रेम का प्याला पीकर मतवाले हो गये। इस प्रकार आपने हजारों जीवों को घोर नरकसे बचाकर उनका उद्धार कर दिया। ऐसीअनेकों घटनाएँ हमने अपनी आँखों से देखी थी। अब हम बाबा के जीवन की कुछ आंखों देखी सत्य घटनाएँ नीचे देते हैं।

मन्त्रजप द्वारा नरक से उद्धार

एक बार पूज्य पाद श्रीमहाराजजी पतितपावनी श्री गङ्गाजी के तट पर श्रीगढ़मुक्तेश्वर में पधारे। मुझे जब मालूम हुआ तो मैं आपके दर्शनार्थ पिलखुवा से वहां गया। मैंने आप से पिलखुवा पधारने और अपने परम पवित्र श्रीचरणों से मेरा घर पवित्र करने के लिए प्रार्थना की। तब आपने आज्ञा की कि अच्छा तुम पिलखुवा जाओ, मैं पैदल चलकर दो-चार दिनों में वहां पहुँचूँगा। मैं घर लौट आया। आप पैदल चलकर पिलखुवा के पास सिकेडा नामक गांव में आकर ठहरे। जब मुझे यह समाचार मिला तो मैं सिकेड़ा जाकर आपको पिलखुवा ले आया।

उन दिनों श्रीगान्धीजी द्वारा प्रचारित शास्त्रविरुद्ध अछूतोद्धार की बहुत धूम थी। अनेकों उच्च वर्ण के लोग चमार-भंगियों के हाथ से खाकर धर्मभ्रष्ट हो रहे थे और लाखों वर्षों से चली आयी मन्दिरों की मर्यादाको उनमें अस्पृश्य लोगों को घुसाकर नष्ट किया जा रहा था। बाबा के पिलखुवा पधारने पर सभी प्रकार के दर्शनार्थी आते थे। उनके बहुत से कांग्रेसी भी होते थे। एक दिन एक ग्रामीण

जाट भी आपके दर्शनों के लिए आया। वह इससे पहले अछूतों के हाथ का खा-पी चुका था। वह जब चरणस्पर्श करने के लिए आगे बढ़ा तो बाबा ने उसे रोकते हुए कहा, "नहीं, नहीं वही बैठ, हमें मत छू।"

वह वहीं बैठ गया। परन्तु बाबा का ऐसा व्यवहार देखकर सब चकित रह गये। कोई न समझ सका कि बात क्या है। परन्तु आप तो अन्तर्यामी थे, घट-घट की जानते थे। थोड़ी देर पश्चात् पूछा—अरे ! क्यों तू कांग्रेसी हैं ?,'

जाट—हां, महाराज !

बाबा—क्या तू चमार-भंगियों के हाथ का खा-पी चुका है !

जाट—हां, महाराज !

बाबा—तो तू हमें मत छू, तू तो भ्रष्ट हो गया।

जाट—महाराज जी ! अछूतोद्धार कैसा है ?

बाबा—बावले ! यह अछूतोंद्धार नहीं, घोर नरक का मार्ग है। वह सब घोर पाप है, शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है।

जाट—महाराज जी ! मैंने इन कांग्रेसियों के चक्कर में फँसकर चमार-भंगियों के हाथ का खा-पी लिया है।

बाबा—तुमने बहुत बुरा किया, अब तुम नरक में जाओगे।

जाट—अब बाबा ! नरक से कैसे बचें ?

बाबा—प्रायश्चित करो और प्रतिज्ञा करो कि अब किसी के भी बहकावे में आकर ऐसा शास्त्रविरुद्ध काम नहीं करोगे।

जाट—महाराज जी ! अब मैं ऐसा काम नहीं करूँगा ।

बाबा—हम तुम्हें एक मन्त्र बतलायेंगे, तुम उसका जाप करना । याद रखो परलोक में ये गान्धी आदि कोई तुम्हारा साथ नहीं देंगे, केवल तुम्हारा धर्म ही तुम्हारे साथ रहेगा ।

फिर पूज्य बाबा ने उसे एकान्त में ले जाकर मन्त्र बता दिया । जाट अपने घर गया और बाबा की आज्ञानुसार मन्त्र जपने लगा । तीन चार दिन जप करने के पश्चात् एक दिन वह आधी रात के समय भगा हुआ बाबा के पास आया । बाबा उसके हल्ला-गुल्ला से जग गये । तब उसने कहा, " महाराज जी ! मैंने आपकी बतलायी विधि के अनुसार जप किया । अभी और शेष भी है, सो मैं पूरा करूँगा । परन्तु आज मुझे बड़ा भयानक दृश्य दिखायी दिया है । मैंने प्रत्यक्ष देखा कि बड़े-बड़े भयानक यमदूत खड़े हैं और वहां मैं तथा आप भी हैं । पर वे यमदूत मुझे न मारकर बड़े जोर से आपको मार रहे हैं और कहते हैं कि तुमने हमारे एक आदमी को, जिसे हम नरक ले जाते, मन्त्र बताकर बहका लिया है ।"

तब बाबा ने मुसकाकर कहा, "जा, तू घोर नरक से बच गया । परन्तु अभी इस मन्त्र को मत छोड़ना मत । इसमें बड़ी अद्भुत शक्ति है । और भूलकर भी कभी इन पापियों के चक्कर में मत फँसना; नहीं तो फिर नरक का मार्ग तैयार हैं ।

जाट बोला, "बाबा ! आपने मुझे नरक से बचा लिया, मेरे साथ बड़ा उपकार किया, मैं जन्म भर आपको नहीं भूलूँगा ।"

यह मेरी आंखों देखी घटना है । बाबा ने इसी प्रकार न जाने कितने जीवों का नरक से त्राण किया है ।

मानापमान में समान

बाबा सर्वदा पैदल ही यात्रा करते थे। वयोवृद्ध होते हुए भी उनके लिए दिन में २०–२५ मील चल लेना सामान्य-सी बात थी। एक बार जब वे ऋषिकेश से पैदल वृन्दावन के लिए चले सब मैंने भी आपके साथ चलने का निश्चय किया। रास्ते में आप की अनेकों अद्‌भुत लीलायें देखी और कथा, कीर्तन एवं सत्सङ्ग का दिव्य सुख लूटा। अद्‌भुत त्यागमय जीवन था वह। पत्तों पर खाना और वृक्षों के तले सोना !

एक दिन की बात है। हम सब बारह मील चलकर आये और एक गाँव के समीप वृक्षों की छाया में ठहर गये। सबने बैठकर थकान उतारी और फिर नहर में स्नान कर अपनी-अपनी पाठ-पूजादि में लग गये। पूज्य बाबा ने नित्य की भांति श्रीमद्भगवद्गीता की कथा कही और फिर सब भगवन्नामकीर्तन में विभोर हो गये। बाबा ने कहा "आज हम समीप के गाँव में मधूकरी के लिए जायेंगे, तुम सब यहीं बैठकर भजन करो।" मुझे यह सुनकर बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने सोचा, 'भारत के जिन संतशिरोमणि के लिए अनेकों सेठ-साहूकार तरह-तरह के व्यञ्जनोंसे सुसज्जित थाल लेकर खड़े रहते हैं, वेगांवमें घर-घर जाकर कैसे भिक्षा मांगेंगे ? यह तो आज देखना चाहिये।' बस, बाबा हाथ में एक अँगोछा लेकर चले तो मैं और दो चार अन्य व्यक्ति पीछे हो लिए। बाबा ने सबको फटकारा और कहा, "हमारे साथ कोई नहीं चलेगा, हम अकेले ही जायेंगे। तुम सब यहीं रहो।" इस पर और सब तो लौट आये, किन्तु मैं एक बार कुछ पीछे फिर कर पुनः धीरे-धीरे उधर ही चलने लगा। जब

महाराज जी घूमकर देखते तो मैं वृक्षों की ओट में हो जाता। परन्तु गांव में घुसते समय आपने मुझे देख लिया। तब बोले, "बेटा रामशरण ! तू आ गया ? अच्छा तू मेरे साथ रह।" अब मैं निश्चिन्त हो गया। इसके पश्चात् बाबा ने एक गांव वाले से पूछा, 'यह सामने वाला घर किस का है ?' उस ने कहा, "ब्राह्मणों का।" बाबा ने वहां जा कर 'नारायण हरि' आवाज लगायी। इतने में भीतर से घर का मालिक एक बूढ़ा ब्राह्मण निकला और मूढ़े पर आकर बैठ गया। उसने बाबा से पूछा, "अरे ! क्या है ? क्यों खड़ा है ?"

बाबा—भिक्षा लेंगे, रोटी लेनी है।

ब्राह्मण—कहां से आ रहा है ?

बाबा—हरिद्वार से आ रहा हूं।

ब्राह्मण—जायेगा कहाँ ?

बाबा—श्री वृन्दावन जाना है।

ब्राह्मण—कुछ पढ़ा-लिखा भी है या नहीं ?

बाबा—न, कुछ नहीं।

ब्राह्मण—कुछ भी नही पढ़ा तो तू साधु क्यों हो गया। क्या तुझसे कमा कर नहीं खाया जाता ? और तेरे साथ यह गृहस्थ का लड़का कैसे है ?

बाबा—यह मेरे साथ है।

ब्राह्मण ने मेरी ओर मुँह करके पूछा, "क्यों रे ! तेरा क्या नाम है और तू कहां रहता है ?

बाबा—इसका नाम रामशरण है, यह पिलखुवा रहता है

ब्राह्मण—अरे ! क्या इसे बहका लाया है ? इसे साधु बनायेगा। आप तो माँगता डोलता है, क्या इसे भी माँगना सिखायेगा।

बाबा—नहीं माँगता तो मैं ही हूँ, यह नहीं माँगता। मैं तो साधु हूँ।

ब्राह्मण—अरे ! जो साधु होते हैं वे क्या मांगते हैं ? उन्हें क्या तेरी तरह घर-घर मारे-मारे फिरना होता है ? देख, कर्णवास में एक बड़े भारी सिद्ध महात्मा उड़िया बाबा जी है। उनके पास हजारों लोग स्वय ही थाल पर थाल लेकर पहुँच जाते हैं। तेरी तरह उन्हें भटकना थोड़ा ही पड़ता है। तू साधु बनाकर इस लड़के को भी बिगाड़ेगा।

बाबा—तुमने उड़िया बाबा देखा है ?

ब्राह्मण—हमने नहीं देखा तो क्या,और लाखों ने तो देखा है।बड़ा पहुँचा हुआ सिद्ध महात्मा है। हमारे भला ऐसे भाग्य कहां है जो श्री उड़िया बाबा जी के दर्शन हों। अच्छा, बैठ जा, रोटी लाते हैं।

ब्राह्मण इतनी देर ऊपर बैठा बातें बनाता रहा और बाबा नीचे खड़े रहे। अब उसके कहने से नीचे बैठ गये। मैं अद्भुत लीला को देखकर हँस रहा था और उस ब्राह्मण से कहना ही चाहता था कि ये उड़िया बाबा जी ही हैं, कि बाबा समझ गये। उन्होंने मुझे संकेत से मना कर दिया। ब्राह्मण ने इतनी भली बुरी सुनाने के पश्चात् दो रोटियां लाकर दीं। बाबा उन्हें लेकर और घरों में भा गये और फिर हम दोनों गाँव से लौट आये।

सायंकाल हुआ। अब उस ब्राह्मण का भाग्योदय हुआ। पूज्य बाबा बोले, "बेटा रामशरण ! चल, उस ब्राह्मण से फिर मिल

आवें। बस, "मैं और बाबा फिर गांव में पहुँचे। वह ब्राह्मण सामने आया तो बोला, "अरे बाबा! अभी तू गया नहीं?

बाबा—नहीं तो।

ब्राह्मण—अभी और माँग कर इकट्ठा करेगा?

बाबा—नहीं इकट्ठा क्यों करेंगे?

ब्राह्मण—अब क्यों आया है? रोटी अब नहीं है।

बाबा—तुम्हें उड़िया बाबा का दर्शन कराने के लिए आया हूँ।

ब्राह्मण—तू करावेगा, तेरे हाथ में है?

मैंने झट से उसके पास जाकर कहा, "महाराज जी! यही तो पूज्य श्री उड़िया बाबा जी हैं, आप किस भूल में हैं?

बस, इतना कहना था कि फिर क्या कहना था जहां पहले ब्राह्मण ऊपर बैठा था और बाबा नीचे, वहाँ अब सारा गाँव नीचे बैठा था और बाबा ऊपर विराजमान थे। ब्राह्मण ने हुक्के को एक ओर फेंका और बाबा के चरणों में पड़ गया। घर वालों के नाम ले-लेकर बड़ी जोर से आवाज देने लगा, "अरे दौड़ो, दौड़ो, हमारे बड़े भाग्य जो उड़िया बाबा जी हमारे घर पर आये।" बात की बात में सारा गांव इकट्ठा हो गया। तख्तों पर आसन लगाये गये और बाबा को उस बिठा कर सब लोग घेर कर नीचे बैठ गये। ब्राह्मण हाथ जोड़कर बार-बार क्षमा मांगने लगा और बोला, "धन्य महाराज! बड़ी कृपा की, हमारे बड़े पुण्य उदय हुए। आज की रात तो यही विश्राम करो।" गांव में मुनादी करा दी गयी। रात्रि को सब दूध लेकर आये और संकीर्तन में सहयोग दिया।

रात्रि को सब वहीं रहे। प्रातः काल होते ही बाबा चुपचाप

उठकर चल दिये, नहीं तो गांव वाले आने नहीं देते। बाबा की यह अद्भुत लीला देखकर उस दिन बड़ा कौतूहल रहा। उनके नाम का जादू आज प्रत्यक्ष देखा। इस घटना से हमने तो यही शिक्षा ली कि गृहस्थ को चाहिए अपने द्वार पर आये किसी भी साधु का तिरस्कार न करे। पता नहीं इसी प्रकार कब शुकदेव, बामदेव, दत्तात्रेय आदि कोई सिद्ध संत, जो सदा अमर हैं, भिक्षुक रूप में चले आवें और हमसे उनका अपमान हो जाय।

सन्त सेवी बालक

एक अद्भुत घटना पूज्यपाद बाबा ने हमें स्वयं अपने श्रीमुख से सुनायी थी। वह हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

गर्मी के दिन थे और मध्याह्न का समय, पूज्य श्री बाबा हाथ में काष्ठ का कमण्डलु लिए ब्रह्मानन्द की मस्ती में झूमते जिलाबदायूं के किसी गाँव में होकर जा रहे थे। उनका विचार था आगे के गांव में जाकर विश्राम करने का। अकस्मात् पीछे से 'बाबा-बाबा की आवाज सुनायी दी। पर आपने उस पर कोई ध्यान न दिया, आगे बढ़े चले गये। कुछ देर पश्चात् आवाज बन्द हो गयी और पीछे से आकर किसी ने आपका हाथ पकड़ लिया। आपने मुड़ कर देखा तो हाथ में डंडा लिए ग्वाले का एक लड़का दिखायी दिया। वह बाबा के श्री चरणों में गिर गया और हाथ जोड़कर बड़े विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा, 'बाबा ! यहाँ पास ही मेरी झोंपड़ी है, कृपा करके वहाँ पधारो। थोड़ी देर आराम करो और स्नान तथा भोजन करके दास को कृतार्थ करो। जब दोपहर ढल जाय तब चले जाना।" बाबा बालक का ऐसा भाव देख कर चकित हो गये और बोले,

"भाई, हमें आगे जाना है, अब तो जाने दे, फिर कभी देखा जायगा।"

बालक—बाबा ! क्या मुझ पतित पर कृपा नहीं ?

बाबा—बच्चे ! क्या तू कुछ पढ़ा है ?

बालक—नहीं, साधु सेवा करना और राम नाम लेना—बस, यही पढ़ा हूँ। और कुछ नहीं जानता।

बाबा—अच्छा, अब हमें जाना है, देर हो रही है।

बालक—मैं आपको छोड़ूँगा नहीं, जब तक आप मेरे साथ चल कर भोजन नहीं करेंगे।

बाबा—अच्छा, तू नहीं मानता तो चल।

बस, बालक ने बाबा के चरण छोड़कर हाथ पकड़ लिया और बाबा उसके प्रेम के बन्दी बने उसके पीछे-पीछे चल दिये। प्रेम के बन्धन में तो स्वयं भगवान् भी बँध जाते हैं, फिर अन्यों की तो बात ही क्या है ? वह बाबा का हाथ पकड़े उन्हें अपनी झोपड़ी पर ले गया और उन्हें वृक्षों के नीचे हवा में बिठा दिया। फिर एक डोल पानी भर कर ले आया और बोला, "बाबा ! आप स्नान करो, मैं अभी गांव से रोटी लाता हूँ। आप कहीं चले मत जाना। आप सन्त हैं, "आपको मेरी सौगन्ध है।" तब बाबा ने कहा, "जा तू विश्वास रख हम कहीं नहीं जायेंगे।

बालक थोड़ी दूर चला और फिर लौट कर बोला, "बाबा ! धोखा मत देना, चले मत जाना, रोटी लाता हूँ, खा कर जाना।"

बाबा—जाओ, जाओ हम नहीं जायेंगे।

बालक दौडा-दौड़ा अपने घर पहुँचा और अपने माता-पिता से गिड़गिड़ाकर बोला, "मां ! आज तो हमारी झोंपड़ी पर एक बाबा जी कई दिनों का भूखा-प्यासा आया है, उसे खाने के लिये रोटी दे दे, बड़ा पुण्य होगा।"

माँ—चल भाग यहाँ से, रोज साधुओं के लिए रोटी ले जाता है, किसी को एक दिन का भूखा बताता है और किसी को दो दिन का। हम नहीं देंगे भाग जा।

बालक माँ के पैरों पर पड़ गया और बोला, मां ! आज तो दे ही दे, फिर भले ही मत देना। यह बाबा बहुत दिनों का भूखा है। इसे कई दिनों से रोटी नहीं मिली।"

बालक के इस प्रकार बहुत अनुनय-विनय करने पर मां ने मोटी-मोटी रोटी बनाकर उसे दे दीं। वे रोटियाँ और बेला भरी छाछ लेकर बालक बाबा के पास आया। उसके साथ ही उसका पिता भी झोंपड़ी पर पहुँच गया। उसने बाबा से पूछा, "क्यों महाराज ! आप कितने दिनों के भूखे हैं ?"

बाबा—मैंने तो रात ही एक गाँव में रोटी खायी थी, मैं तो भूखा नहीं हूँ।

पिता—आपने इस बालक से कहा था कि हम कई दिन के भूखे हैं।

बाबा—नहीं, मैं तो चला जा रहा था, यह मुझे जबर-दस्ती पकड़ लाया और बोला कि रोटी खाये बिना नहीं जाने दूँगा।

पिता—इसने मुझसे झूठ बोला और कहा कि बाबा बहुत दिनों का भूखा है।

ऐसा कह कर बालक के मुँह पर ऐसा चपत लगाया कि वह लाल हो गया और कहा कि तू नित्य झूठ बोलता है, भला इस तरह झूठ बोल कर साधुओं को रोटी खिलाना कोई अच्छी बात है ?

बाबा—क्यों बच्चे ! तू झूठ क्यों बोलता है ?

बालक—बाबा ! बिना झूठ बोले ये मुझे रोटी देते नहीं तब मैं क्या करू ?

बाबा—क्या झूठ बोलना ठीक है ?

बालक—झूठ बोलने से क्या होता है बाबा !

बाबा—पाप होता है।

बालक—फिर उससे क्या होता है !

बाबा—नरक में जाना पड़ता है।

बालक—नरक में क्या होता है ?

बाबा—बड़ी घोर यातनायें भोगनी पड़ती हैं।

बालक—बाबा ! यदि नरक में जाकर और नारकीय यातनायें भोग कर भी सन्त-सेवा हो सके तो फिर क्या कहना है ? मैं झूठ बोलने के कारण भले ही नरक में जाऊँ पर मुझसे सन्त-सेवा कभी न छूटे—यही मेरी अभिलाषा है। मैं अपने लिए झूठ बोलता नहीं हूँ, सन्त-सेवा के लिए बोलता हूँ। सो मैं नरक में जाने के लिए तैयार

हूँ, किन्तु सन्त-सेवा नहीं छोड़ सकता। यदि नरक के भय से संत-सेवा छूट जाय तो वह सेवा ही क्या हुई ?

बालक की यह अद्‌भुत बात सुन कर बाबा चुप हो गये, दङ्ग रह गये और आश्चर्य में डूब गये। ऐसा सन्तसेवी बालक आपने देखा तो क्या सुना भी नहीं था। यह आपके जीवन का पहला ही अनुभव था। पिटने और नरक जाने की भी परवाह न करके जो संत-सेवा में संलग्न था ऐसा अद्‌भुत बालक देखकर आप गद्‌गद्‌ हो गये। उसके पिता ने बताया कि महाराज, यह आज से नहीं, बचपनसे ही जिस साधु को देखता है उसे हाथ जोड़ता है, अनुनय-विनय करके बुला लाता है और झूँठी-सच्ची बातें बनाकर माँ से रोटी ला उसे भोजन कराता है। इसे अपने खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं है, बस, केवल सन्त-सेवा का शौक है।

बाबा—भैया ! यह तेरा पुत्र तो पूर्वजन्म का कोई योगी है। तेरा बड़ा भाग्य है जो तुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ। ऐसा बालक पाकर तेरी इक्कीस पीड़ियां तर जायेगी। तुम इसे अब कभी भूल कर भी नहीं मारना और न इसकी साधु-सेवा में ही बिघ्न डालना।

बस, अब बालकने बाबा को भिक्षा करायी और आप उससे बिदा हो कर चल दिये।

बालयोगी

ऐसी ही एक और घटना हमने पूज्य बाबा के मुख से सुनी थी। यह बात उड़ीसा प्रान्त की थी बाबा एक घर के पास होकर निकले तो पीछे से किसी ने आपका वस्त्र पकड़ लिया। आप ने मुड़कर देखा

तो तीन-चार वर्ष का एक बालक था। उसने अपने मुँह और हाथों से आपका वस्त्र पकड़ा हुआ था। बाबा ने छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह कोई सामान्य शिशु तो था नहीं जो छोड़ देता। वह बाबा को अपनी ओर खींच रहा था। अन्त में बालस्वभाव बाबा भी उसके साथ हो लिये। वह घर के भीतर ले जा कर अपनी माँ से बोला, "मां ! पू, मां ! पू." बाबा उसका कोई आशय नहीं समझ सके। तब उसकी माँ ने कहा, "महाराज ! यह बालक किसी भी भगवा वस्त्रधारी साधु को देखता है तो उसे पकड़ कर ले आता है और जब तक उसे कुछ खिला-पिला नहीं लेता तब तक जाने नहीं देता। यह 'मां ! पू,, माँ ! पू', कहकर उसे पूड़ी बनाने के लिये कह रहा है।"

बस, माँ ने पूड़ियाँ बनायी और बालक ने बाबा को भिक्षा कराकर विदा किया। चलते समय बाबा ने कहा, "तुम इस बालक की खूब सेवा करना। यह कोई योगी ही तुम्हारे घर में जन्मा है, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं।"

अन्नपूर्णा की सिद्धि

पूज्य बाबा के साथ जब मैं ऋषिकेश से वृन्दावन की यात्रा में आ रहा था तो मार्ग में कस्बा बक्सर आया। तब बाबा ने कहा कि यहां से स्याना होकर चलेंगे। स्याने से तीन-चार कोस की दूरी पर बुगरासी है। वहां मेरी बहिन पार्वती विवाही थी। अतः मैंने बाबा से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि यदि आज्ञा हो तो मैं मोटर द्वारा बुगरासी जा कर पार्वती को स्याना ले आऊँ। आपने मुझे आज्ञा दे दी। इस से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं मोटर द्वारा

स्याना जाकर वहां से बुगरासी आया। पार्वती को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। रात-भर तरह-तरह के पकवान बनते रहे और सबेरे सब सामान बैलगाड़ी में रख कर हम स्याना आये। हमारे साथ बुगरासी के और भी कई आदमी बाबा के दर्शनार्थ चले आये। बाबा बाग में ठहरे हुए थे। भोजन का समय हुआ तो हमारे छक्के छूट गये। हमने तो केवल उतने ही लोगों के लिए भोजन बनवाया था। जितने बाबा के साथ थे। परन्तु वहां तो आस-पास के भी बहुत भक्त एकत्रित हो गये थे। हमें चिन्ता हुई कि अब हमारी सब इज्जत-आबरू मिट्टी में मिल जायेगी और कई लोग भूखे रह जायेंगे। इस प्रकार हम तो संकोच से सकपकाये हुए थे, किन्तु बावा ने सभी को भोजन करने के लिए बिठा दिया। आश्चर्य तो यह हुआ कि सब के भोजन कर लेने पर भी कुछ सामान बच रहा। इस प्रकार की अन्नपूर्णा-सिद्धि की बाबा के विषय में और भी कई घटनायें सुनी थीं और यह तो स्वयं अपनी आंखों देखी घटना है।

उपसंहार

इस प्रकार प्रायः बीस वर्षों तक मुझे प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री महाराज जी के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे जो सुख उनके श्री चरणों में प्राप्त हुआ वैसा और कहीं नहीं मिला। भगवान ने मुझे धन, वैभव, मान सभी कुछ दिया है, परन्तु सच्चा सुख तो मुझे गङ्गाजी की रेती में पूज्य बाबा के चरणों में बैठ कर ही प्राप्त होता था। उन चरणों के समीप जाते ही पाप-ताप सब भाग जाते थे और एक अद्भुत आनन्द एवं शान्ति का अनुभव होता था; चित्त सात्त्विक सुख से भर जाता था, श्रीकृष्णप्रेम की मस्ती-सी चढ़ जाती थी। और मन प्रभुप्रेम में रोने के लिए मचलने लगता था। कैसा था

वह विलक्षण अपूर्व आनन्द ! आज उसकी याद आते ही हृदय भर आता है। वास्तव में बाबा ही थे ! ऐसे विलक्षण सन्त संसार में ढूढ़ने पर भी नहीं मिल सकते। आपको खोकर भारत अनाथ हो गया, भक्तों का सहारा छिन गया और सनातन धर्म का तो मानो सूर्य ही अस्त हो गया। बाबा भक्ति, ज्ञान, योग और वैराग्य की दिव्य मूर्ति थे, बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता आपके दर्शन करके कृतकृत्यता का अनुभव करते थे और बड़े से बड़े विद्वान् भी आपके चरणों में बैठकर शास्त्रों का रहस्य हृदयङ्गम करते थे। अधिक क्या कहें बाबा तो साक्षात् शङ्कर ही थे।



डाक्टर मोहन वार्ष्णेय, डिबाई

पूज्य श्रीमहाराजजी के विषय में हमारे जो अनुभव हैं उन्हें तो वास्तव में लिखा ही नहीं जा सकता। अपने भक्तों के साथ उनका जो दैनिक व्यापार था वही बड़ा अद्भुत जान पड़ता था। जिस पर उनकी कृपा रही, पूरी रही, अन्त तक रही और अब भी है। उनके विषय में कहाँ तक लिखा जाय? और हरेक बात लिखना अभीष्ट भी नहीं है। फिर भी पूज्य श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जली के लिये एक घटना लिखता हूँ।

सन् १९३७ ई० की बात है। कर्णवास में बिरौली के बोहरे श्रीरामचन्द्रजी द्वारा आयोजित श्रीमद्भागवत-सप्ताहपारायण हो रहा था। मैं नित्य डिबाई से कर्णवास जाता और सायंकाल में लौट आता था। एक दिन दिल्लीवाली बहिनजी ने पीने के लिये श्रीमहाराजजी को कुछ पेय दिया। आपने थोड़ा-सा पीकर शेष लौटा दिया। बहिनजी ने पूरा पी जाने के लिये आग्रह किया। आप बोले, 'पूरा पी जाने से बार-बार लघुशंका के लिये जाना पड़ता है। कथा के बीच में उठना ठीक नहीं।" परन्तु बहिनजी बार-बार उसे पूरा पी जाने के लिये आग्रह करती रहीं और रोने लगीं। तब श्रीमहाराजजी ने अन्यमनस्क हो पी लिया और यज्ञशाला में जाकर कथा में बैठ गये। वहाँ बैठे-बैठे मैंने श्रीमहाराजजी की विचित्र अवस्था अनुभव की। मुझे ऐसा लगा कि या तो श्रीमहाराजजी यह स्थान छोड़ देंगे या आज कोई विशेष घटना घटेगी। अतः उस दिन मैं सायं काल में लौटा नहीं।

रात्रि को जब कीर्तन हुआ तो श्रीमहाराजजी खड़े-खड़े समाधिस्थ हो गये। सब स्त्री-पुरुष रोने लगे और मुझसे श्रीमहाराजजी की नाड़ी देखने को कहा। मैंने सबको शान्त करते हुए जोर-जोर से कीर्तन करने को कहा। बहुत देर में श्रीमहाराजजी ने नेत्र खोले और वहाँ से चलने के लिये संकेत किया। उस समय आप बड़ी कठिनाई से चल सके। जैसे कोई गड़ी हुई चीज उखाड़ता है वैसे ही आपने बड़े प्रयास से अपने पैर उठाये।

वहाँ से चल कर सब भक्त लोग तो भोजनादि में व्यस्त हो गये, परन्तु दो-चार सन्तों के साथ में आपके पास ही बैठा रहा। मेरे मनमें कभी-कभी ऐसा विचार आया करता था कि बाबा मुझे प्यार नहीं करते, क्योंकि अन्य भक्तों की तरह मुझसे कभी खाने-पीने की बात नहीं पूछते। इस समय आपने एक सन्त को सम्बोधन करके कहा "मैं किसे प्यार करता हूँ, किसे नहीं—यह तुम नहीं जानते। जो सत्कार के भूखे हैं उन्हें मैं सत्कार देता हूँ, किन्तु जो मेरे हैं उन्हें सत्कार नहीं, फटकार देता हूँ, क्योंकि मैं उनका अकल्याण नहीं देख सकता अतः जिस पर मेरा वास्तविक प्रेम होता है उसे मैं ऊपरी सत्कार नहीं देता। अपने को सत्कार दिया भी नहीं जाता।" उस दिन की वह घटना और यह बात मुझे भूलती नहीं, मेरे लिये तो यह प्रकाश का स्रोत बन गयी है।



श्री मुन्शीलाल जी ड्राइङ्ग मास्टर, बुलन्दशहर

प्रारंभिक परिचय

पूज्य श्री महाराज जी का प्रथम दर्शन मुझे हाथरस में श्रीविष्णु-दयाल के बगीचे में हुआ था। उससे पूर्व मेरे विवाह के अवसर पर भी आप वहीं थे और विवाह संस्कार भी उसी मण्डप में हुआ था जिसमें प्रातःकाल आपका पूजन हो चुका था। विबाह के कुछ काल पश्चात् जब मैं दूसरी बार हाथरस गया तब मेरे पूज्य श्वसुर लाला शंकरलालजी ने कहा, "चलो, मैं तुम्हें एक महात्मा के दर्शन कराऊँ।' मैं उनके साथ गया और उक्त बगीचे में बाबा के दर्शन किये तथा प्रणाम करके बैठ गया। तब बाबा बोले, "अरे! उन चार* लड़कों में से एक यह भी है क्या?" शंकरलालजी ने कहा, "हाँ, महाराज।" फिर बोले, "यह कुछ करता भी है या यों ही रहता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "रामायण का पाठ करते हैं।" इसके सिबा और जो बातें हुई वे अब याद नहीं हैं।

इसके पश्चात् दूसरी बार मैंने अनूपशहर में आप के दर्शन किये। इस बार आप मुझे ऊपर ले गये और बोले, "देख, जब तू पहले लखनऊ में रहता था तो रामायण क पाट करते समय तेरी आँखों में आंसू आ जाते थे, परन्तु अब नहीं राते। तू शंकर लाल के चक्कर

---

*श्री शंकर लाल जी ने अपनी, अपने भाई की तथा अपने एक सम्बन्धी की चार लड़कियों के विवाह एक साथ किये थे। उनके चार वरों में से एक ये थे।

में मत आ जाना। वह वेदान्ती है, उसकी बात मत सुनना।" वास्तव में वे मुझसे कहा भी करते थे कि गायत्री का जप इस प्रकार करना चाहिये, प्रातः और सायंकाल संध्या इस प्रकार करना चाहिये। इत्यादि।

लखनऊ में रहते समय मैंनें एक सज्जन से वैष्णवीय दीक्षा तथा मन्त्र ले लिये थे। बाबा ने उसे ही पुष्ट किया और उसी उपासना में मेरी निष्ठा दृढ़ की। बाबा में मैंने यह एक विशेषता देखी कि उनके पास यदि कोई अन्य महात्मा से दीक्षित व्यक्ति जाता तो वे उसी इष्ट और मन्त्र की पुष्टि करते थे। इस बात में वे बहुत सावधान रहते थे कि किसी को बुद्धि भेद न हो। अन्यत्र ऐसा बहुत कम देखा जाता है।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे आपके श्रीचरणों में मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और मैं रामघाट, कर्णवास अथवा और भी जिस किसी स्थान पर बाबा होते वहीं उनके दर्शनार्थं जाने लगा। प्रायः अनेकों बार ऐसा हुआ कि जब कभी मुझे स्कूल से छुट्टी मिलती मेरी धर्मपत्नी को स्वप्नादि के द्वारा यह अनुभव हो जाता कि बाबा इस समय कहाँ हैं। उनके कथनानुसार मैं जाता तो निश्चय ही आप उसी स्थान पर मिलते।

उपदेश और आदेश

पूज्यपाद श्रीमहाराजजी का मेरे लिये यही उपदेश था कि भगवन्नाम जप करते रहो, यथासाध्य ध्यान भी करो और सर्वदा श्रीरामायणजी का पाठ किया करो। इससे श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं। लौकिक क्षेत्र में उनका यह आदेश था कि स्कूल के काम को तुम नौकरी मत समझना। मेरी या भगवान् की सेवा समझकर साव-

धानी के साथ करते रहना। अपना व्यवहार छल-कपट से रहित तथा सरल और सत्यानुकूल रखना। यदि मैं स्कूल की छुट्टी होने पर आपके दर्शनार्थ जाता था तो आप प्रसन्न होते थे, किन्तु यदि किसी बहाने मे छुट्टी लेकर जाता तो मुझे स्पष्ट अनुभव होता था कि मेरी ऐसी चेष्टा से उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी। वे कहा करते थे कि तुम्हारे लिये तो भगवान् स्वतः छुट्टियाँ दे रखीं हैं ये बहाने आदि के उपाय तो दुनियादारी के लिये हैं, जिन्हें झूठ और छल-कपट से कोई घृणा नहीं होती।

श्रीमहाराजजी ने मुझे विनय पत्रिका के तीन पद लिखवाकर यह आज्ञा दी थी कि तुम इन पदों के अनुसार अपना जीवन बनाने की चेष्टा करते रहना। वे पद इस प्रकार हैं—

(१)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो॥ १॥
जथा लाभ संन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरतर मनक्रमवचन नेम निवहौंगो॥ २॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहिं पावक न दहौंगो।
विगतमान सम शीतल मन, परगुन नहिं दोष गहौंगो॥ ३॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥ ४॥

(२)

जो मन लागै रामचरन अस
देह गेह सुत बित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस॥ १॥
द्वंद्व रहित गतमान ग्यानरत विषय विरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस॥ २॥

सर्वभूतहित निर्व्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एकरस।
'तुलसिदास' यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस जेहि हत्यौ सीस दस ॥ ३ ॥

(३)

जो मन भज्यौ चहे हरि सुरतरु।
तौ तजि विषय विकार सार भज, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ॥१॥
सब संतोष विचार बिमल अति, सतसंगति ये चारि दृढ़ करि धरु।
कामक्रोध अरु लोभ मोह मद, राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥
श्रवन कथा मुखनाम हृदय हरि, सिर, प्रनाम सेवा कर अनुसरु।
नयननि 'निरखि कृपासमुद्र हरि, अग-जग-रूप भूप सीताबरु ॥३॥
इहै भगति वैराग्य ग्यान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु।
'तुलसिदास' शिव मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु ॥४॥

श्रीमहाराजजी की हमारे ऊपर अपार कृपा थी। मैं प्रायः श्रीचरणों के दर्शनार्थ जाता रहता था और उन्हीं की कृपा से मुझे इसके लिये छुट्टी भी मिल जाती थी। इससे अन्य अध्यापकों को कुछ स्पर्द्धा भी होती थी। यहाँ तक कि एक बार तो स्वयं हैड-मास्टर साहब ने भी इस बिषय में इन्सपैक्टर को मेरी शिकायत लिख दी। किन्तु इससे उन्हीं को हानि उठानी पड़ी। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ऐसे अवसरों पर केवल उन्हीं की कृपा से मेरी रक्षा हो जाती थी। वे सब कुछ जानते थे और जिस प्रकार उस समय हमारी देख-रेख रखते थे उसी प्रकार अब भी रखते हैं तथा आगे भी रखेंगे—ऐसी मेरी धारणा है।

माता-पिता अपनी सन्तान के हित के लिये जैसे उन्हें ताड़ना देते हैं उसी प्रकार केवल वात्सल्यवश वे हमें दण्ड भी देते थे। उनकी वह विशुद्ध आत्मीयता आज भी हमारे हृदय को रह-रह कर क्षुब्ध कर देती है। एक बार की बात है, अनन्त चतुर्दशी का दिन था।

श्रीमहाराजजी के साथ हम कई व्यक्ति श्रीगङ्गास्नान के लिये गये। वे तो स्नान करके चले आये, किन्तु मैं प्रतापसिंह तथा और दो व्यक्ति पीछे रह गये। हम चारोंमें श्रीमहाराजजीकी लंगोटी धोनेके लिये होड़ लग गयी। प्रत्येक चाहता था कि वही धोवे। भाद्रपद मास में श्रीगङ्गाजी का प्रवाह प्रबल तो होता ही है। छीना-झपटी में एक का पैर उखड़ गया और डूबने लगा। उसे बचाने के लिये दूसरा लपका और वह भी बहने लगा। यही गति तीसरे और चौथे की भी हुई। तब फर्रुखाबाद वाले रघुनाथजी ने धोती फेंककर एक को खींचा और उसी के सहारे सब बच गये। लौटने पर यह घटना किसी ने श्रीमहाराजजी को सुना दी। चारों की पेशी हुई। उन्होंने चारों से कान पकड़वाया और गङ्गाजी की ओर मुँह कराकर शपथ कराया कि फिर कभी ऐसा ऊधम नहीं करेंगे।

ऐसी थी उनकी अद्भुत आत्मीयता। अब तो केवल उनकी स्मृति का ही आश्रय है।



श्रीमती द्रौपदी देवी, बुलन्दशहर

पूज्य श्रीमहाराज जी की सर्वदा ही हम पर बड़ी कृपा रही है। उन्होंने कई बार हमें अनेक प्रकार की विपत्तियों से बचाया है। ऐसी ही कुछ घटनाओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१)

एक बार मास्टर साहब को बुखार और पेचिस दोनों हो गये। वे औषधि के लिए वैद्य के पास गये परन्तु बुखार की बात कहना भूल गये। वैद्य जी ने पेचिस की दवा दी और दही खाने के लिए कह दिया। ज्वर की दशा में दही खाने से मास्टर साहब को सन्निपात हो गया। वे रात्रि में अनाप-शनाप बक रहे थे। उनकी बीमारी को दुःसाध्य समझकर मैं बाल-बच्चों के भविष्य की चिन्ता से दुःखी हो रही थी। उसी स्थिति में मेरी आंखें कुछ झप गयीं। मैंने स्वप्न में देखा कि श्रीमहाराज जी मुझ से कह रहे हैं, "बेटी! तुमने नगरकोट की देवी को भेंट का सवा रुपया नहीं भेजा, उसी का यह परिणाम है। अब जल्दी भेज दो। मैंने उसी समय रुपया निकाल कर रख दिया और दूसरे ही दिन मनीआर्डर द्वारा भेज दिया। तभी से उनकी बीमारी अच्छी होने लगी और तीन-चार दिन पश्चात् वे श्री महाराज जी के दर्शनों को चले गये।

(२)

एक बार मुझे संग्रहणी की बीमारी हो गयी। बार-बार दस्त आते थे। एक दिन श्री महाराज जी ने स्वप्न में कहा, "तुम दही-पेड़ा खाओ।" मैंने मास्टर साहब को पूरी बात न सुनाकर दही-पेड़ा

लाने को कहा। सुनकर वे बहुत नाराज हुए। बोले, "संग्रहणी में मीठा तो जहर है, क्या मरने के लिये मँगा रही है?" परन्तु मैं बराबर आग्रह करती रही। तब वे झुँझला कर एक सेर पेड़ा और आधा सेर दही ले आये और, बोले "लो, खाओ और मरो चाहे जीओ।" मैंने उसमें से पाव भर दही और आधा पाव पेड़ा लेकर खा लिये। उन्हीं से मेरी संग्रहणी अच्छी हो गयी और दूसरे ही दिन से मैं भर पेट रोटी-दाल खाने लगी।

(३)

एक बार हम दोनों अपनी पुत्री विद्या को साथ लेकर श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ कर्णवास जा रहे थे। रास्ते में विद्या को बहुत तेज बुखार चढ़ा और उसके गले में एक बड़ा-सा फोड़ा निकल आया। अब वह न तो पानी पी सकती थी और न थूक निगल सकती थी लोग कहने लगे, "यह तो कालगुमडी है, इससे तो बचना कठिन होता है।" थोड़ी देर में श्रीमहाराजजी आये। विद्या ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया। महाराजजी की चादर के सिरे में कुछ अंगूर बँधे थे। उनमें से एक अंगूर निकालकर उन्होंने विद्या को दिया और बोले, "खा ले।" उसे खाने के आधे घन्टे बाद ही वह फोड़ा दब गया और ज्वर भी शान्त हो गया। तब श्रीमहाराजजी कहने लगे, "यों ही हल्ला मचा रखा है कि काल-गुमड़ी हो गयी, विद्या को तो त्रिकाल में कुछ नहीं हो सकता।"

ऐसी थी उनकी अद्भुत कृपा।



ठाकुर अमरदेवजी (भक्तमुनीमजी), बुलन्दशहर

पूज्य बाबा का प्रथम दर्शन मैंने अनूपशहर में किया था। वहाँ के कुछ गुजराती भक्त बाबा के पास आते-जाते थे। एक दिन उन्होंने ही मुझसे कहा, "एक बड़े अच्छे महात्मा आये हैं; चलो तुम भी दर्शन कर लो।" उसी समय मैंने जाकर बाबा के दर्शन किये और तभी से मेरा चित्त उनकी ओर आकर्षित हो गया। दूसरी बार खुरजा जाकर दर्शन किये। इस प्रकार धीरे-धीरे उनसे मेरा सम्बन्ध बढ़ गया।

बाबा मेरे लिए प्रायः यही उपदेश देते थे कि प्रातःकाल तीन बजे से पांच बजे तक ध्यान किया करो तथा नामजप पर विशेष ध्यान दो। वे ज्ञान मार्ग वालों को तो शाङ्कर सिद्धान्त के अनुसार उपदेश देते थे परन्तु मुझे तो वैष्णव धर्म के संस्कार थे, इस लिए सर्वदा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही उपदेश दिया करते थे।

मैं कभी-कभी बाबा से ऊटपटाँग प्रश्न कर देता था। परन्तु बाबा उनका भी बड़ा सुन्दर समाधान कर देते थे। एक बार मैंने पूछा, "महाराज जी! भगवान कहते हैं—'इन्द्रियाणाँ मनश्चास्मि।' फिर ऐसी अवस्था में मन अर्थात् भगवान को कौन रोक सकता है?" इस पर बाबा बोले, "ठीक है, मन जब हृदयचक्र में अर्थात् पिण्ड के भीतर रहता है तभी उसे रोकने की आवश्यकता होती है। परन्तु जब नामजप या ध्यान-उपसना आदि के प्रभाव से वह कण्ठ-

गत हो जाता है तब वह कृष्णस्वरूप हो जाता है। फिर उसे रोकने की आवश्यकता नहीं रहती।"

एक बार बाबा बुलन्दशहर पधारे थे। तब एक शास्त्रपटु पण्डित उनके पास पहुँचे और उनने शास्त्रार्थ छेड़ दिया। विषय था—ब्रह्म निर्गुण है या सगुण? बाबा जिस उच्च सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे उस तक तो पण्डितजी की पहुँच थी नहीं। वे केवल शास्त्रकी रटी हुई बातें ही बार-बार कह रहे थे। उनकी इस हठधर्मी से मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा, "महाराज जी! मुझे आज्ञा हो तो मैं पण्डितजी को एक मिनट में ही उत्तर दे दूँ।"

परन्तु बाबा ने मेरी बात को अनसुनी करके पण्डित जी से कहा, "आप किसी पढ़े-लिखे विद्वान् से पूछिये। मैं तो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। यों ही मांग कर रोटी खा-पी लेता हूँ।" बाबा के ये वचन सुनकर पण्डित जी को बड़ा संकोच हुआ और वे चुप हो गये। उनके चले जाने पर बाबा ने मुझसे कहा, "भैया! क्रोध क्यों करना? अपने को तो ऐसी स्थिति में विवाद में न पड़ कर अपना पिण्ड छुड़ा लेना चाहिए।"

मैं सच्चे हृदय से उनके लिए रोने लगता तो वे निश्चय ही स्वप्न में पधार कर मुझे दर्शन देते थे। उस समय मैं जो कुछ पूछता उसका यथावत् उत्तर देकर मेरा समाधान करते थे। इसी प्रकार कई बार ध्यानावस्था में भी दर्शन देते थे। एक दिन मैं मन ही मन सोच रहा था कि यदि बाबा यहां होते तो मैं दाल-भात खिलाता। बस, ध्यान करते समय उनके दर्शन हुए और

मैंने उन्हें दाल-भात का भोग लगाया। वे खुले दिल के परमहंस थे और बालभाव में विचरण करते थे।

एक बार बाबा लोगों से छिप कर एकान्त में चले गये। कई लोग मुझसे आकर पूछते कि बाबा कहाँ हैं? एक दिन मेंने ध्यान में बाबा से ही पूछा कि आप कहाँ हैं? लोग मुझसे बार-बार पूछते हैं। आश्चर्य की बात यह हुई कि उसी समय मेरे सामने उस झाड़ी का दृश्य उपस्थित हो गया जहाँ वे थे। और उन्होंने कहा, "मैं यहाँ करैला की झाड़ी में हूँ। लोग बहुत परेशान करते हैं, इसलिये यहाँ चला आया हूँ।" पीछे लोगों को उनका पता चल गया और वे वहाँ भी जाने लगे।

एक समय हाथरस में राधेश्याम सेक्सरिया के यहाँ महोत्सव था। मैं उन दिनों बीमार था। मास्टर मुन्शीलालजी आये कि चलो बाबा के दर्शन कर आवें। यद्यपि में बीमार था, तथापि उनके आग्रहवश चला गया। श्रीमहाराजजी सिंहासन पर बिराजमान थे और भक्तगण उनका पूजन कर रहे थे। यहाँ जाते ही मेरी विचित्र दशा हो गयी। मुझे सिंहासन पर श्रीमहाराजजी का दर्शन नहीं होता था, प्रत्युत श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजी के दर्शन हो रहे थे। मेरे नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। मैं बार बार कहता था, "अरे! तुम लोग क्या कर रहे हो? किसकी पूजा करते हो? ये तो साक्षात् राम, लक्ष्मण और जानकी जी दिखायी दे रहे हैं। इनकी पूजा क्यों नहीं करते?" पूरे एक घण्टे तक मेरी यही अवस्था रही, पीछे श्रीमहाराजजी का दर्शन होने लगा। इस अनुभव के बाद बाबा में मेरी अपार श्रद्धा बढ़ गयी।

संसार भले ही उन्हें साधु-महात्मा मानें, मैं तो साक्षात् भगवद्-रूप ही मानता हूँ। उनकी कृपा से मुझे अपार पारमार्थिक लाभ हुआ है। उसका वर्णन मैं कैसे करू ?

श्रीमहाराजजी में मैंने अद्‌भुत दीनबन्धुता का अनुभव किया। एक बार ये बुलन्दशहर में सेठ बंशीधर के बगीचे में ठहरे हुए थे। वहाँ सैकड़ों व्यक्ति उनके दर्शनार्थ उपस्थित थे। खुरजा के सेठ सूरज मल और बाबूलाल भी आये हुए थे। दरवाजे की ओर दूरी पर कुछ गरीब आदमी बैठे थे। प्रसाद का ढेर लगा हुआ था। बाबा की दृष्टि उन गरीबों पर पड़ी जो अलग दूर बैठे थे। बोले, "इस प्रसाद में से ले जाकर उन सबको बाँट आओ।" जब उन सबको मिल गया तब पास बैठे हुए लोगों को दिया और सबसे अन्त में सेठ सूरजमल बाबूलाल को मिला। मैंने अनुभव किया कि महात्माओं में यह गुण सर्वत्र नहीं मिलता।

बाबा में विचित्र सहनशक्ति थी। उन्होंने स्वयं बताया कि एक बार उन्हें दो दिन तक भिक्षा का योग न जुटा। तीसरे दिन उन्होंने एक गृहस्थ के घर पर 'नारायण हरि' किया। घर का बूढ़ा मालिक बैठा था। उसने अपने नवयुवक पुत्र से कहा, "दरवाजे पर महात्मा खड़े हैं, चार रोटी दे आ।" बेटा बोला, "खासा हट्टा-कट्टा है, कमाया-खाया नहीं जाता; ! चार आने की मजदूरी क्यों नहीं करता ?" बाप ने कहा, "अरे ! ऐसा क्यों बकता है ? चार रोटी दे आ। ये कोई सिद्ध महात्मा जान पड़ते हैं।" बेटा बोला, "तुम्हें सारा संसार ही सिद्ध दीखता है।" अन्त में उसने बाप के कहने से चार रोटियाँ लाकर दीं। उन्हें खाकर

आपने जल पीया और चल दिये। बाबा के गुण अपार थे। वे अब भी हम पर कृपा करते हैं, हृदय में श्रद्धा होनी चाहिए।

उनके सम्बन्ध में मैं अपना क्या-क्या अनुभव कहूँ ? उनमें कृपा उदारता, धर्म, शील, क्षमा, सहिष्णुता आदि सभी गुण देखे जाते थे। वे कभी किसी की निन्दा नहीं करते थे। सभी को सम्मान देते थे। दीनों पर दया करते थे, और अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते थे, उसे क्षमा कर देते थे।



श्री मुन्शीलालजी, देदामई (अलीगढ़)

(१)

एक बार मैं घर में बैठा भगवत्स्मरण कर रहा था। उस समय मुझे ऐसा मनोराज्य होने लगा कि यदि बाबा आते तो मैं श्रीरामायण जी का सम्पुट सहित पाठ करता। उस मनोराज्य में मुझे भक्तों सहित श्री महाराज जी के दर्शन भी हो रहे थे। उन दिनो कुँवर जी का द्वादसवर्षीय बालक ब्रह्मानन्द बहुत बीमार था। बाबा उस समय प्रयाग की अर्द्ध कुम्भी पर गये हुए थे। सम्भवत: उसी समय उन्हें मेरे आन्तरिक संकल्प और ब्रह्मानन्द की बीमारी का पता चल गया। परन्तु उन्होंने इस बात को प्रकट न करते हुए मेरे छोटे भाई दण्डिस्वामी सियाराम से, जो उनके साथ थे, कहा, "सियाराम! आज स्वप्न में मुंशीलाल मुझसे रामायण का सम्पुटसहित पाठ कराने को कह रहा था और तुम्हारे घर पर कुछ उपद्रव आया जान पड़ता था। तुम जल्दी चले जाओ और देखो क्या हाल है।" दण्डिस्वामी तुरन्त चले आये। मेरे मन में पाठ कराने का संकल्प तो था ही और उन्हें ब्रह्मानन्द की हालत भी खराब ही मिली। पीछे जब महाराज जी प्रयाग से लौटे तो उन्होंने भक्तों सहित पधार कर पाठ कराया और उनकी कृपा से उपचार कराने पर ब्रह्मानन्द भी अच्छा हो गया।

(२)

एक दिन श्री महाराज जी के सामने ब्रह्मानन्द और मेरी लड़की शान्ति दोनों बैठे थे। उन्हें देखकर आप बोले इन दोनों बालकों

का अभी चार वर्ष तक विवाह मत करना। परन्तु होनहारवश हमने मोह के कारण बाबा की बात पर ध्यान न देकर शान्ति का विवाह कर दिया। उनके वचन सत्य ही हुए। तीसरे वर्ष शान्ति चल बसी। उसके मरने पर ब्रह्मानन्द की माँ को चिन्ता हुई कि अब बचेगा यह भी नहीं। छः महींनें पश्चात् उसका भी देहान्त हो गया। सारे घर में शोक छा गया। परन्तु 'अब पछताये होत कहा जब चिड़िया चुग गयीं खेत।' हमें बाबा की आज्ञा अवहेलना करने का फल मिल गया।

(२)

महाराजजी के लीलासंवरण करनें के चार मास पीछे की बात है, सम्भवतः मार्गशीर्ष का महीना था। एक रात में मैंने स्वप्न में देखा कि दो भैंसें लड़ रही हैं और मैं वहीं खड़ा हूँ। उसी समय बाबा मुझसे कह रहे हैं—'हट परे को।' मैं हट गया। दूसरे दिन मैं अपनी भैंस के पास खड़ा था उसी समय एक अन्य भैंस आकर उससे लड़ने लगी। मुझे तुरन्त स्वप्न की घटना याद आ गयी। मैं वहाँ से हट गया। उनमें ऐसी भिड़न्त हुई कि एक भैंस का सींग टूट गया। यदि श्रीमहाराजजी ने मुझे स्वप्न में सचेत न किया होता तो सम्भव है, मुझे बड़ी सख्त चोट आती।

आज उनके बिना हम अनाथ बच्चों की तरह हो गये हैं परन्तु वे कृपालु हमें भूले नहीं हैं। अब भी समय-समय पर उनकी कृपा का अनुभव होता रहता है।



बहिन श्रीरामकुँवरिजी, देदामई (अलीगढ़)

पूर्व चरित

मेरी पूजनीया माता जी बड़ी भक्तिनिष्टा हैं। वे स्वयं तो भजन करती ही थीं हम बालकों के चित्त में भी भक्ति-भान के सुन्दर बीज बोया करती थीं। मुझे याद आता है, जब में और मेरी छोटी बहिन राजकुंवरि शीतकाल में प्रातःस्नान करती और उस समय,जैसा कि लोग स्नान के समय, प्रायः कहा करते हैं, इस दोहे की गाती—

राम नाम की लूट है, लूटी जाय तो लूट।
अन्तकाल पछितायगो, प्राण जायँगे छूट।

—तो माता जी कहने लगती, "अरी ! तो कहती क्यों हो ? लूट क्यों नहीं लेती ? इतनी देर में तो दस-बीस रामनाम जप सकता थीं, दूसरों की समझाती क्यों हो ?" इस प्रकार माता जी की शिक्षा से मैं बचपन में ही रामनाम का जप तथा रामायण और गङ्गालहरी का पाठ किया करती थी।

विवाह करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। बह बन्धन मुझे अत्यन्त भयानक जान पड़ता था। तथापि पिताजी आदि घर के बड़े लोगों के आग्रह से मेरा विवाह हो गया और मैं ससुराल गयी। पतिगृह में जाने पर भी मेरे मन में कोई आकर्षण नहीं हुआ। मैंने पति से अपना निश्चय स्पष्ट कह दिया कि आप दूसरा विवाह कर लें, मेरा विचार तो जीवन भर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए भजन करने का ही है। उन्होंने मुझे समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया। घर में बड़ी

अशान्ति पैदा हो गयी। मैं भी बहुत दुःखी हुई। तब मेरे बड़े भाई श्री सियाराम जी आये। वे मेरे शुभ संकल्प से सहानुभूति रखते थे। अतः वहाँ सब लोगों को समझा बुझाकर वे मुझे घर ले आये। अन्त में मेरे पति ने दूसरा विवाह कर लिया।

श्री सियारामजी जिस प्रकार मेरे सत्संकल्प से सहानुभूति रखते थे वैसे ही श्रीमहाराज जी की प्राप्ति में भी वे ही कारण बने। श्री महाराजजी में उनका अगाध अनुराग था। उनके दर्शनों के लिये वे बार-बार रामघाट व कर्णवास आदि स्थानों पर जाते रहते थे और मुझे उनकी गुणगरिमा सुनाया करते थे। इससे मेरे हृदय में श्रीमहाराजजी के दर्शनों की उत्कण्ठा रहने लगी।

प्रथम दर्शन

सन् १९२८ ई० के मार्गशीर्ष मास में मैं मामाजी के साथ खरकवारी से पहली बार श्रीमहाराज जी का दर्शन करने के लिये रामघाट गयी। वहाँ मैंने गन्ध, पुष्प और नैवेद्य द्वारा श्रीमहाराज जी का पूजन किया और आरती उतारी। आरती करते समय मैंने भावपूर्ण हृदय से इस गुरुस्तुति का गान किया—

जय गुरुदेव दयानिधि दीनन हितकारी। जय दीनन हितकारी।
जय जय मोहविनाशक भवबन्धनहारी। जय देव गुरुदेव ॥ १ ॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव गुरुमूरतिधारी। जय गुरुमूरतिधारी।
वेद पुरान बखानत गुरु महिमा भारी। जय देव गुरुदेव ॥ २ ॥
जप तप संयम तीरथ दान विविध दीने। जय दान विविध दीने।
गुरु बिनु ज्ञान न होवे कोटि यतन कीने। जय देव गुरुदेव ॥ ३ ॥
माया मोह नदीजल जीव बहें सारे। जय जीव बहें सारे।
नाम जहाज बिठाकर गुरु पल में तारे। जय देव गुरुदेव ॥ ४ ॥

काम क्रोध मद मत्सर चोर बड़े भारे। जय चोर बड़े भारे ।
ज्ञान खड्ग ले कर मैं गुरु सब संहारे। जय देव गुरुदेव ।। ५ ।।
नाना पन्थ जगत में निज-निज गुन गावें। जय निज-निज गुन गावें।
सबका सार बताकर गुरु मारग लावें। जय देव गुरुदेव ।। ६ ।।
गुरुचरणामृत निर्मल सब पातकहारी। जय सब पातकहारी ।
वचन सुनत तम नासे सब संसयहारी। जय देव गुरुदेव ।। ७ ।।
तन मन धन सब अर्पण गुरुचरणन कीजे। जय गुरुचरणन कीजे।
'ब्रह्मानन्द' परमपद मोक्षगती लीजे। जय देव गुरुदेव ।। ८ ।।

मैंने अनुभव किया कि बाबा ने इस स्तुति को बड़े प्रेम से सुना और वे बड़े प्रसन्न हुए। पीछे पं० रामप्रसाद ने इस पद को लिख लिया और दुबारा श्रीमहाराज जी को सुनाया। परन्तु उन्होंने केवल इतना ही कहा, "भैया ! यह तो उसी के मुख से अच्छा लगता है।"

मेरी प्रवृत्ति का समर्थन

इसके एक मास पश्चात् भैया सियारामजी के साथ मैं पुनः महाराज जी के दर्शन करने के लिये गयी। रात्रि के समय कुटिया के सामने प्रायः डेढ़-दो सौ भक्त बैठे थे और बाबा कह रहे थे, "यदि तीव्र वैराग्य हो तो एक पति के लिये चाहे हजार स्त्रियां मर जायँ अथवा एक पत्नी के लिये हजार पति मर जायँ तो भी कोई पाप नहीं। परन्तु होना चाहिए "तीव्र वैराग्य" उस समय श्री महाराजजी के श्रीमुख के ये वचन मुझे अमृत के समान परम प्रिय लगे। दूसरे दिन बाबा बोले, "सियाराम ! चलो तुमसे एकान्त में बातें करेंगे।" भाई के साथ मैं भी गयी। बाबा ने मुझे समझाना आरम्भ किया, "बेटा ! वह लड़का (मेरे पति) तुमसे बहुत प्रेम करता है। तुम्हारे लिये बहुत रोता है। वह मेरे पास आया। तुम उसके पास चली जाओ ।

पति कैसा भी हो, लूला-लँगड़ा, अन्धा कैसा भी क्यों न हो, स्त्री का परमधर्म तो उसकी सेवा करना ही है। देखो, तुम्हारी माता कितना भजन करती है ? तुम भी उसी की तरह भजन करो। आज-कल लोगों को ओस* वैराग्य होता है. फिर यह नशा उतर जाता है। तुम्हारा यहाँ आने का कोई काम नहीं है।" इस प्रकार उन्होंने मुझे हर प्रकार से समझाया। परन्तु उनकी बातें मेरे हृदय में जँची नहीं। मैंने केवल इतना ही कहा, "महाराज जी ! आप ठीक कहते हैं, परन्तु आपने क्या थूककर चाटनेवाला भी कोई व्यक्ति देखा है ? यदि देखा हो मुझे दिखा दीजिये। आप यहां आने को मना करते हैं तो मैं नहीं आऊँगी।"

तब वे कुछ नरम पड़े और बोले, "बेटा ! मैं भजन करने को कब मना करता हूँ। परन्तु यह बड़ा कठिन मार्ग है। एक गड़रियों के ओढ़ने का कम्बल मिलेगा और दो धोती। खाने को एक मुट्ठी चना और कभी वह भी नहीं। इस पर भी बड़े-बड़े विघ्न आयेंगे—कभी निन्दारूप में और कभी प्रतिष्ठारूप में। अभी तो तुम्हारे लिए सब प्रकार की सामग्री तैयार है।" इत्यादि।

मैंने यद्यपि महाराज जी की इन बातों पर कोई ध्यान नही दिया, तो भी अन्तहृदय से वे मुझ पर कृपादृष्ठि ही रखते थे। अन्त में तो उन्होंने यह कह भी दिया कि हम तो ऐसा ही चाहते है कि हमारी ऐसी आज्ञा को कोई न मानने वाला भी हो और पूर्णरूप से इस मार्ग पर आरूढ़ हो जाय।

---

*जो वैराग्य ओस की बूंद के समान क्षणिक हो।

साधन में प्रगति

प्रारम्भ में मैं केवल भजन ही करती थी। परन्तु पीछे उसमें वेदान्त विचार का भी पुट लग गया। मेरी निष्ठा आदि के विषय में कुछ पूछे बिना ही एक दिन बाबा बोले, सियाराम! इस के लिए ये पाचों श्लोक लिख दो" —

'घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथादेहाद्भिन्न एव न संशय ॥ १ ॥
'न त्वं देहो नेन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः।
विकारित्वाद्विनाशित्बाद्दृश्यत्वाच्च घटो यथा ॥ २ ॥
'मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमाँसमय वपुः।
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव ॥ ३ ॥
'देहात्मबुद्धिजं पापं न तद्गोबधकोटिभिः।
आत्माहंबुद्धिजः पुण्यो न भतो न भविष्यति ॥ ४ ॥
'देहोऽहमिति धीस्त्याज्या सर्वनाशेऽप्युपस्थिते।
स्पृष्ठव्या न तु भव्येन शुनीमाँसमिव क्वचित् ॥ ५ ॥

इसके अतिरिक्त आपने मुझे आज्ञा दी कि तुम गीता कण्ठ कर लो, फिर मुझे सुनाना। फिर स्वय सिद्धासन से बैठकर दिखाया और बोले, "सबसे पहले मानसिक दृण्टि से श्वास की गति पर ध्यान दो और भूत-भविष्यत् का चिन्तन छोड़कर बर्तमान में स्थित रहो।"

एक दिन बाबा कहने लगे, "बेटा! केबल सोने की दो अँगूठियां और सोने की ही दो चूड़ियाँ पहन लिया करो। काँच की चूड़ियाँ पहिनने को मैं नहीं कहता।" यह सुनकर मैं हँस पड़ी और बोली, "बाबा! आपको बहकाने के लिए क्या मैं ही मिली हूँ? तब बोले अरे बेटा! तू समझता तो है नहीं।"

पूज्य श्रीमहाराजजी ने मुझे नाना प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों और माया के गर्त्त से उबारा तथा अनेक प्रकार के उपदेश देकर भक्ति और ज्ञानमार्ग में अग्रसर किया। परमार्थ पथ में मुझ से जो कुछ भी बना है वह सब उन्हीं का कृपाप्रसाद है। एक दिन रामघाट में श्रीमहाराजजी कथा से उठकर चले आ रहे थे। अकस्मात् बड़ी उमङ्ग में भर कर मुझसे कहने लगे, "बेटा! मुदित रहा करो। मुदित! मुदित! मुदित!" बाबा ने अनेकों बार स्वप्न में भी मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर मेरी शङ्काओं का समाधान किया है। वे सब बातें मेरी निष्ठा के अनुसार ही होती थीं।

कुछ घटनाएँ

(१)

समय-समय पर ज्योतिषियों ने मेरी जन्मपत्री और हस्तरेखा देखकर बताया था कि तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा। इधर आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर भजन करने का मेरा दृढ़ संकल्प था। अतः ज्योतिषियों की बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने बाबा से प्रार्थना की कि इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? तब बाबा ने मेरे सिर पर अपना करकमल रखकर कहा, "बेटा! ज्योतिषियों की बात नहीं सुना करते। क्या रामायण में तुमने नहीं पढ़ा—'मन्त्र महामणि विषय जाल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।' अतः तुम इसकी चिन्ता मत करो। और इसका कोई प्रकारान्तर भी तो हो सकता है।"

बाबा के इस कथन से मेरी शङ्का दूर हो गयी। इसके कई वर्षों बाद एक बालक ने मुझ में मातृभाव कर लिया। वह मुझे ही माता

मानने लगा। इससे मैंने समझ लिया कि प्रकारान्तर से ज्योतिषियों की बात भी फलित हो गयी।

(२)

अन्तिम गुरुपूर्णिमा का उत्सव हो जाने के पश्चात् मैंने श्रीमहाराजजी से विदा मांगी। परन्तु उन्होंने श्रीकृष्णजन्माष्टमीतक बृन्दावन में ही ठहरने को कहा। तथापि राजकुँवरि की सेवा का कारण दिखाकर, जो कि उन्हीं को सौंपी हुई थी, मैं चली आयी। उस समय बाबा के मुख पर उदासीनता का भाव दिखायी दिया। कदाचित् वे मेरी आगामी विपत्ति देख रहे थे। श्रीकृष्णजन्माष्टमी के एक दिन पहले अलीगढ़ में मुझे बिजली ने पकड़ लिया। भगवत्कृपा से एक आदमी ने उसी समय मीटर बन्द कर दिया। इससे प्राण तो बच गये, तथापि बिजली के प्रभाव से पन्द्रह दिन पीछे मुझे घोर संग्रहणी हो गयी और हृदय डूबने के दौरे होने लगे। डाक्टर-वैद्यों की बहुत चिकित्सा करायी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर एक दिन मरणासन्न हो गयी। नाड़ी ने जगह छोड़ दी, प्राणों की ऊर्ध्वगति हो गयी और आंखों की पुतली ठहर गयी। सौभाग्यवश राजकुँवरि ने मेरी ऐसी गिरती अवस्था देखकर इससे पहले ही सोहना को श्री महाराज जी के पास भेज दिया था। रात्रि को आठ बजे मेरी यह मरणासन्न अवस्था हुई और ठीक उसी समय श्रीमहाराज जी ने बृन्दावन में सोहना से मेरा यह समाचार सुना। सारी स्थिति सुनकर वे ध्यानस्थ हो गये। और फिर थोड़ी देर में आंखें खोलकर बोले, "जा, नहीं मरेगी, नहीं मरेगी, नहीं मरेगी।" इसके सिवा उन्होंने सोहना के द्वारा कहलाया कि अलीगढ़ छोड़कर देदामई चली जाय।"

बस, ठीक उसी समय से मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और धीरे-धीरे स्थिति ठीक हो गयी।

(२)

सन् १९३० में मेरी छोटी बहन राजकुँवरि अत्यन्त रोगाक्रान्त हो गयी। अनेकों उपचार हुए, परन्तु उसकी स्थिति बिगड़ते-बिगड़ते वह सर्वथा मरणासन्न हो गयी। संयोगवश उस दिन कुटुम्ब में श्री सत्यनारायण भगवान् की कथा होरही थी। राजकुँवरि की मरणासन्न स्थिति देखकर लोग जल्दी,जल्दी ब्रह्मभोज कराने लगे कि कहीं अशौच न हो जाय। गोदान भी कर दिया गया। सारांश, वह अब तब हो रही थी, बचने की कोई आशा नहीं थी।

अकस्मात उसने नेत्र खोले और अँगुली से संकेत किया। मैं उसका संकेत समझ गयी और उसे बाबा का चित्र लाकर दे दिया। वह जैसे-तैसे उसे पकड़कर देखने लगी और फिर मुसकराई। उसकी मुसकराहट में मुझे स्पष्ट अनुभव हुआ कि उसमें बाबा का आवेश हो गया है। उसका मुख बाबा का सा हो गया और उसके दाँत बाहर निकल आये। इसमें क्या रहस्य था ? उन्होंने कैसे कृपा की थी ? सो तो वे ही जाने, तथापि उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि कहाँ तो वह मर रही थी, किन्तु अब वह सुख की नींद सो गयी। दूसरे दिन सबेरे उसने खाने के लिए चटनी माँगी। वैद्यजी ने हमसे कह रखा था कि इसके बचने की अब कोई सम्भावना नहीं है, अतः यह जो कुछ खाने के लिए मांगे दे देना। अतः उसे थोड़ी चटनी दे दी गयी। उसे खाकर उसने और मांगी, तब थोड़ी और दे दी गयी। इस प्रकार बार-बार मांगकर वह प्रायः

एक पाव चटनी चट कर गयी और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गयी।

(४)

एक बार श्री महाराज जी देदामई से विदा हो कर जा रहे थे। साथ में मैं भी थी। उनके साथ गाँव से ही एक बकरी लग गयी। वे उसे बार-बार हटाते, परन्तु वह उनके सङ्ग ही लगी रही। इस प्रकार प्राय: एक मील निकल जाने पर श्रीमहाराज जी ने उसे पास बुलाया और धीरे से उनके कान में कह दिया, "अब तू लौट जा।" बस, वह वहीं रुक गयी और जब तक बाबा उसे दिखायी दिये उन्हीं की ओर देखती रही। वह बड़ी उदास जान पड़ती थी और उसके नेत्रों से आंसू बह रहे थे जब बाबा आंखों से ओझल हो गये तब वह निराश होकर लौट गयी।

(५)

एक दिन मन्दिर की पुताई करने के लिए मैं एक कुटुम्बी के यहाँ से नसैनी लायी और जब पोत कर नसैनी लौटाने गयी तो वहां एक अच्छी सी लकड़ी पड़ी दिखाई दी। उसे देखकर मैं मन में सोचने लगी कि यह लकड़ी नसैनी बनाने के लिए अच्छी है, मन्दिर पोतने के लिए मुझे दूसरों से नसैनी माँगनी पड़ती है, इससे तो अच्छा है इस लकड़ी की अपने लिए नसैनी बनवा ली जाय।

इससे कुछ दिन पहले एक व्यक्ति ने अन्यायपूर्वक हमें बड़े महँगे गेहूँ दिये थे। परन्तु हिसाब में भूल कर उसने डेढ़ रुपया कम लिया। कई दिनों पश्चात् मेरी भतीजी ब्रह्मादेवी को हिसाब की भूल ध्यान में आयी। परन्तु उसने भाव-ताव के अन्याय को

याद करके यह बात किसी से कहो नहीं, सोचा अब उसे क्या देना है।

उसी दिन राजकुँवरि को स्वप्न में श्री महाराजजी ने दर्शन दिये और कहा, "बेटा ! यह रामकुँवरि और ब्रह्मा नहीं मानतीं।" उसी अवस्था में राजकुँवरि ने पूछा, "महाराजजी ! वे क्या नहीं मानतीं ?" बोले—"रामकुँवरि दूसरों की लकड़ी की नसैनी बनाना चाहती है, वह अपने यहाँ बाँसों की नसैनी बना ले। और ब्रह्मा उसका डेढ़ रुपये का हिसाब नहीं देती, सो उसे दे देना चाहिये।

प्रातः काल राजकुँवरि ने हम दोनोंसे स्वप्न की चर्चा की औरउन बातों का तात्पर्य पूछा तो हम दोनों ने उससे अपने-अपने मन की बात कही। महाराजजी की ऐसी अनूठी अनुकम्पा देख कर हमें बड़ा हर्ष हुआ साथ ही बड़ी हँसी भी आयी। पीछे उनकी आज्ञानुसार डेढ़ रुपये का हिसाब चुका दिया गया। वह घटना उनके लीला-संवरण के बाद की है। इसी प्रकार अब भी वे समय-समय पर हमें स्वप्न में दर्शन देकर हमारी शङ्काओं का समाधान करते रहते हैं। यह उनकी अहैतुकी अनुकम्पा ही है।

एक रहस्य की बात

एक बड़े भारी रहस्य की बात यह है कि श्री महाराज जी ने मुझ पर उस समय कृपा की थी जब मैंने उनके दर्शन भी नहीं किये थे। मैंने उनका दर्शन पीछे किया और उन्होंने मुझ पर कृपा पहिले की। वे सब प्रकार समर्थ थे यह सब उन्होंने क्यों और कैसे किया—यह बात तो वही जान सकता है जिस पर इस प्रकार की कृपा हुई हो। प्रारब्धवश पिताजी और भाई के आग्रह से मैं विवाहके

बन्धन में जकड़ गयी थी, परन्तु श्रीमहाराज जी ने कृपा करके मुझे उससे उबारा और क्या से क्या बना दिया ? कहाँ से कहाँ पहुंचा दिया ? सचमुच उन्होंने यह वचन चरितार्थ कर दिया।

मेरी सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो बहि जाति ही।
कागा से हँसा कियो, जाति बरन कुल खोय।।
दया दृष्टि से सहज ही, पातक डारे धोय।
नहीं तो बहि जाति ही।। १ ।।



बहिन श्रीराजकुँवरिजी, देदामई (अलीगढ़)

प्रथम-दर्शन

पूज्य श्री महाराज जी का प्रथम दर्शन मुझे आठ वर्ष की अवस्था में हुआ था। उस समय उन्होंने मुझे नहीं देखा था, मैंने ही चलते फिरते उनके दर्शन कर लिए थे। उसके पश्चात् पांच साल मैं बीमार रहीं और तेरह वर्ष की आयु होने पर प्रायः मरणासन्न हो गयी। उस ममय श्री महाराजजी के दर्शनों की मुझे उत्कठ लालसा हुई। भैया श्री सियाराम जी बाबा के पास गये और उन्होंने देदामई पधारने की स्वीकृति दे दी। सुनकर मैं बड़ी प्रसन्न हुई। बाबा अलीगढ़ तक आ गये और गाँव में आने ही वाले थे कि शिवपुरी का उत्सव अत्यन्त समीप आ जाने के कारण भक्तों के आग्रह से वे उस ओर चले गये तथा अलीगढ़ से प्रायः पचास मील चल कर दबतरा पहुँचे।

जब मैंने यह समाचार सुना तो मैं बेसुध हो गयी। मुझे घोर निराशा ने घेर लिया कि अब इस अन्तकाल में मैं महाराजजी केदर्शन नहीं कर सकूँगी। मेरे हाथ-पैर मारे जा चुके थे और शरीर इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया था कि उन तक पहुंचना असम्भव था। मेरा दम घुटने लगा और में रोते-रोते बेसुध हो गयी। रात भर मेरी यही दशा रही। उधर दबतरा पहुचने पर बाबा को पेचिश हो गयी थी। उस रात्रि में उन्होंने मेरी अवस्था का भी अनुभव किया और अकस्मात् रात्रि के तीन बजे उठ कर देदामई को प्रस्थान कर दिया।

यद्यपि दूर के दृश्य भी उनके लिए समीपस्थों के समान ही प्रत्यक्ष होते थे, तथापि उन्होंने भक्तों से परोक्ष रूप से यही कहा कि आज स्वप्न में मैंने उस लड़की को अत्यन्त दुखी देखा है।

बाबा का शरीर उस समय अस्वस्थ था और वह था भी माघ का महीना। अतः भक्तों ने प्रार्थना की कि महाराज जी! देदामई जाने पर तो आप समय पर शिवपुरी नहीं पहुच सकेंगे। पर बाबा ने कह दिया, "अव तो महाप्रलय होने पर भी नही रुक सकूँगा, वह लड़की दुःखी है।" जल्दी के कारण आपने गङ्गा जी को भी पुल से पार न करके सीधे ही पार किया और तेजी से देदामई पहूंचकर सीधे मेरे ही पास आये और मुझे हृदय से लगा लिया। अब मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उस हार्दिक प्रसन्नता के कारण मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। मैं तो एक दीन-हीन लड़की हूँ। मेरे पास तो विद्या, बुद्धि, भजन, धन किसी भी प्रकार का वल नहीं है। मैंने तो केवल रो-रोकर उन्हें पुकारा था। मेरी उस दीनता पर ही वे दीनवन्धु रीझ गये और इतनी दूर से दौड़ आये।

प्रेतबाधा की निवृत्ति

(१)

पुत्रवत्सल माता-पिता जैसे अपने बालक की प्रसन्नता का ध्यान रखते हैं उसी प्रकार अहैतुक कृपासिन्धु महाराज जी मेरे मन को भी बहुत रखते थे। एक बार मैंने कहा था, "बाबा! मुझे तो आप दाढ़ी रखे हुए बहुत अच्छे लगते हैं। तब से जब कभी आप देदामई आये आपकी दाढ़ी बढ़ी ही होती थी।

एक बार मेरी प्रार्थना पर आप देदामई पधारे। एकादशी का

दिन था। रामायण सुन्दर काण्ड का पाठ हो रहा था। पाठ के बीच से ही आप उठ कर छत पर चले गये और किसी को भी ऊपर नहीं आने दिया। आप देर तक सब छतों पर घूमते रहे। बारह बजे के लगभग नीचे उतरे और जब पाठ समाप्त हो गया तब बोले, 'बेटा ! अब इन छतों पर कोई भूत नहीं है । यह सुन कर सब स्तब्ध हो गये। बात यह थी कि उससे एक महीना पहले मेरे बड़े भैया कुँवरजी से उन छतों पर एक भूत की कुश्ती हुई थी और वे बड़ी कठिनता से बच पाये थे। रात्रि के समय यदि कोई छत पर जाता तो अवश्य कुछ खटका होता था। श्री महाराज जी ने वहां से भूत को कैसे विदा किया, सो तो वे ही जानें, परन्तु उसके पश्चात् फिर कोई खटका नही हुआ।

(२)

सन् १९४० में श्री महाराज जी की गुरुपूर्णिमा वृन्दावन में हुई थी। मैं सब परिवार के सहित दिल्ली वाली बगीची में ठहरी हुई थी। एक दिन सबकी इच्छा हुई कि मन्दिरों के दर्शन करने चला जाय। मुझे ठाकुर छिद्दासिंह ने कन्धे पर बैठा लिया। अनेकों मन्दिरों के दर्शन करके जब मैं शाम को लौट रही थी तो श्रौतमुनिनिवास के समीप आने पर मुझे ऐसा लगा कि कोई मेरा कन्धा पकड़ कर लटक गया है। मैंने कहा, "कौन है ?" और पीछे मुड़कर देखा तो कोई भी दिखायी नहीं दिया। ऐसा तीन बार हुआ। इतने में दिल्ली वाली बगीची आ गयी और मैं थक जाने के कारण अपने बिस्तर पर जा कर लेट गयी।

लेटने के थोड़ी देर पश्चात् एक कौपीनधारी, भयंकर आकृति वाला काला पुरुष दिखायी दिया। उसके बाल बढ़े हुए थे। उसने

जोर से कहा, "देख।" मैंने चौंककर उस ओर देखा तो ऐसा जान पड़ा कि उसने खड़े-खड़े ही थोड़ा सिर झुकाया और उसके मुँह से खून की धारा बह रही है। फिर वह बोला, "दिखाऊँगा तुम्हें!" इतने ही में ॐनारायण आ गया और वह पुरुष अन्तर्धान हो गया। बस, उसी समय मुझे जोर से ज्वर चढ़ आया और उल्टी होने लगी। दो उल्टी हो जाने पर खून की उल्टी हुई। फिर तो मुँह से, नाक से तथा मल-मूत्र के साथ भी खून निकलने लगा। दशा यहाँ तक बिगड़ी कि तीसरे दिन तो कान से भी रक्त गिरा। वैद्यों की चिकित्सा हो रही थी। तेल और पानी की मालिस की जाती थी और दो दिन में सन्दल (चन्दन के इत्र) की एक शीशी पिला दी गयी। परन्तु लाभ कुछ न हुआ। जब बचने की कोई आशा न रही तो श्रीमहाराजजी को सूचना दी गयी।

दिन के ग्यारह बजे बाबा आये और उन्होंने मेरी दशा देखी। हृदय के स्थान पर गड्ढा हो गया था। ऐसा जान पड़ता था कि कोई कलेजे को चाकू से काट-काट कर फेंक रहा है। आपने ठीक हृदयस्थानपर धीरे से अपना चरण रखा और फिर मस्तक पर। इसके पश्चात् बोले, "बेटा! कहो, मैं मरूँगी नहीं।" मैंने धीरे से कहा, "महाराजजी! यह तो आप ही जानें।" तब बोले, "नहीं, तुम कहो कि मैं मरूँगी नहीं, आपको बुलाऊँगी।" इसपर मैंने तीन बार कहा, "मैं मरूँगीं नहीं, आपको बुलाऊँगी।'

मुझसे इस प्रकार प्रतिज्ञा कराकर आप चले गये। फिर मैं तीन-चार घण्टे तक सोती रही। सोने से उठने पर मेरी उल्टियाँ बन्द हो गयीं और मुझे तरबूज खाने की इच्छा हुई। यह बात दण्डी-स्वामीजी ने जाकर बाबा से कही। वे बोले, "अरे बेटा! वह ऐसी

चीज मांगती है ? अगहन में भला तरबूज कहाँ मिलेगा ? देख कल रघुबीर राजपूताना से दो मतोरालाया है । उनमें से एक होगा । वह ले जा ।" बस, मतोरा आया सायंकाल तक मैंने सब खा लिया । उससे उलटी और बुखार दोनों ही निवृत्त हो गये ।

दूसरे दिन महाराज फिर आये और "बोले, बेटा ! क्या हाल है ?" मैंने कहा, "अब तो ठीक हूँ ।" तब बोले, "जा, बचा लिया नहीं तो खा जाता, छोड़ता नहीं ।" इसके तीन-चार दिन बाद मैंने उस काले और भयंकर पुरुष के खून उगलने की बात कही, तब बोले, 'बेटा ! वह प्रेत था, मैंने बचा लिया, नहीं तो खा जाता, छोड़ता नहीं ।"

ऐसे दिव्य शक्ति सम्पन्न थे हमारे महाराज जी ।

घर में एकान्तवास

मैं पहले कह चुकी हूँ कि एक दिन लड़की समझ कर श्री महाराज जी मेरा मन बहुत रखते थे । एक बार मैंने प्रार्थना की कि महाराज जी ! यद्यपि आप के भक्त हमें बहुत प्यारे लगते हैं और उनकी सेवा करने में भी हमें बहुत सुख होता है तथापि हम चाहते हैं कि एक बार आप अकेले ही पधारे और हमें आपके आगमन की पहले से कोई सूचना भी न हो । ऐसा होने पर हमें बड़ा अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा । मेरी इस प्रार्थना को आपने 'अच्छा' कहकर स्वीकार कर लिया ।

इसके एक वर्ष पश्चात् वृन्दावन के श्री कृष्णा श्रम की प्रतिष्ठा का महोत्सव होने पर आपने मेरी उस प्रार्थना को पूर्ण करने का विचार किया । दिन में सोहना सेसलाह कर ली और रात्रि को दो वजे उठ-

कर चल दिये। देदामई के पास पहुँचने पर आप एक बाग में रुक गये और सोहना को सूचना देने के लिये भेज दिया। सूचना मिलने पर जितनी देर में चाय तैयार कराकर भैया मुंशीलाल लेकर बाग में गये उतने ही में दो तीन भक्त आपको ढूँढ़ते हुए आ पहुँचे। सोहना ने जाकर श्रीमहाराजजी से कहा कि दो-तीन भक्त आ गये हैं और दरवाजे पर बैठे हैं। अब आप कैसे छिपेंगे? आप मुस्कराकर चल दिये और दरवाजे के समीप आने पर थोड़ा-सा घूँघट करके भीतर घुस गये। आपको कोई भी पहचान न सका।

हमारे घर में बीबो रामकुँवरि की एक भजन कुटी हैं, जिसे हम श्रीमहाराजजी की कुटी कहते हैं। उसमें आप विराजे। पहुंचते ही सब दीपक बुझा दिये गये, जिससे आपको कोई पहचान न सके। यहाँ से जब आप बाँध पर पधारे तो सुनने में आया था कि वहां दीपावली द्वारा आपका स्वागत किया गया था और यहाँ अन्धकार द्वारा स्वागत हुआ! आप सीधे वहीं पहुँचे जहाँ मैं बैठी थी और बोले, "ले, बेटा! मैं आ गया।" मैं तत्क्षण चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी, "प्रभो! मुझमें न तो भक्ति या ज्ञान का बल है और न मैं किसी योग्य ही हूँ। तथापि मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर आप इतना कष्ट उठाकर दौड़ आये।" आप चुपचाप सुनते रहे। फिर गर्म जल से चरण धोकर आपको विश्राम कराया। पैरों में कांटे लग गये थे, उन्हें बीवी रामकुँवरि ने निकाला।

जो भक्त आये थे उनमें जिरौली के पं॰ रामप्रसादजी भी थे। वे कहते कि कुटिया देखने से मालूम होता है कि उसमें श्रीमहाराजजी हैं, बीबी रामकुँवरि तुम बता दो। परन्तु श्रीमहाराजजी की आज्ञा नहीं थी, इसलिये उनकी बात का निषेध कर दिया। तब सब भक्त

कुटिया में आये। वहां आप चौकी पर बैठे हुए थे तथापि ऐसी लीला की कि उन्हें दिखायी ही नहीं दिये। इस प्रकार आपने तीन दिन तक हमारे घर में एकान्तवास किया। इससे अधिक हमारा सौभाग्य नहीं था, क्योंकि बांध का उत्सव समीप आ गया था। अतः चौथे दिन वहाँ को प्रस्थान कर दिया।

प्रभु के विधान में ही संतुष्ट रहो

एक बार आपने मुझे आज्ञा दी कि 'दीन दयालु विरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी, इस चौपाई का संपुट लगाकर रामायण का पाठ किया करो। मैं सदा ही रोगी रहा करती थी, अतः मुझे ऐसा लगा कि मेरा शारीरिक कष्ट दूर करने के लिये आप मुझे यह संपुट बता रहे हैं। मैंने आपसे अपना अभिप्राय प्रकट किया तो बोले, "अरे बेटा! ऐसा नहीं है। देखो, जन्म-मरण के समान और कोई संकट नहीं है, उस दुःख से मुक्त होने के कारण ही यह संपुट है।

यह उन दिनों की बात है जब मेरी टाँगें मारी जा चुकी थीं श्रीमहाराजजी जब देदामई पधारे तब कुछ सुविधा हो गयी थी। उस समय आपने कहा था कि इनका इलाज मत करना, नहीं तो टूट जायंगी। परन्तु घर वालों ने उनकी बात न मान कर इलाज कराया और वे सचमुच टूट ही गयीं। इसके पश्चात् जब आप आये तो बोले, "तू ऐसी ही अच्छी लगती है" और यह पद गाने लगे—

पिय राजी में बे राजी हैं, नहिं मानें पण्डित काजी हैं।
सो ठीक, करे जो प्यारा है, हरि आशिक का मग न्यारा है॥'

उनका अभिप्राय यही था कि प्रभु के प्रत्येक मंगलविधान में प्रसन्न रहना ही भक्त का धर्म है। मुझे प्रसन्न करने के लिये श्रीमहाराजजी कहा करते थे, "बेटा ? तू अपने हाथ-पांव मारे जाने का दुःख मत मानना। अपने को दुध मुँहा बालक समझना। दुध-मुँहे बच्चे भला कहाँ खड़े होकर चलते हैं ? तू भी अपने को वैसा ही समझना।"

दीनवत्सलता

कर्णवास की बात है मुझे ज्वर हो जाता था। शरीर सदा का रोगी और क्षीण तो है ही। अतः माताओं ने समझ लिया कि मुझे क्षय हो गया है और वे मुझसे बचने लगीं। उनके व्यवहार में मेरे प्रति कुछ तिरस्कार का सा भाव आ गया और कहने लगीं कि तू महाराजजी से अलग रहा कर, उन्हें छुआ मत कर। यदि उन्हें क्षय हो गया तो फिर क्या करेंगे ? वे मुझे चरण सेवा का भी अवसर नहीं देती थीं। पहले ही स्वयं आगे बैठ जातीं। मैं बहुत दुःखी होती, परन्तु कर क्या सकती थी। एक दिन इसी प्रकार आगे बैठ कर उन्होंने चरणसेवा ले ली। उस दिन मेरे धैर्य का बाँध टूट गया। मैं घिसट-घिसटकर बाहर चली गयी और रोने लगी।

थोड़ी देर में ही श्रीमहाराजजी व्याकुल होकर बैठ गये और बोले, "ओफ ! राजकुँवरि कहाँ है ?" उत्तर मिला, "महाराजजी ! रोगिणी है, कहीं सोयी होगी।" वे बोले, "नहीं, वह सोयी कहाँ है ?" फिर आवाज देकर कहा, बेटा राजकुँवरि ! तू कहाँ है।" मैंने कहा, "महाराज ! मैं यहाँ बैठी हूँ।" तब बोले, "अरे ! तू वहाँ क्यों चली गयी ?" अब मुझे सच्ची बात कहनी पड़ी। मैं बोली, महाराजजी ! मातायें मुझे क्षय की रोगी बताती हैं, मुझसे

घृणा करती हैं और आपसे अलग रहने को कहती हैं।" महाराज बोले, "अरे बेटा! जिसे तुझसे घृणा हो वह स्वयं अलग रहे, तू क्यों चली गयी?" अब मुझमें साहस आ गया। मैं समीप चली गयी और बोली, "महाराज! ये मुझे आपकी चरण सेवा भी नहीं मिलने देती।" इस पर आपने कहा, "अच्छा, आज से एक चरण तेरा है। उसे दूसरा कोई नहीं छू सकेगा। जिसे सेवा करनी हो वह दूसरे चरण की करे।"

मैं समीप तो पहुँच ही गयी थी। श्रीमहाराजजी ने दायें चरण से मेरे सिर को दबाया और मैं गिर गयी। फिर उस चरण का अँगूठा मुँह में ले वस्त्र से ढाँप कर चूसने लगी। चूसते-चूसते जब तन्द्रा सी आ जाने के कारण मैं ढीली पड़ जाती तो वे अपना अँगूठा मुँह में दबा देते और कहते, "ले, पी।" इसके पश्चात् जब फिर ढीली पड़ती तो पुनः अँगूठा दबाकर कहते, "ले, पी।" ऐसा ही रोज कहते। मुझ दीन-हीन लड़की पर उन्होंने अपने अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्तों की उपेक्षा करके ऐसी कृपा की। उनकी इस दीनवत्सलता को क्या मैं जीवन में कभी भूल सकती हूँ?

ऐसे वात्सल्यनिधि थे हमारे श्रीमहाराजजी।



श्रीहरिशङ्करजी, देदामई (अलीगढ़)

पूज्यपाद श्री महाराजजी की लीलाओं का अनुभव कोई भाग्यशाली भक्तिपूर्ण हृदय ही कर सकता है। मेरा हृदय तो बहुत कलुषित और भावशून्य है। मैंने सन्तों के मुख मे सुना है कि वे महान् आत्मा थे और इतने महान् थे कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे हमारे पुण्य के प्रभाव से संसार में आये थे और अब हमारे ही दुर्भाग्य से अन्तर्धान हो गये। उनके तत्त्व को जानने की शक्ति किस में है ?

जिस समय मुझे उनके प्रथम दर्शन हुए मैं चौदह वर्ष का बालक था और दसवीं कक्षा में पढ़ता था। पिताजी का एकमात्र पुत्र होने के कारण मुझ पर उनका लाड़-प्यार अधिक था। इसलिये बहुत फैशन में रहता था। उस समय महात्माओं के विषय में मैं इतना ही जानता था कि वे भीख माँगते हैं और कुछ चमत्कार जानते हैं। श्रीमहाराज जी बुलन्दशहर पधारे थे। उनके दर्शनों की बड़ी धूम थी। चमत्कार देखनेके लोभसे मैं भी उनके पास जा पहुँचा। जिस समय मैं उनके दर्शन कर रहा था उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात किया। उस एक ही दृष्टि ने मेरी ऐसी विचित्र अवस्था कर दी जिसका मुझे आज भी आश्चर्य है। मैं अकारण ही रोने लगा और बहुत जोर से रोया। अपने को बहुत रोकता, परन्तु ऐसा जान पड़ता था मानो कोई बलात् रुला रहा है। तब उन्होंने उठाकर मुझे हृदय से लगा लिया। फिर तो मैं मन्त्रमुग्ध-सा हुआ दिन भर उनके पीछे घूमता रहा। उनकी दृष्टि और उनके स्पर्श में एक विचित्र

शक्ति थी। उस प्रथम दर्शन से मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मैं उनका हो गया। यद्यपि मैं इस योग्य हूँ नहीं। श्रीमहाराजजी में यह एक विचित्रता थी कि उनके सब भक्त अपने-अपने ऊपर ही उनकी सबसे अधिक कृपा समझते थे। उनका सबसे अधिक स्नेह प्रत्येक भक्त को अपने पर ही जान पड़ता था। उनमें ऐसा आकर्षण था कि चारों ओर से भक्तों की टोली उनकी ओर खिची चली आती थी। उनका दर्शन करके सभी अपना अहोभाग्य मानते थे। उनके दरबार में सर्वदा दीन का आदर था। वे किसी को दुःखी नहीं कर सकते थे—

'सबके प्रिय सबके हितकारी, सुख-दुख सरिस प्रशंसा गारी ।।

एक बार श्री राजकुँवरिजी ने श्रीमहाराजजी से कहा था कि यद्यपि हम जानते हैं कि आप अत्यन्त महान् हैं और आपके पास हमें सुख भी बहुत मिलता है तो भी हम आपकी समीपता छोड़कर घर चले जाते हैं। तब श्रीमहाराजजी ने कहा था, "बेटा ! हमें पीछे जानोगे ।" सो ठीक ही है, वास्तव में हम उन्हें जान नहीं पाये।

नीचे कुछ घटनायें लिखता हूँ—

(१)

श्रीमहाराजजी समय-समय पर किस विचित्र ढङ्ग से हम लोगों की रक्षा किया करते थे, उसकी एक घटना मुझे स्मरण आती है। कर्णवास की बात है, एक दिन सायंकाल में कीर्तन हो रहा था। उस दिन सूर्यास्त होते ही मेरे पेट में दर्द होने लगा और अब वह असह्य हो गया। जब बैठना कठिन हो गया तो मैं कीर्तन से उठकर अपने आसन पर लेटने के लिये चल दिया। थोड़ी दूर जाने

पर मुझे ऐसा लगा कि श्रीमहाराजजी मेरे सामने आकर खड़े हो गये हैं और मुझे आगे बढ़ने से रोक रहे हैं। मैं लौट कर फिर कीर्तन-में आ बैठा और वहाँ श्रीमहाराजी को अपने स्थान पर विराजमान देखा। धीरे-धीरे मेरा उदरशूल शान्त हो गया। कीर्तन समाप्त होने पर मालूम हुआ कि मेरे आसन पर किसी को काले साँपने डस लिया है और वह अचेत अवस्था में पड़ा है। श्रीमहाराजजी तुरन्त वहाँ पहुँचे और उसके सिर पर हाथ फिराते हुए बोले, बेटा ! तू ठीक है, सर्प कहाँ है ?" सर्प वहाँ से जा चुका था। रोगी का उपचार हुआ धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गया।

(२)

एकबार बुलन्दशहर में पिताजी ने किसी यात्रा के खर्च के लिये बैंक से दो सौ रुपये निकाले और लाकर बक्स में रख दिये। पीछे से मेरे चचेरे भाई ने दूसरी ताली लगाकर वे रुपये निकाल लिये। ठीक समय पर जब पिताजी ने बक्स खोला तो रुपये न मिलने पर वे बहुत घवड़ाये। मैं ऊपर श्रीमहाराजजी के चित्रपट का पूजन कर रहा था। मुझे बहिन ने इसकी सूचना दी तो मैं पूजन अधूरा छोड़-कर चला आया। परन्तु रुपये नहीं मिले। बड़ी आपत्ति रही इस विक्षेप के कारण दूसरे दिन मैं श्रीमहाराजजी के पास चला आया। पहुँचते ही आप कहने लगे, "बेटा ! गुरु और भगवान् की पूजा में जल्दबाजी नहीं करते। रुपये खो गये तो क्या हुआ ? बड़े-बड़े विघ्न आवें तब भी पूजा नहीं छोड़नी चाहिये।" फिर हँस-कर बोले, "यदि पूजन पूरा कर लेता तो रुपये मिल जाते।" मुझे बहुत लज्जा आयी। बाद में मेरे चचेरे भाई ने वे रुपया बता दिये।

(३)

एक बार श्रीमहाराजजी रामघाट में थे। पूर्णिमा का दिन था। मैं सन्ध्या के समय किसी बात से दुःखी होकर अकेला नहर के किनारे जाकर रोने लगा। कीर्त्तन का समय हो गया। मैं आया और चुपचाप दूर बैठ गया। कीर्तन समाप्त होने पर आप स्वयं ही कहने लगे, "जो कोई पूर्णिमा के दिन सन्ध्या को रोता हैं उसे एक महीना तक रोना पड़ता है।" मैं सब समझ गया। इस प्रकार वे संकेत में ही बात भी समझा देते थे और रहस्य भी नही खुलने देते थे।

(४)

श्री बृन्दावन-आश्रम के प्रतिष्ठा महोत्सव में मुझे जूतों की रक्षा के विभाग में रखा था। एक दिन मेरे मन में यह संकल्प हुआ कि श्रीमहाराजजी अपनी चरणपादुकायें मेरे पास रख जाते। थोड़ी ही देर में आप मेरे पास आये और बोले, "ले, बेटा! हमारी चट्टी रख ले, खो न जायँ।" वे ऐसे लीलामय थे।

मैं उनकी कृपा से ही आज यथासाध्य उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। वे प्रभु मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें—यही प्रार्थना है। उनकी चरण धूलि मेरे मस्तक पर लगी रहे और वे मुझे अपने भक्तों की जूतियों की सेवा का अवसर प्रदान करते रहें।



भक्त सोहना, देदामई (अलीगढ़)

यद्यपि श्रीरैदासजी के कुल में जन्म लेने के कारण मैं किसी योग्य नहीं हूँ, तथापि श्रीमहारज जी की मुझ पर भी अहैतुकी कृपा थी। वे जैसे अपने अन्यान्य भक्तों के लौकिक और पारमार्थिक हित का ध्यान रखते थे उसी प्रकार मुझ पर भी कृपा करते थे। भोजन के समय जैसे अन्य भक्तों को याद करके बुला लेते थे वैसे ही मुझे भी कभी नहीं भूलते थे

भक्त वत्सलता

रामघाट में मेरे लिये आज्ञा थी कि श्रीरामायणजी का एक दोहा अर्थात् एक दोहा और दूमरे दोहे तक की चौपाइयां दिन में याद करके रात्रि को शयन के समय श्री महाराजजी को सुनाया करूँ। जब आप रात्रि में मुझे दोहा सुनाने की आज्ञा देते तो भक्तगण समझ जाते कि शयन का समय हो गया है और प्रणाम करके चलने लगते। एक दिन आपने मुझे दोहा सुनाने की आज्ञा नहीं दी। मैं उदास मनसे उठ कर चला गया। अपना कोई अपराध याद नहीं आ रहा था, जिसके कारण यह दण्ड मिला हो। दूसरी रात्रि को भी मेरी याद नहीं हुई। अब तो मैं अधीर होगया और एक पेड़के नीचे जाकर रोने लगा। रात्रि के दो बजे आपने मास्टर मुंशीलाल जी को भेजकर मुझे बुलाया और बोले, "बेटा! तूने दो रात्रि से मुझे दोहा नहीं सुनाया, इसलिये मुझे नींद नहीं आयी। अभी दोहा सुना।" मैंने उसी समय दोहे सुनाये तब श्रीमहाराजजी ने विश्राम किया। मैं प्रभु की ऐसी भक्तवत्सलता देख कर गद्गद हो गया।

प्रमाद का पुरस्कार

एक बार रामघाट में कोई बड़ा भण्डारा हो रहा था। श्रीमहा-राजजी ने मुझे चील, कौए और कुत्ते हटाने की सेवा सौंपी हुई थी।

मैं बहुत हटाता, तो भी एक-दो कुत्ते आ ही जाते थे। कुत्तों को देख कर आपने एक डन्डा उठाया और मुझे मारने के लिये दौड़े। मैं भाग गया। तब आप हँसने लगे। उनके मन में क्रोध तो कभी आता ही नहीं था। अपने शरणागतों के साथ कभी-कभी वे ऐसे ही खेल किया करते थे। पीछे मैं बहुत पछताया कि यदि श्रीमहाराज जी का डण्डा लग जाता तो बहुत अच्छा होता।

उस दिन आपने मुझे कुछ प्रसाद नहीं दिया। सांयकाल में पं० खूबीरामजी के द्वारा प्रसाद भेजा। मेरा नियम था कि जब तक श्री महाराजजी बुलाकर अपने करकमलों से स्वयं नहीं देते थे तब तक मैं प्रसाद नहीं लेता था। वे प्राय: नित्य ही मेरी इस लालसा को पूर्ण करते थे। आज उन्होंने स्वयं नहीं दिया इसलिए मैंने प्रसाद लेना अस्वीकार कर दिया। पन्डितजी प्रसाद लेकर लौट गये। श्रीमहाराज जी ने उन्हें दुवारा भेजा, तब भी मैंने मना कर दिया। तब आपने मुझे बुलाकर महा प्रसाद दिया और पहले महाप्रसाद को अस्वीकार करने के दण्डस्वरूप बत्तीस लड्डू एक जगह बैठकर खाने के लिये दिये। मैं न खा सका। दूसरे दिन मेरे पैरों में फोड़े निकल आए और उनसे पीव बहने लगा। पीड़ा के कारण चलना भी कठिन हो गया। मैंने श्रीमहाराजजी को अपनी दशा बतायी आप बोले, "यह महाप्रसाद के तिरस्कार का फल है।" तब मैं रोने लगा और क्षमा याचना की। श्रीमहाराजजी प्रसन्न हो गये और फिर धीरे-धीरे फोड़े अच्छे हो गये।

मैं ही साथी

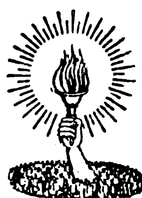
श्रीमहाराज जी जब एक स्थान से अन्यत्र जाते तो कभी तो अकेले ही चल देते और कभी अनेकों भक्तों को साथ ले जाते। कभी कभी ऐसा भी होता था कि किसी एक ही बड़भागी भक्त को साथ ले लेते। मेरे मन में बड़ी लालसा थी कि क्या मुझे भी अकेले ही उनके

साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा ? क्या कभी मैं भी अकेले में उनकी चरणसेवा कर सकूँगा ? यद्यपि इस उच्चतर सेवा का अधिकारी मैं किसी प्रकार नहीं था, तथापि मन में ऐसी अभिलाषा तो मुझे भी होती ही थी। फिर यह भी सोचता कि यह बात तेरे लिये असम्भव है। भला, ऐसा सौभाग्य तुझे कैसे प्राप्त हो सकता है ? परन्तु वे अन्तर्यामी प्रभु मेरे मन की बात जान गये और उन्होंने उसे पूर्ण करने का सुअवसर भी निकाल लिया।

एक बार श्रीराजकुँवरिजी ने महाराज से प्रार्थना की थी कि कभी आप पहले से सूचना बिना दिये अकस्मात् अकेले ही हमारे यहाँ पधारने की कृपा करें। श्रीमहाराजजी ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। श्रीवृन्दावन के आश्रम की प्रतिष्ठा का महोत्सव समाप्त हो जाने पर एक दिन आपने मुझसे कहा कि आज रात को चलेंगे। बस, रात को दो बजे आप उठे और चल दिये। मैं तो सोया ही रह गया। ऋषिजी की नींद खुल गयी और वे आपके पीछे-पीछे चलने लगे। उन्हें बहकाने के लिये आप बोले, "जा, जल ले आ, शौच जा रहा हूँ।" आप इतने में बहुत दूर निकल गये। जब दूर तक प्रतीक्षा करने पर भी आप न लौटे तो भक्तों में हलचल मच गयी। तब मेरी नींद खुली। मैं सब भक्तों से बचकर सीधा मथुरा की ओर दौड़ा। परन्तु श्रीमहाराज जी को ज्वर हो गया था, इसलिये वे रास्ते से हट कर एक झाड़ी में लेट गये थे। अतः मथुरा तक जाने पर भी मुझे वे न मिले। मथुरा में सिपाहियों ने मेरी घबड़ायी-सी आकृति देखकर चोर समझा और मुझे रोक लिया। परन्तु फिर मेरे पास श्रीमहाराज जी का चित्र देखकर और मुझसे रामायण की कुछ चौपाइयां सुनकर उन्होंने छोड़ दिया। मुझे विश्वास था कि श्रीमहाराज जी ने अभी यमुना का पुल पार नहीं किया होगा, अतः मैं पुल पर पहुंचकर इनकी प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर पश्चात् आप बगल में चट्टियां दबाये और कपड़ों में कमण्डलु छिपाये आते दिखायी दिये। मुझे देखकर आपने चट्टियां निकाल दीं और मैंने उन्हें उठा लिया। वहाँ से आप रेल की पटरी पर चलने लगे। एक गांव आने पर आप कुछ मट्ठा माँग लाये। स्वयं पिया और मुझे भी पिलाया। फिर एक दूसरा गाँव आया। वहाँ आपके विषय में लोगों में परस्पर विवाद होने लगा। कुछ लोग कहते थे कि ये उड़ियाबाबा हैं और कुछ का मत इसके विरुद्ध था। वे कहते थे, "अजी! कल ही तो हम उन्हें वृन्दावन में छोड़ आये हैं। अभी तो उनका उत्सव भी समाप्त नहीं हुआ। वे यहाँ कहाँ से आ जायँगे?" जब आपस में वे एक निश्चय पर नहीं पहुँच सके तब उन्होंने आपसे ही पूछा, "महाराजजी! आप क्या उड़ियाबाबाजी हैं?" आप बोले, "नहीं बेटा! मैं उड़ियाबाबा नहीं हूँ, उनका तो बड़ा वैभव है।" इस उत्तर से वे फिर सन्देह में पड़ गये। तब उन्होंने बड़ी नम्रता से मुझसे पूछा। मैंने जो सच्ची बात थी स्पष्ट कह दी।

अब तो आपका खूब सत्कार होने लगा और सब लोग रुकने की प्रार्थना करने लगे। रात्रिको आपने वहीं विश्राम किया। फिर सबेरे चार बजे वहाँ से चले और उसी दिन रात्रि के समय देदामई पहुँच गये। इस प्रकार कुछ काल के लिये मुझ अधम को भी अपने एकान्त सहवास का सुअवसर देकर आपने अपनी अहैतुकी भक्त-वत्सलता प्रमाणित कर दी।



हमारे प्रकाशन

१. हमारे श्रीमहाराजजी–यह ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री उड़िया बाबाजी महाराजका जीवन-चरित्र है। महापुरुषोंके जीवनमें साधकोंको अपने जीवन-निमार्णकी दिशा मिलती है। श्री महाराजजीका जीवन इस दृष्टिसे बहुत उपयोगी है। उनमें किसी प्रकार मानव जीवनके चरम लक्ष्यका आविर्भाव हुआ, यह कुशल लेखक ने बड़ी सजीव भाषा में व्यक्त किया है। इतना सफल चरित्र-चित्रण शायद ही किसी जीवन-चरित्रमें हुआ होगा। डिमाई साइज़की करीब छःसौ पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तकमें तीन तिरंगे और तीन सादे चित्र भी हैं। सजिल्द मूल्य ३० रु० मात्र।

२. गीतातत्त्वालोक–यह श्रीउड़िया बाबाजी द्वारा की हुई सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीताकी व्याख्या है। यह एक तत्त्वनिष्ठ महापुरुष की वाणी है। यद्यपि इसमें विवेचन अद्वैतवादकी दृष्टि से किया गया है, तथापि कोई साम्प्रदायिक आग्रह या अर्थकी खींचतान नहीं है। ग्रन्थका वास्तविक तत्त्व प्रकट करनेमें यह व्याख्या अद्वितीय है, पृष्ठ संख्या छैः सौ से अधिक है।

सजिल्द मू० ३०) मात्र

३. श्रीउड़िया बाबाजीके उपदेश–श्रीमहाराजजी समय-समयपर साधकोंको जो उपदेश देते थे उनमेंसे जो वाक्य अधिक प्रभावशाली होते थे उन्हें साधक लोग नोट कर लेते थे। यह उन्हींका संग्रह है। इसमें आचार, उपासना और ज्ञान तीन खण्ड हैं। अतः यह सभी प्रकारके साधकोंके लिये उपयोगी है। प्रायः पाँच सौ पृष्ठोंकी इस पुस्तकका मूल्य ३० रु० मात्र है।

४. श्रीउड़िया बाबाजीके संस्मरण द्वितीय खण्ड

श्री महाराजजी के सान्निध्य में रहे लगभग ८० संत, भक्तों के तथ्यपूर्ण अनुभव लगभग चारसौ पृष्ठ में। सजिल्द मू० २५ रु०।

मिलने का पता : **श्रीकृष्णाश्रम**, दावानल कुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)